ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला : अपभ्रंश ग्रन्थांक-६

सुगन्धदशमी कथा

[अपभ्रंश, संस्कृत, गुजराती, मराठी और हिन्दी]

सम्पादक

डॉ० हीरालाल जैन, एम० ए०, डी० लिट्०

प्राध्यापक व विभागाध्यक्ष
संस्कृत, पाली व प्राकृत, इन्स्टीट्यूट ऑव लैंग्वेजेज एण्ड रिसर्च
जबलपुर विश्वविद्यालय (म० प्र०)

भूतपूर्व डायरेक्टर : प्राकृत, जैनधर्म और अहिंसा शोध-संस्थान
वैशाली (बिहार)

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

वीर नि० सं० २४९२
वि० सं० २०२३, सन् १९६६

प्रथम संस्करण
ग्यारह रुपये

विषयानुक्रमणिका

General Editorial by Dr. A. N. Upadhye. 7

प्रस्तावना १–२३

१. आदर्श प्रतियों का परिचय १
२. कवि परिचय और रचना काल २
३. कथा का मौलिक आधार और विकास ५
४. कथाका उत्तर भाग ११
५. फ्रेंच और जर्मन कथाओंसे तुलना ११
६. कथाका उत्तरकालीन प्रभाव १६
७. सुगन्धदशमी कथा : संस्कृत १८
८. सुगन्धदशमी कथा : गुजराती १६
९. सुगन्धदशमी कथा : मराठी २१
१०. सुगन्धदशमी कथा : हिन्दी २२
११. अपभ्रंश व संस्कृत, गुजराती, मराठी और हिन्दी कथानकोंकी संगति २३
१२. अपभ्रंश कथाका विषयानुक्रम। २५

मूल पाठ १–७६

१. अपभ्रंश—हिन्दी अनुवाद सहित १
२. संस्कृत—हिन्दी अनुवाद सहित ३९
३. गुजराती ४९
४. मराठी ६५
५. हिन्दी ७९

परिशिष्ट

१. मत्स्यगन्धा कथा—महाभारत से ९१
२. नागश्री सुकुमालिका कथा—णायाधम्मकहाओ से संकलित ९४
३. श्रावकसुता कथानक—श्रावकप्रज्ञप्ति टीकासे ९६
४. लक्ष्मीमती कथानक—हरिवंशपुराण से १००

प्राक्कथन

यों तो सुगन्धदशमी कथाको मैं अपने बचपनसे सुनता आया हूँ, क्योंकि इसका पाठ पर्यूषण पर्वमें भाद्रपद शुक्ल १०मींको नियमित रूपसे जैन मन्दिरोंमें किया जाता रहा है। तथापि इसकी ओर साहित्यिक दृष्टिसे मेरी विशेष रुचि तब जागृत हुई जब सन् १९२४ में मेरे प्रिय मित्र स्वर्गीय कामताप्रसादजीने जसवन्त-नगरके शास्त्र भण्डारका एक हस्तलिखित ग्रन्थ भेजा, जिसमें अनेक संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश कथाओंके बीच सुगन्धदशमी कथा (अपभ्रंश) भी संगृहीत थी। मैंने उक्त ग्रन्थका कुछ परिचय तभी अलाहाबाद यूनिवर्सिटी जनरल, खण्ड १, में प्रकाशित अपने 'अपभ्रंश लिटरेचर' शीर्षक लेखमें दिया था। तभी मैंने इस कथाकी प्रतिलिपि करके अपने पास भी रख ली थी। किन्तु अन्य संशोधन कार्योंमें व्यस्त हो जानेसे मेरी दृष्टि इस रचनापर-से उठ गयी। सन् १९५४ में उस समय संस्कृत एम० ए० के विद्यार्थी और अब डॉ० विद्याधर जोहरापुरकर, प्राध्यापक मध्यप्रदेश शिक्षा विभाग, ने मुझे इस कथाकी जिनसागरकृत मराठी रूपान्तरकी यह प्रति छिन्दवाड़ाकी रंगीन चित्रोंसे युक्त और नागपुर सेनगण भण्डारकी है। इसके साथ ही उन्होंने पुरानी गुजरातीकी रचनाकी भी प्रतिलिपि मुझे दी और इन दोनों रचनाओंका परिचय भी लिखकर दिया। इसको देखकर मुझे अपभ्रंश रूपका ध्यान आया और साथ ही अपने बचपनमें पढ़ी अंगरेजीकी सिंड्रेला शीर्षक कथाका भी स्मरण हुआ। उसी बीच मैं वैशाली प्राकृत जैन रिसर्च इंस्टीट्यूटकी स्थापना हेतु बिहार राज्यमें चला गया। सन् १९५५ में जो ओरियण्टल कान्फ्रेंसका अधिवेशन अन्नमलाई विश्वविद्यालय, चिदाम्बरम्में हुआ, उसमें मैंने इस कथाका व उक्त चित्रित प्रतिका परिचय अपने 'पैराललिज़्म आव टेल्स बिट्वीन अपभ्रंश एण्ड वेस्टर्न लिटरेचर' शीर्षक लेखमें दिया, जिससे विद्वानोंकी इस ओर विशेष रुचि जागृत हुई, और वे इसके प्रकाशनके लिए उत्सुकता प्रकट करने लगे। तब मैंने इस ओर विशेष ध्यान दिया, एवं संस्कृत और हिन्दीकी कथाओंको भी खोजकर प्रस्तुत संस्करण तैयार किया। भारतीय ज्ञानपीठकी मूर्तिदेवी ग्रन्थमालामें इसके प्रकाशनका प्रस्ताव भी शीघ्र स्वीकृत हो गया, तथा मूल रचनाओं व अनुवादोंके मुद्रणमें बहुत समय भी नहीं लगा। किन्तु मेरी इच्छा थी कि मराठी प्रतिके समस्त चित्रोंकी छाया भी इसके साथ प्रकाशित की जाये। इस कार्यमें बड़ा विलम्ब लगा और अनेक विघ्न-बाधाएँ व चढ़ाव-उतार आये। उन सबको पार कर जिस रूपमें अब यह ग्रन्थ पाठकोंके हाथ पहुँच रहा है, आशा है उससे सभीको सन्तोष होगा।

उक्त शास्त्र भण्डारों, विद्वानों एवं भारतीय ज्ञानपीठके अधिकारियोंके ही सहयोगसे यह कृति इस रूपमें प्रकट हो सकी है, अतएव मैं उनका हृदयसे अनुगृहीत हूँ। सिघई प्रेस, जबलपुरके मालिक श्री अमृत-लालजीने चित्रोंके ब्लाक बनवाने और उनका मुद्रण करानेमें विशेष रुचि दिखलायी अतः मैं उनका बड़ा उप-कार मानता हूँ। विद्वद्वर डॉ० वासुदेवशरण अग्रवालसे मैंने प्रार्थना की कि वे इन चित्रोंका परिचय लिखवा देनेकी कृपा करें। उनके स्वास्थ्यको देखते हुए मुझे भय था कि वे कदाचित् इस भारको स्वीकार न कर सकें, किन्तु मुझे बड़ा हर्ष और सन्तोष है कि उन्होंने इसे तत्काल स्वीकार कर लिया और शीघ्र ही डॉ० गोकुल-चन्द्र जैनको चित्र-परिचय लिखवा दिया। इस कृपाके लिए मैं उनका बड़ा आभारी हूँ।

इस प्रकार इस प्रकाशनमें जो कुछ अच्छाई और भलाई है, वह उक्त सहयोगका फल है, तथा उसमें जो दोष व त्रुटियाँ रह गयी हों वे मेरे अज्ञान व असामर्थ्यका परिणाम हैं, जिसके लिए पाठकोंसे मेरी क्षमा-याचना है।

—हीरालाल जैन

प्रस्तावना

१. आदर्श प्रतियोंका परिचय (अपभ्रंश)

(१) यह प्रति जसवन्तनगरके जैन मन्दिरकी है, जो मुझे स्वर्गीय बाबू कामताप्रसादजीके द्वारा प्राप्त हुई थी। यह एक कथासंग्रह है जिसमें कुल ३७ रचनाओंका संग्रह है। इनमें सुगन्धदशमी आदि दस कथाएँ अपभ्रंशकी और शेष संस्कृत व प्राकृतकी हैं। इसी प्रतिपर-से मैंने सबसे पूर्व सन् १९२३ में प्रथम बार अपभ्रंश सुगन्धदशमी कथाको प्रतिलिपि की थी और इस आदर्श प्रतिका परिचय अपने अपभ्रंश लिटरेचर शीर्षक लेखमें दिया था। (देखिए—अलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज़, भाग १, १९२५)।

(२) यह प्रति भी एक कथाकोशके अन्तर्गत उसके प्रथम १३ पत्रोंमें पायी गयी। इस कथाकोषकी कुल पत्र-संख्या १९४ है। प्रथम पत्र अप्राप्य है। अन्तिम पत्रपर निर्देश है—

> वर-वय-कहाकोसु सुपवित्तउ विरियउ विबुहराइणा।
> सोहिउ हरिसकित्ति मुणिणा पुणु सुलक्खिगिरपवाहिणा॥

इससे इस संकलनका नाम 'व्रतकथा कोश' पाया जाता है और यह भी ज्ञात हो जाता है कि उसके संग्रहकार विबुधराय थे और उनकी रचनाका संशोधन हर्षकीर्ति मुनिने किया था। अन्तमें संवत् १६७६ का भी निर्देश है जो सम्भवत: प्रस्तुत प्रतिका लेखनकाल है। इस ग्रन्थके पत्रोंका आकार ११ × ४॥ इंच है, प्रति पृष्ठ ९ पंक्तियाँ हैं, चारों ओर लगभग एक इंचका हाशिया है, और बीचमें भी स्वस्तिकाकार स्थान छूटा हुआ है। यह प्रति सम्पादकके संग्रहमें है।

(३) यह भी ९॥ × ४ इंच आकारका एक कथाकोश है, जिसकी पत्र-संख्या १५२ है। किन्तु प्रथम एक तथा अन्तके अज्ञात संख्यक पत्र एवं बीच-बीचके अनेक पत्र अप्राप्य हैं, जिससे वर्तमान पत्रोंकी कुल संख्या केवल ६७ रह गयी है। सुगन्धदसमी कथाका प्रारम्भ पत्र २६ पर हुआ, किन्तु वह पत्र अप्राप्त है। २७वें पत्रपर मुद्रित प्रतिके १, १, ३ के 'मणहरु' शब्दसे पाठ प्रारम्भ होकर पत्र २९ के अन्तमें 'तं जाएवि भावइं' (तं जाएवि भावइं १, ४, १७) तक अविच्छिन्न गया है और फिर ३०—३४ पत्र अप्राप्त होनेसे ३५वें पत्रपर 'ण एण अंचु', (१, १०, २) से पुन: प्रारम्भ होता है, और पत्र ३८ पर 'इम चितेवि पुणु' (२, २, ६) तक जाता है। आगे ३९–४४ पत्र अप्राप्त हैं। ४५वें पत्रपर 'हमि सुअंचणेण' (२, ७, १०) से 'कम्मु डहेसइ' (२, ८, १३) तक जाकर पुन: विच्छिन्न हो जाता है। रचनाकी समाप्ति अगले पत्र ४६ पर हुई होगी, किन्तु वह पत्र अप्राप्त है। प्राचीन ग्रन्थोंकी यह दुर्दशा देखकर बड़ा दुःख होता है।

(४) यह सुगन्धदसमी कथाकी एक स्वतन्त्र प्रति है, जो पत्र १ पर '॥ दा ॥ ॐ नौधम नमः ॥ सुगन्धदसमी कथा ॥ ॥ जिण चउवीस नवेप्पिणु ॥' इत्यादि रूपसे प्रारम्भ होकर पत्र ११ पर 'तहिं णिवासु महु दिज्जउ ॥ ९ ॥ छ ॥ इति सुगन्धदसमी कथा समाप्त ॥' इस प्रकार समाप्त होती है। पत्रोंका आकार १३ × ७ इंच है, प्रतिपत्र १२ पंक्तियाँ हैं। यह प्रति कालकी अपेक्षा पूर्वोक्त तीनों कथाकोषोंसे पश्चात्कालीन है।

इन प्रतियोंके पाठान्तर अंकित नहीं किये गये, क्योंकि उनमें सच्चे पाठान्तर पाये ही नहीं जाते। पाठभेद प्राय: चरण, शब्द, अक्षर व मात्राओंके छूट जाने, मात्राओंमें 'ए' और 'रेफ' तथा 'ओ' और 'उ' के व्यत्यय तथा ण और न के प्रयोगकी अनियमितता सम्बन्धी मात्र दिखाई दिये।

कथा-रचना—अपभ्रंश सुगन्धदशमी कथामें कुल दो सन्धियाँ हैं। प्रथम सन्धिमें कडवकोंकी संख्या १२ है, और दूसरी सन्धिमें ९। प्रत्येक कडवकमें पंक्तियोंकी संख्या औसतन १७ है। सबसे कम पंक्तियाँ १, २ में है, जिनकी संख्या ११ है, और सबसे अधिक ३२ पंक्तियाँ २, २ में हैं। समस्त इक्कीसों कडवकोंकी कुल पंक्ति-संख्या ३६४ है।

कडवकोंकी रचना प्राय: पद्धडिया और अलिल्लह छन्दोंमें हुई है, जिनमें प्रत्येक चरणमें १६ मात्राएँ होती हैं, किन्तु एकके अन्तमें जगण (लघु, गुरु, लघु) आता है, और दूसरेके अन्तमें दो लघु मात्राएँ। इन दोनों छन्दोंका इस रचनामें प्राय: मिश्रण पाया जाता है। जैसे, प्रथम कडवककी ३-४ पंक्तियोंमें अलिल्लह और शेषमें पज्झटिका या पद्धडियाका प्रयोग है। किन्तु दूसरा कडवक पूरा अलिल्लहमें है, व तीसरा-चौथा पज्झटिकामें। जहाँ मात्राएँ तो १६ ही हों, किन्तु इन दोनों छन्दोंके चरणान्त मात्राओंका नियम नहीं पाया जाता, वहाँ छन्द पादाकुलक कहलाता है। जैसे २, ७ की प्रथम दो पंक्तियाँ जहाँ चरणान्तमें गुरु मात्रा दिखाई देती है। कडवक १, ५ में दीपक छन्दका प्रयोग है, जहाँ दस मात्राएँ है व अन्तमें लघु। प्रत्येक कडवकके अन्तमें जो घत्ता कहा जाता है, वह सामान्य अपभ्रंश काव्यकी रीतिसे सन्धि-भरमें एक-सा ही रहना चाहिए, किन्तु यहाँ इस नियमका पालन नहीं पाया जाता।

कवि परिचय और रचना-काल

अपभ्रंश सुगन्धदशमी कथामें उसके कर्त्ताने कुछ आत्मनिवेदन रचनाके अन्तमें (२,९,७-११) में किया है। इसके अनुसार वे अपने कुलरूपी आकाशको उद्योतित करनेवाले—उदयचन्द्र नामधारी—थे, और उनकी भार्याका नाम देमतिय या देवमती था। उन्होंने इस कथाको गाकर सुनाया था, जिस प्रकार कि उन्होंने जसहर और णायकुमारके चरित्रोंको भी मनोहर भाषामें सुनाया था। सम्भव है उन्होंने स्वयं इन चरित्रोंकी भी रचना की हो। इसके अतिरिक्त इस रचनामें हमें कविके विषयमें और कोई वृत्तान्त प्राप्त नहीं होता।

किन्तु उदयचन्द्रका नाम हमें इस प्रकारकी अन्य भी कुछ व्रतकथाओंमें उपलब्ध होता है। उदाहरणार्थ—

१—विनयचन्द्र मुनि कृत 'णिज्झर पंचमी कहा' के आदिमें उदयचन्द्र गुरु और बाल (बालचन्द्र मुनि) का स्मरण किया गया है—

> पणविवि पंच महागुरु सारद धरिवि मणि।
> उदयचंदु गुरु सुमरिवि वंदिय बालमुणि॥
> विणयचंदु फलु अक्खइ णिज्झरपंचमिहिं।
> णिसुणहु धम्मकहाणउ कहिउ जिणागमहिं॥

इसी ग्रन्थके अन्तमें यह भी व्यक्त किया गया है कि इस रासके रचयिता माथुर संघके मुनि विनयचन्द्र थे, और उन्होंने इसकी रचना त्रिभुवनगिरिकी तलहटीमें की थी।

> तिहुयणगिरि तलहट्टी इहु रासउ रइउ।
> माथुरसंघहं मुणिवर-विणयचंदि कहिउ॥

विनयचन्द्र मुनि कृत एक 'नरग उतारी कहा' भी है, जिसके आदिमें भी उन्होंने उदयचन्द्र गुरु और बालचन्द्र मुनिका स्मरण तथा नमन किया है। यथा—

> उदयचंदु गुणगणहरु गरुवउ।
> सो मइं भावें मणि अणुसरियउ॥
> बालइंदु मुणि णविवि णिरंतरु।
> णरगउतारी कहमि कहंतरु॥

इस रासके अन्तमें उन्होंने यमुना नदीके तटपर बसे हुए महावन नामक नगरके जिन-मन्दिरको अपना रचना स्थल प्रकट किया है। यथा—

> अमियसरीसउ जउणजलु।
> णयरु महावणु सग्गु ॥
> तहिं जिणभवणि वसंतइण।
> विरइउ रासु समग्गु ॥

विनयचन्द्रमुनिकी एक तीसरी रचना 'चूनड़ी' भी है, जिसमें उन्होंने माथुरसंघके मुनि उदय (उदयचन्द्र) तथा बालचन्द्रको नमस्कार किया है, तथा त्रिभुवनगिरि नगरके अजयनरेन्द्र कृत राजविहारको अपनी रचनाका स्थान बतलाया है। यथा—

> माथुरसंघहं उदयमुणीसरु।
> पणविवि बालइंदु गुरु गणहरु ॥
> जंपइ विणयमयंकु-मुणि।
> तिहुयणगिरिपुरु जगि विक्खायउ।
> सग्गखंडु णं धरयलि आयउ ॥
> तहिं णिवसंतें मुणिवरें अजयणरिंदहो राजविहारहिं।
> वेगें विरइय चूनडिय सोहहु मुणिवर जे सुय धारहिं ॥

पूर्वोक्त समस्त उल्लेखोंपर विचार कर यह प्रतीत होता है कि—

१. अपभ्रंश सुगन्धदशमी कथाके कर्त्ता वे ही उदयचन्द्र हैं जिनका विनयचन्द्र मुनिने अपनी अनेक रचनाओंमें गुरु कहकर स्मरण किया है।

२. सुगन्धदशमी कथाकी रचनाके समय कविवर उदयचन्द्र गृहस्थ थे और उन्होंने अपनी पत्नी देवमतीका भी उल्लेख किया है। यही कारण है कि विनयचन्द्र मुनिने अपनी दो रचनाओंमें उनका गुरु रूपसे स्मरण तो किया है, क्योंकि वे उनके विद्यागुरु थे; किन्तु उन्हें नमस्कार नहीं किया, क्योंकि मुनिका गृहस्थको नमस्कार करना अनुचित है। विनयचन्द्रके दीक्षागुरु मुनि बालचन्द्र थे, और उन्हें उन्होंने सर्वत्र नमस्कार किया है।

३. कविवर उदयचन्द्र बादमें दीक्षा लेकर मुनि हो गये। इसी घटनाके पश्चात् विनयचन्द्रने अपनी 'चूनड़ी' नामक रचनामें उन्हें मुनीश्वर भी कहा है, और अपने दीक्षागुरु बालचन्द्र मुनिके साथ उन्हें भी प्रणाम किया है। तथापि यह ध्यान देने योग्य बात है कि उन्होंने विद्यागुरुके नाते उदयचन्द्रजीका सर्वत्र आदिमें उल्लेख किया है, और दीक्षागुरु बालचन्द्रका पश्चात्।

४. ये तीनों मुनि उदयचन्द्र, बालचन्द्र, और विनयचन्द्र माथुर संघके थे। इस संघका साहित्यिक उल्लेख सर्वप्रथम अमितगतिके ग्रन्थोंमें मिलता है, जिन्होंने अपना सुभाषित-रत्न-सन्दोह नामक ग्रन्थ मुंजनरेशके राज्यकालमें संवत् १०५० में रचा था। इस संघके दूसरे बड़े साहित्यकार अमरकीर्ति थे, जिन्होंने संवत् १२४७ में अपभ्रंश भाषाका 'छक्कम्मोवएस' (षट्कर्मोपदेश) रचकर पूरा किया। तीसरे महान् ग्रन्थकार यशःकीर्ति और उनके शिष्य पण्डित रइधू हुए, जिन्होंने संवत् १४८६ के आसपास अनेक अपभ्रंश ग्रन्थोंकी रचना की। (माथुर संघके विशेष परिचयके लिए देखिए डॉ॰ जोहरापुरकर कृत 'भट्टारक सम्प्रदाय' शोलापुर, १९५८) देवसेन-कृत दर्शनसार-गाथा ४०, आदिके अनुसार इस संघकी स्थापना मथुरामें रामसेन गुरु-द्वारा की गयी थी, जिसमें मुनियोंको पीछी रखनेका निषेध किया गया था।

५. उदयचन्द्र कविने अपनी सुगन्धदशमी कथामें रचना-स्थानका कोई उल्लेख नहीं किया। किन्तु उनके शिष्य विनयचन्द्रने अपनी 'नरगउतारी कथा' का रचना-स्थल यमुना नदीके तटपर बसा महावन नगर बतलाया है, और अपनी अन्य दो रचनाओं अर्थात् 'निर्झर-पंचमी कथा' और 'चूनड़ी' को तिहुयणगिरि

(त्रिभुवनगिरि) में रचित कहा है। सौभाग्यसे ये दोनों स्थान पहचान लिये गये हैं। महावन तो मथुराके निकट यमुना नदीके उस पार बसा हुआ है, और वह उत्तरप्रदेशके नकशेमें अब भी देखा जा सकता है। कविने इस नगरको स्वर्ग कहा है, जिससे उसकी उन दिनोंकी महत्ता प्रकट होती है। तिहुयणगिरि आजकलका तिहनगढ़ (थनगढ़ या थनगिर) है, जो मथुरा या महावनसे दक्षिण-पश्चिमकी ओर लगभग साठ मील दूर राजस्थानके पुराने करौली राज्य व भरतपुर राज्यमें पड़ता है। इस प्रकार इन ग्रन्थकारोंका निवास व विहारका प्रदेश मथुरा जिला और भरतपुर राज्यका भूमिभाग कहा जा सकता है।

६. उक्त समस्त रचनाओंमें उनके रचनाकालका निर्देश नहीं पाया जाता। सौभाग्यसे विनयचन्द्र मुनिने अपनी 'चूनड़ी' नामक रचनामें एक ऐसा संकेत दिया है, जिससे इनके रचनाकालका अनुमान लगाया जा सकता है। उन्होंने कहा है कि 'चूनड़ी' की रचना उन्होंने तिहुयणगिरिमें अजयनरेन्द्रके राजविहारमें रहते हुए की थी। ऊपर हम देख ही चुके हैं कि यह तिहुयणगिरि आजकलका तिहनगढ़ है। इसके पूर्व इतिहासका पता लगानेपर हमारी दृष्टि वहाँके तत्कालीन यदुवंशी राजाओंपर जाती है। भाटोंके ख्यातों व उत्कीर्ण लेखोंपर-से पता चलता है कि भरतपुर राज्य व मथुरा जिलाके भूमि-प्रदेशपर एक समय यदुवंशी राजाओंका राज्य था, जिसकी राजधानी श्रीपथ (आधुनिक बयाना, राजस्थान) थी। यहाँ ग्यारहवीं शतीके पूर्वार्धमें जैतपाल नामक राजा हुए। उनके उत्तराधिकारी विजयपाल थे, जिनका उल्लेख विजय नामसे बयानाके सन् १०४४ के उत्कीर्ण लेखमें भी पाया गया है। इनके उत्तराधिकारी हुए त्रिभुवनपाल (तिहनपाल) जिन्होंने बयानासे १४ मील दूर त्रिभुवनगढ़ (तिहनगढ़) का किला बनवाया। इस वंशके अजयपाल नामक राजाकी एक उत्कीर्ण प्रशस्ति महावनसे मिली है, जिसके अनुसार सन् ११५० ई० में उनका राज्य प्रवर्तमान था। इनके उत्तराधिकारी हरिपालका भी सन् ११७० का एक उत्कीर्ण लेख महावनसे मिला है। भरतपुर राज्यके अघपुर नामक स्थानसे भी एक मूर्ति मिली है, जिसके सन् ११९२ में उत्कीर्ण लेखमें सहनपाल नरेशका उल्लेख है। इनके उत्तराधिकारी कुमारपाल (कुँवरपाल) थे, जिनका उल्लेख मुसलमानी तवारीख ताजुल मआसिरमें भी मिलता है, और वहाँ कहा गया है कि इनके समय तिहनगढ़ या थनगढ़पर सन् ११९६ ई० में मुइज्जुद्दीन मुहम्मद गोरीने आक्रमण कर वहाँके राय कुँवरपालको परास्त किया और वह दुर्ग बहाउद्दीन तुघरिलको सौंप दिया। कुँवरपालके उत्तराधिकारी अनंगपाल, पृथ्वीपाल व त्रिलोकपालके नाम पाये जाते हैं। किन्तु सम्भवतः इतिहासातीत कालसे प्रसिद्ध शूरसेन प्रदेश व मथुराके वासुदेव और कृष्णके नामोंसे सुप्रसिद्ध यदुवंशकी राज्यपरम्परा बारहवीं शती तक आकर मुसलमानी आक्रमणकारियोंके हाथों समाप्त हो गयी।

यहाँ प्रस्तुतोपयोगी ध्यान देने योग्य बात यह है कि सुगन्धदशमी कथाके कर्ता उदयचन्द्रके शिष्य विनयचन्द्रने जिस त्रिभुवनगिरि (तिहनगढ़) में अपनी उक्त दो रचनाएँ पूरी की थीं, उसका निर्माण इस यदुवंशके राजा त्रिभुवनपाल (तिहनपाल) ने अपने नामसे सन् १०४४ के कुछ काल पश्चात् कराया था। तथा अजयनरेन्द्रके जिस राजविहारमें रहकर उन्होंने 'चूनड़ी' की रचना की थी, वह निस्सन्देह उन्हीं अजयपाल नरेश-द्वारा बनवाया गया होगा, जिनका सन् ११५० का उत्कीर्ण लेख महावनसे मिला है। सन् ११९६ में त्रिभुवनगिरि उक्त यदुवंशी राजाओंके हाथसे निकलकर मुसलमानोंके हाथोंमें चला गया। अतएव त्रिभुवनगिरिमें लिखे गये उक्त दोनों ग्रन्थोंका रचना-काल लगभग सन् ११५० और ११९६ के बीच अनुमान किया जा सकता है। और चूँकि 'चूनड़ी' की रचनाके समय उदयचन्द्र मुनि हो चुके थे, किन्तु सुगन्धदशमीकी रचनाके समय वे गृहस्थ थे, अतः सुगन्धदशमीका रचनाकाल लगभग ११५० ई० माना जा सकता है।

३. कथाका मौलिक आधार और विकास

यह बात सुज्ञात और सर्व-सम्मत है कि जीवमात्र अपने सुख-साधनका और दुःखके निवारणका प्रयत्न करता है। कहा है—

"जे त्रिभुवन में जीव अनन्त। सुख चाहैं दुख तैं भयवन्त॥" (दौलतराम : छहढाला)

सुखलिप्साकी इसी चेतनासे प्रेरित होकर मनुष्यने एक ओर कर्मशीलताका विकास किया, जिसके द्वारा उसने घर-द्वार निर्माण, अन्न-पान-संचय, वस्त्राभूषण, औषधि-उपचार आदि सम्बन्धी नाना प्रणालियों-का आविष्कार किया। दूसरी ओर उसने यह भी देखा कि उसके कार्य-क्षेत्रके परे कुछ ऐसी भी प्राकृतिक शक्तियाँ हैं, जैसे अग्नि, वर्षा, वायु, सूर्य आदि जो कभी अनुकूल होकर उसके सुखमें वृद्धि करती हैं, और कभी प्रतिकूल होकर उसकी उपर्युक्त सुख-सामग्रीको नष्ट-भ्रष्ट कर डालती हैं। उसने इसे अनुभवगम्य मनुष्य-स्वभावके आधारपर उन दिव्य शक्तियोंके रोष-तोषका परिणाम समझा। यह समझदारी प्राप्त होते ही उसने उन शक्तियोंको अपनी अर्चा-स्तुति-द्वारा प्रसन्न करने और अपने हितोंके अनुकूल बनानेका प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। यह स्थिति हम भारतीय प्राचीनतम साहित्य ऋग्वेदकी ऋचाओंमें प्रतिबिम्बित पाते हैं जहाँ यजमान स्पष्ट ही कहता है कि "मैं अग्निका आह्वान करता हूँ, अपने कल्याणके लिए; रात्रि जगत्-भरको विश्राम देती है, इसलिए मैं उसका भी स्वागत करता हूँ; और सविताको बुलाता हूँ कि वह मेरा परित्राण करे। (ऋग्वेद, १, ३५, १) इसी प्रकार इन्द्रसे गायों, घोड़ों, धन तथा योद्धाओंकी रक्षा करने-को (१, ४ आदि), वरुणसे पाससे बचाने व पूर्णायु प्रदान करने तथा अपना क्रोध दूर करनेको (१, २४); मरुत्से बल-वृद्धि, शत्रु-दमन तथा यमके मार्गसे बचानेकी (१, ३७-३९); तथा ब्रह्मणस्पतिसे बल, अश्व, बलवान् शत्रुके विनाश आदि (१, ४०) की प्रार्थनाएँ की गयी हैं, और इन्हीं गुणोंके कारण उन्हें स्तुत्य, पूज्य तथा आह्वान करने योग्य माना गया है।

क्रमशः रोष-तोषके कारण भक्तोंका अनिष्ट व इष्ट सम्पादन करनेका सामर्थ्य उन देवताओंके पार्थिव प्रतिनिधि ऋषियोंमें भी आया। यह क्रान्ति हमें विशेष रूपसे महाभारत व रामायण तथा अन्य पौराणिक साहित्यमें दृष्टिगोचर होती है। इतना ही नहीं, किन्तु ऋषियोंमें यह शक्ति भी मानी गयी है कि वे रुष्ट होकर शाप-द्वारा मनुष्यको अधोगतिमें भी पहुँचा सकते हैं, और प्रसन्न होकर शापके निवारण व मनुष्यके उत्थानका भी उपाय बतला सकते हैं। कपिल मुनिने रुष्ट होकर सम्राट् सगरके साठ सहस्र पुत्रोंको भस्म कर दिया और फिर प्रसन्न होकर गंगाजल-द्वारा उनके उद्धारका भी उपाय बतला दिया (रामायण १, ४० आदि)। शुक्राचार्यके शापसे सम्राट् ययाति युवावस्थामें ही वृद्ध हो गये, किन्तु उन्हींके अनुग्रहसे उन्होंने अपने बेटे पुरुका यौवन प्राप्त कर लिया (महाभारत १, ७८)। ऋषियोंका यह सामर्थ्य इतना भी बढ़ा कि वे स्वयं देवताओंको भी शाप देकर मनुष्यादि योनियोंमें गिराने लगे। नहुष इन्द्रपदको प्राप्त होकर भी अगस्त्य ऋषिके शापसे सर्प बनकर अमरपुरीसे गिर पड़ा (महाभारत), व गौतम ऋषिके शापसे इन्द्रदेव भी विफल (नपुंसक) हो गये (रामायण १, ४८, २८-२९)।

ऋषियोंके सामर्थ्यकी इस शृंखलामें महाभारतका निम्न आख्यान (परिशिष्ट १) ध्यान देने योग्य है--

अद्रिका नामकी एक प्रसिद्ध अप्सरा थी। कारणवश वह एक ब्राह्मणके कोपका भाजन बन गयी और ब्रह्मशाप-द्वारा यमुना नदीमें मछलीकी योनिमें उत्पन्न हुई। (महाभारत १, ५७, ४६) प्रसंगवश उसके उदरमें चेदि-सम्राट् वसुका वीर्य प्रविष्ट हो गया। गर्भके दसवें मासमें वह मछली धीवरों-द्वारा पकड़ी गयी और उसके उदरसे एक स्त्री और एक पुरुष निकले। मछली तो शापमुक्त होकर पुनः अप्सरा हो गयी, और उसकी मानवी-सन्तति-रूप उन स्त्री-पुरुषोंको राजा वसुको समर्पित किया गया। वसुने पुरुषको तो मत्स्य नामसे राजा बना दिया, और कन्याको एक दासको पालन-पोषणके लिए दे दिया। बड़ी होनेपर वह कन्या अपने दास पिताकी सेवा-सहायता करने लगी। और उनकी अनुपस्थितिमें नाव चलाकर पथिकोंको नदी पार भी कराने लगी।

एक बार इस दास-कन्याको नाव-द्वारा पराशर ऋषिको नदी पार करानेका प्रसंग आया। कन्या अत्यन्त रूपवती थी, किन्तु उसके शरीरसे मत्स्यकी दुर्गन्ध निकलती थी, जिसके कारण वह मत्स्यगन्धा

भी कहलाती थी। नाव जब नदीके बीचमें पहुँची, तब ऋषि पराशर अपनी कामवासनाको न रोक सके, और उन्होंने मत्स्यगन्धासे प्रेमका प्रस्ताव किया। आसपासके समीपवर्ती ऋषियोंकी दृष्टिसे बचनेके लिए उन्होंने अपने तपोबलसे कुहरेकी सृष्टि की और कन्याको यह भी वरदान दिया कि उनसे प्रेम करनेपर भी उसका कन्याभाव नष्ट नहीं होगा। ऋषिकी इच्छा-पूर्ति करनेपर कन्याने वरदान माँगा कि उसके शरीरकी दुर्गन्ध दूर होकर उसके गात्रोंमें उत्तम सुगन्ध आ जाये। ऋषिके प्रसादसे ऐसा ही हुआ और वह मत्स्यगन्धा तभीसे गन्धवती नामसे प्रसिद्ध हुई। उसके शरीरकी सुगन्ध एक योजन तक फैलने लगी, जिससे उसका नाम योजनगन्धा भी विख्यात हुआ। वैसे इस कन्याका नाम सत्यवती था, जो आगे चलकर कौरव-नरेश शान्तनुकी साम्राज्ञी हुई। उसके ही पुत्रका राज्याभिषेक हो, इसी हेतु शान्तनुके ज्येष्ठपुत्रने अपना विवाह न करनेकी भीष्म प्रतिज्ञा धारण की और भीष्म नामसे विख्याति पायी। तथा उसीने विचित्रवीर्य नामक राजपुत्रको जन्म दिया, जिसकी सन्तानसे धृतराष्ट्र और पाण्डु हुए। (महाभारत १, ५७, ५४ आदि)।

महाभारतके इस कथानकमें पाठकोंको प्रस्तुत सुगन्धदशमी कथाके मूलतत्त्वोंका दर्शन हुए बिना न रहेगा। ऋषिका अनिष्ट, उसके कारण कन्याके शरीरमें दुर्गन्ध व ऋषिके प्रसादसे दुर्गन्धके स्थानपर सुगन्धकी उत्पत्ति, एवं राजपद प्राप्ति, इन सभी बातोंमें उक्त कथानकोंका मेल बैठता है।

किन्तु कुछ अन्य बातोंमें वैदिक-परम्पराके उक्त आख्यान एवं जैन-परम्पराकी सुगन्धदशमी कथा विवरणमें बहुत भेद है। वैदिक-परम्पराके ऋषि तपोबल-समृद्ध तो होते हैं, किन्तु वे न तो गार्हस्थ्यके परित्यागी होते हैं, न ब्रह्मचर्यके परिपालक, और न रागद्वेषसे रहित। निरुक्त (२, ११) के अनुसार उनकी दृष्टि तीक्ष्ण होती है, तथा वे वेदोंके मन्त्रोंका दर्शन करते हैं। (ऋषिर्दर्शनात्) और भरतके अनुसार उनकी विद्वत्ता व विदग्धता प्रसिद्ध है (विद्याविदग्धमतयः ऋषयः प्रसिद्धाः)। तथापि वे गृहस्थ हैं (ऋषयो गृहमेधिनः)। वे आश्रम बनाकर रहते हैं, गौओं व धनका दान लेते हैं, और गौओंका पालन भी करते हैं। क्रुद्ध होकर वे शाप भी देते हैं, और प्रसन्न होकर वरदान भी। किन्तु जैन-परम्पराके मुनियोंकी प्रकृति आदितः ही उनसे भिन्न रही है। स्वयं ऋग्वेदके अनुसार वे वातरशना (सम्भवतः नग्न दिगम्बर) होते हैं, उन्हें शरीरको निर्मल बनानेकी रुचि नहीं होती। वे लौकिक व्यवहारोंसे परे उन्मत्त (परमहंस) व मौन वृत्तिसे रहते हैं। वे अध्यात्मी होते हैं। लोग उनके शरीरको तो देख पाते हैं, किन्तु उनकी आध्यात्मिक चेतनाको नहीं (ऋ० १०,१३६)। तैत्तिरीय आरण्यक (१,२१,३;१,२६,७) के अनुसार ये वातरशना मुनि, समाहितासः अर्थात् चित्तको एकाग्र करनेमें अप्रमादी तथा ऊर्ध्वमन्थिनः अर्थात् ब्रह्मचारी होते हैं। महाभारत (अनुशासन पर्व ११५, ७२) के अनुसार मुनि वे ही कहे गये हैं जो मधु, मांस और मद्यका सर्वथा त्याग करते हैं; तथा गीता (२,२६) के अनुसार मुनि स्थितप्रज्ञ होते हैं, जिन्हें दुःखमें उद्वेग नहीं, सुखकी वांछा नहीं, तथा भय और क्रोधरहित होते हुए वीतराग होते हैं। वातरशना मुनियोंकी परम्परामें हुए भगवान् ऋषभदेव (जैनियोंके आदि तीर्थंकर) (भागवत पुराण ५,६,२८ आदि) शरीर मात्र परिग्रह धारी थे, उन्मत्तवत् नग्न (गगन-परिधान) अवधूत, मलिन जटाओंसहित रहते थे। पुराणमें यह भी कह दिया गया है कि ऋषभदेवका यह अवतार कैवल्यकी शिक्षा देने हेतु हुआ था।

इन्हीं मुनियोंकी साधनाओंका अधिक विस्तारसे वर्णन महाभारतके शान्तिपर्व, अध्याय ९ में किया गया है, जहाँ धर्मराज युधिष्ठिर इच्छा प्रकट करते हैं कि "मैं तो अब मुनि होकर मुण्डसिर वनमें एकान्तवास करता हुआ भिक्षावृत्तिसे अपने शरीरका शोषण करना चाहता हूँ। धूलि-धूसरित शून्यागार या वृक्षके नीचे निवास करता हुआ, तथा समस्त प्रिय और अप्रियका त्यागी होकर, शोक और हर्षसे रहित निन्दा और स्तुतिमें समभाव, कोई आशा व ममता न रखता हुआ निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह रहना चाहता हूँ। आत्मामें ही मेरा रमण हो, मेरा आत्मा प्रसन्न रहे, आकृति मेरी भले ही जड़, अन्ध और बधिर-जैसी हो। मैं किसी दूसरेसे कोई सलाह-सम्मति नहीं करना चाहता। अपने-अपने गुणधर्मोंमें स्थित चारों प्रकारके जंगम प्राणियोंके प्रति मेरा समता-भाव रहे। न मैं किसीकी हँसी उड़ाऊँ, न कभी किसीपर भृकुटी तानूँ। समस्त इन्द्रियों-

को संयमित रखता हुआ मैं सदैव प्रसन्न-मुख रहूँ। न मैं किसीसे मार्ग पूछूँ, न किसीके साथ चलूँ, न किसी देशको अथवा किसी दिशामें जानेकी कोई विशेष इच्छा रखूँ। कोई अपेक्षा न रखता हुआ, पीछेकी ओर न देखकर सावधानी रखता हुआ, त्रस स्थावर जीवोंको बचाता हुआ संयम भावसे सीधा गमन करूँ। वस्तु-स्वभाव आगे चलता है, क्षुधादि पीड़ाओंका प्रभाव पड़ता ही है, तथा सुख-दुःख आदि द्वन्द्व अपना विरोध छोड़ते नहीं। अतः मैं उनकी चिन्ता न करूँ। अल्प या स्वादहीन जो भी भोजन मिल जाये उसीमें सन्तोष करूँ। न मिले तो भी क्षुब्ध न होऊँ। जब रसोईघरका धुआँ शान्त हो जाये, मूसल रख दिया जाय, चूल्हेमें आग भी न रहे, लोग भोजन कर चुकें, पात्रोंका संचार बन्द हो जाये व सामान्य भिक्षुक चले जायें, तब मैं दिनमें केवल एक बार दो, तीन या पाँच घरोंसे भिक्षा माँगूँ। स्नेह-बन्धनको छोड़कर मैं इस पृथ्वीपर विचरण करूँ। लाभ हो या हानि हो मैं समदर्शी रहूँ, और महातपसे विचलित न होऊँ। मेरा आचरण न तो जीनेके लिए आतुरता लिये हो, और न मरणकी इच्छासहित। जीवनका मैं अभिनन्दन न करूँ, और न मरणसे द्वेष। कोई बसूलेसे मेरा हाथ काटे और कोई मेरे शरीरपर चन्दनका लेप करे, तो भी न मैं एक-का अकल्याण सोचूँ और न दूसरेका कल्याण। जीवनमें सांसारिक अभ्युदयकी क्रियाएँ करना शक्य है, उन सबका मैं परित्याग करूँ, और पलक मारने आदि शारीरिक क्रियाओंमें सावधान रहूँ। इन्द्रियोंकी क्रियाओंमें न मैं आसक्ति रखूँ, और न प्रवृत्ति। अपने आत्मकल्याणका संकल्प कभी न छोड़ूँ, और आत्माको मलिन करनेवाले कामोंसे अपनेको बचाता रहूँ। मैं सब प्रकारके संगोंसे मुक्त रहूँ व सब बन्धनोंसे परे रहूँ, किसीके वशमें न रहूँ। वायुके समान स्वतन्त्र वृत्ति होऊँ। इस प्रकार वीतराग भावसे आचरण करता हुआ मैं शाश्वत सुख-सन्तोषको प्राप्त करूँ। अभीतक तो मैंने अज्ञानके कारण तृष्णाके वशीभूत होकर महापाप किया।'' मुनियोंके आचारका जो विधान जैन-शास्त्रोंमें पाया जाता है उससे उक्त बातोंका भलीभाँति समर्थन होता है।

ऋषियों और मुनियोंकी साधनाओं, प्रवृत्तियों एवं गुणधर्मोंमें उक्त भेद उन परम्पराओं-सम्बन्धी आख्यानोंमें स्वभावतः प्रतिबिम्बित हुआ है। जहाँ एक ही या एक ही प्रकारकी लोक-कथाका उपयोग धार्मिक उपदेशके लिए किया गया है, वहाँ अपनी-अपनी परम्पराओंके अनुकूल उसमें हेर-फेर भी हुआ है। महाभारतमें सत्यवतीके शरीरमें दुर्गन्ध आनेका कारण था उसकी अप्सरा माताका ब्रह्मशाप और दुर्गन्धसे मुक्ति एवं सुगन्धकी उत्पत्तिका कारण था ऋषिका वरदान। इस वरदानकी प्राप्ति किसी धार्मिक साधनाके फलस्वरूप नहीं हुई, किन्तु ऋषिकी कामवासना-तृप्ति-द्वारा उनका प्रसाद। किन्तु जैन-परम्परामें ये बातें नहीं बन सकतीं। यहाँ मुनि दुःख-सुखमें समान रूपसे समताभाव रखते हैं, और उनमें राग-द्वेषका भी अभाव होता है। अतः न तो वे शाप देते हैं, और न वरदान। जैन कर्म-सिद्धान्तके अनुसार माताके शापसे पुत्रीका शरीर दुर्गन्धित हो, यह बात भी नहीं बनती। फल प्रत्येक जीवको स्वकृत कर्मके अनुसार ही प्राप्त होता है। हाँ, मुनिजन अपने ज्ञान-द्वारा यह अवश्य विश्लेषण कर बतलानेका प्रयत्न करते हैं कि कौन-से पापकर्मका फल दुःखमय हुआ और कौन-से पुण्यकर्म-द्वारा उसका निवारण किया जा सकता है। इन सिद्धान्तोंके अनुसार शरीरमें अप्रियताकी उत्पत्तिका जो आख्यान प्राचीन जैन (आगम णायाधम्मकहा १६) में पाया जाता है वह इस प्रकार है—

चम्पा नगरीमें सोम, सोमदत्त व सोमभूति नामक धनी गृहस्थ रहते थे। उन्होंने एक बार विचार किया कि जब हमारे पास प्रचुर धन है तो क्यों न उसका भोग और दानमें सदुपयोग किया जावे। अतएव उन्होंने परस्पर आमन्त्रणों-द्वारा भोज और आमोद-प्रमोदका निर्णय किया। जब सोमकी बारी आयी तब उसकी पत्नी नागश्रीने खान-पानकी खूब तैयारी की। किन्तु जब उसने परीक्षाके लिए खूब घृत और मसालों सहित तैयार की गयी लौकीके शाकके एक बिन्दुको चखा तो उसे अत्यन्त कड़वा और विषैला पाया। तब उसने उसे अलग रखकर अन्य शाक तैयार किये व अभ्यागतोंको खूब खिलाया-पिलाया। आमोद-प्रमोदके पश्चात् सब अपने-अपने घर गये। तब वहाँ धर्मरुचि नामके मुनि आहारकी भिक्षाके लिए उपस्थित हुए।

नागश्रीने विचार किया कि उस कड़वी अलाबुका शाक जिसमें उतना घृत और मसाला पड़ा है, अन्यत्र फेंकने-की अपेक्षा इस मुनिको दे देना अच्छा। ऐसा विचार करके उसने उस समस्त शाकको मुनिके भिक्षा-पात्रमें उड़ेल दिया। उसे लेकर धर्मरुचि मुनि अपने गुरु धर्मघोषके पास आये। उन्होंने उसकी गन्धका अनुभव कर एक बिन्दुका स्वाद लिया और उसे कटु व अखाद्य जानकर मुनिको उसे एकान्तमें उचित स्थानमें डाल देनेको कहा। धर्मरुचिने जाकर एक स्थानपर उसका कुछ भाग छोड़ा, और देखा कि जिस-जिस चींटीने आकर उसे खाया, वही तुरन्त मर गयी। यह देख मुनिने विचार किया कि इसे कहीं भी डालनेसे अगणित जीवोंका घात होगा। अतः इससे यही अच्छा है कि मैं ही इसे खा लूँ जिससे अन्य जीवोंके प्राण न जायें। ऐसा विचार कर उन्होंने उसका आहार कर लिया और वे शीघ्र ही मरणको प्राप्त हुए।

इस प्रकार नागश्रीकी करतूतसे मुनिके मरणकी बात सर्वत्र फैल गयी। बहुजन समाजने उसकी निन्दा और भर्त्सना की, तथा उसे घरसे निकाल दिया। इस प्रकार निर्वासित और निन्दित होकर वह घर-घर भीख माँगकर अपना निर्वाह करती हुई श्वास, कास, शूल, कुष्ट आदि सोलह महारोगोंसे ग्रस्त हो, मरकर नरक जाकर अगले तीन जन्मोंमें पुनः-पुनः मछली हुई, फिर अनेक एकेन्द्रियादि जीवोंमें सहस्रों बार उत्पन्न हुई। तत्पश्चात् तिर्यंच योनिसे उबरकर वह चम्पानगरीमें सागरदत्त सार्थवाहकी सुमालिका नामक पुत्री हुई। वह यद्यपि रूप और यौवनसे सम्पन्न थी, तथापि उसके शरीरका स्पर्श असहनीय था, जिसके कारण उसका पति उसके पाससे भाग गया। पिताने एक दरिद्रसे उसका पुनर्विवाह कर दिया, किन्तु वह भी उसका स्पर्श सहन न कर, निकल भागा। यह देख पिताने उसका सम्बोधन किया कि यह सब उसके पूर्वकृत कर्मोंका फल है। फिर उसने उसे अपने रसोईघरके काम-काजमें अपना चित्त लगानेका उपदेश दिया। कुछ काल पश्चात् वहाँ आर्यिकाओंका एक संघ आया। उनके समीप सुमालिकाने प्रव्रज्या ले ली।

चम्पामें एक ललिता नामक गोष्ठी थी। एक बार वहीं पाँच गोष्ठिक पुरुष देवदत्ता गणिकासहित आमोद-प्रमोदके लिए पहुँचे। किसीने देवदत्ताको अपनी गोदमें बिठलाया, किसीने छत्र लगाया, किसीने पुष्प-सज्जा की, किसीने पैरोंमें माहुर लगाया और किसीने चमर ढोरा। सुमालिकाने यह सब देखा और वह उस स्त्रीके भाग्यकी सराहने लगी। उसने निदान किया कि यदि मेरी इस प्रव्रज्याका कुछ फल हो तो अगले जन्ममें मुझे भी ऐसा ही प्रेम-सत्कार प्राप्त हो। तभीसे वह अपने शरीरकी सजधजकी ओर विशेष ध्यान देने लगी। मरनेके पश्चात् वह ईशान स्वर्गमें देवी हुई, और फिर द्रुपदकी राजकन्या द्रौपदी; जिसे पूर्व संस्कारवश अर्जुन आदि पाँच पाण्डवोंका पतित्व प्राप्त हुआ। (परिशिष्ट २)

इस कथानकमें न तो मुनिका शाप है, और न वरदान। किन्तु मुनिके प्रति दुर्भाव और दुर्व्यवहारके पापसे उसे स्वयं कुष्ठ आदि रोग हुए, नाना नीच योनियोंमें भ्रमण करना पड़ा, एवं मनुष्य-जन्ममें उसे उसी कड़वी तूँबी-जैसा असह्य शरीर मिला। फिर प्रव्रज्याके पुण्यसे अगले जन्ममें उसे सुन्दर रूपकी प्राप्ति हुई और उसके मनोवांछित पाँच पति भी मिले। यह कथानक अर्धमागधी आगमका है, जिसका उपलभ्य संकलन वीरनिर्वाणसे ९८० वर्ष पश्चात् वलभीमें किया गया था। अतः वह ईसवीकी पाँचवीं शतीसे पूर्वकी रचना सिद्ध है।

हरिभद्र सूरि (लगभग ७५० ई०) विरचित सावयपण्णत्ति (श्रावक प्रज्ञप्ति) के पद्य ९३ की टीकामें भी इस प्रकारका एक कथानक सम्यक्त्वके विचिकित्सा नामक अतिचारके उदाहरण रूपसे आया है, जो इस प्रकार है—

एक सेठ था। उसकी पुत्रीके विवाहमें कुछ साधुजन आये। पिताने उसे उनकी परिचर्या करनेका आदेश दिया। किन्तु उनके शरीरकी मलिन गन्धसे उसे घृणा हुई, और वह विचार करने लगी कि यदि ये साधु प्रासुक जलसे स्नान कर लिया करें, तो क्या हानि है? उसने अपने इस दूषित विचारका कोई आलो-चन-प्रतिक्रमण नहीं किया। अतः मरनेपर वह राजगृहकी एक गणिकाके यहाँ उत्पन्न हुई। जन्मसे ही उसके

शरीरसे दुर्गन्ध निकलती थी, जिससे वह वनमें त्याग दी गयी। एक बार राजा श्रेणिक, भगवान् महावीरकी वन्दनाको जाते समय उसी वनसे निकले। दुर्गन्ध पाकर उन्होंने उसकी खोज करायी, और स्वयं जाकर उसे देखा। फिर भगवान्से उसके विषयमें पूछ-ताछ की। उन्होंने उसके शरीरमें दुर्गन्ध उत्पन्न होनेका कारण जानकर उसके भावी होनहारकी बात पूछी। भगवान्ने कहा कि अब उसके पापका फल वह भोग चुकी। अब वह तुम्हारी ही अग्रमहिषी होगी, और आठ वर्ष तुम्हारे साथ रमण करके, पश्चात् जो करेगी सो तुम जान लेना। राजा भगवान्को वन्दना कर अपने भवनको गये। उधर उस कन्याकी दुर्गन्ध दूर हो गयी, और एक अहीरने ले जाकर उसका पालन-पोषण किया। युवती होनेपर वह अपनी माताके साथ कौमुदी-महोत्सव देखने गयी। राजा भी अपने पुत्र अभयकुमारके साथ वेष बदलकर उत्सव देख रहा था। कन्याके अकस्मात् स्पर्शसे उसकी कामवासना जागृत हो गयी, अतः उसने अपनी नामांकित मुद्रिका उसे पहना दी, और अभयकुमारसे कह दिया कि उनकी नाममुद्रा किसीने चुरा ली, अतः उसकी खोज की जाये। अभयकुमारने नगरके सब द्वार बन्द करा दिये, और प्रत्येक मनुष्यकी जाँच-पड़ताल करायी। वह बालिका मुद्रिकासहित पकड़ी गयी, और राजाके पास लायी गयी। राजाने उससे अपना विवाह कर लिया। एक बार राजा अपनी अन्य रानियों सहित जलक्रीड़ाको गया, और वह सुन्दरी उनकी नावको देखती रह गयी। इस प्रकार राजा-द्वारा अपनेको परित्यक्त समझकर उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

इस प्रकारका तीसरा आख्यान जिनसेन-कृत हरिवंशपुराण (शक सं० ७०७-७८५ ई०) में पाया जाता है—भरतक्षेत्र, मगधविषयके लक्ष्मी ग्राममें लक्ष्मीमती नामकी सुन्दर कन्या थी। एक बार वह दर्पणमें अपना रूप देख रही थी कि उसी समय भिक्षाके लिए समाधिगुप्त मुनिको आया देख उसे घृणा हो उठी, और वह मुनिकी निन्दा करने लगी। इस महापापके कारण सातवें दिन ही उसके शरीरमें कुष्ठ व्याधि उत्पन्न हो गयी। कन्याने अग्नि-प्रवेश-द्वारा मरण किया। तत्पश्चात् उसने क्रमशः खरी, शूकरी और कुक्कुरीका जन्म ग्रहण किया। फिर वह मण्डूकग्राम निवासी मत्स्यजीवीकी पुत्री हुई। उसका शरीर दुर्गन्धमय होनेसे माताने तो उसका परित्याग कर दिया, किन्तु मातामहीने पाल-पोषकर उसे बड़ा किया। मुनिका संयोग होनेपर उसे धर्मोपदेश मिला। वह आर्यिकाओंके साथ राजगृह गयी और सिद्धशिलाकी वन्दना करके, नीलगुफामें समाधिस्थ हो, मरकर अच्युत स्वर्गमें महादेवी हुई। वहाँसे उतरकर वह राजा भीष्मकी कन्या रुक्मिणी हुई। यही कथानक महासेन-कृत प्रद्युम्नचरित (सर्ग ८, १४०-१६०) तथा हरिषेण-कृत कथाकोश (१०८) में भी पाया जाता है।

इस कथानकमें मुनिके निरादरसे कुष्ठरोगकी उत्पत्ति, नीच योनियोंमें जन्म तथा शरीरमें दुर्गन्धका होना एवं धर्माचरणसे उस पापका निवारण होकर स्वर्ग एवं उच्चकुलमें जन्मका फल बतलाया है।

हरिषेणकृत बृहत्कथाकोश (५७), (९३१ ई०), तथा श्रीचन्द्रकृत अपभ्रंश कथाकोश (संधि १९-२०, लगभग १०६० ई०) में एक और कथा है अशोक रोहिणीकी, जिसके अनुसार हस्तिनापुरके समीप नीलगिरि पर्वतकी शिलापर मुनिराज यशोधर आतापन योग करते थे। उनके प्रभावसे वहाँके मृगमारी नामक व्याधको कोई शिकार नहीं मिल पाता था। इससे क्रुद्ध होकर उसने जब मुनिराज भिक्षाको गये थे, तब उस शिलाको अग्नि जलाकर खूब तप्त कर दिया। मुनिराजने आकर उसी शिलापर शान्त भावसे समाधिमरण किया। इस पापके फलसे उस व्याधको कुष्ठ रोग हो गया, और वह असह्य वेदनासे सातवें दिन मरकर नरक गया। वहाँसे निकलकर नाना नीच योनियोंमें भ्रमण करता हुआ वह जीव पुनः मनुष्य योनिमें आया, और गोपालके रूपमें उसी नीलगिरिके दावानलमें जलकर भस्म हुआ।

उसी हस्तिनापुरमें सेठ धनमित्रके पूतिगन्धा नामक एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसकी उग्र दुर्गन्धके कारण कोई उससे विवाह नहीं करता था। संयोगवश उसी नगरके सेठ वसुमित्रका पुत्र श्रीषेण बड़ा दुराचारी था। एक बार वह चोरीके अपराधमें पकड़ा गया। धनमित्रने उसे इस शर्तपर राजासे प्रार्थना कर छुड़वा

दिया कि वह उसकी उस दुर्गन्धा पुत्रीसे विवाह करे। किन्तु विवाहके पश्चात् ही वह उसकी दुर्गन्धको न सह सकनेके कारण भाग गया। दुर्गन्धाके दिन पुनः दुःखसे बीतने लगे।

एक बार सुव्रता आर्यिका धनमित्रके घर आहारको आयी। दुर्गन्धाने भक्तिसे आहार-दान दिया। नगरमें मुनिसंघ आया। दुर्गन्धा भी मुनियोंकी वन्दना को गयी। मुनिने उसकी दुर्गन्धका कारण बतलाया कि पूर्वभवमें वह गिरिनगरके सेठ गंगदत्तकी सिन्धुमती नामक भार्या थी। एक बार सेठ-सेठानी दोनों राजाके साथ वन-विहारको जा रहे थे कि समाधिगुप्त नामक मुनि आहार निमित्त आते दिखाई दिये। सेठने अपनी पत्नीको उन्हें आहार करानेके लिए वापस भेजा। सेठानीने क्रुद्ध हो मुनिराजको कड़वी तुम्बीका आहार कराया। उसकी वेदनासे मुनिका स्वर्गवास हो गया। राजाको जब यह समाचार मिला तो उन्होंने उसे निरादरपूर्वक नगरसे निकाल दिया। उसे कुष्ठ व्याधि हो गयी, और वह सात दिनके भीतर मर गयी। वह नरकोंमें तथा कुत्ती, शूकरी, शृगाली, गधी आदि नीच योनियोंमें जन्म लेकर अन्ततः तू अब पूतिगन्धाके रूपमें उत्पन्न हुई है।

अपने पूर्वभवका यह वृत्तान्त सुनकर पूतिगन्धाको बड़ी आत्मग्लानि हुई, और उसने मुनिराजसे पूछा कि उस पापसे उसे किस प्रकार मुक्ति मिले। मुनिराजने उसे रोहिणी-व्रतका उपदेश दिया, जिसके अनुष्ठानसे वह अंगदेशकी चम्पानगरीके मघवा नामक राजाकी रोहिणी नामक राजकन्या हुई। अब वह यह जानती भी नहीं थी कि दुःख और शोक कैसा होता है।

राजकन्या रोहिणीके पति अशोकका भी पूर्वभव मुनिराजने सुनाया। कनकपुरमें सोमभूतिके पुत्र सोमशर्मा और सोमदत्त थे। पिताकी मृत्युके पश्चात् सोमदत्त राजपुरोहित हुआ, जिसके कारण उसका ज्येष्ठ भ्राता सोमशर्मा उससे द्वेष करने लगा। उसके दुराचारकी बातोंसे सोमदत्तको वैराग्य हो गया, और वह मुनि हो गया। अब सोमशर्मा राजपुरोहित हुआ। एक बार जब राजा सोमप्रभ विजय-यात्रापर जा रहे थे तब उन्हें सम्मुख सोमदत्त मुनिके दर्शन हुए। इसे सोमशर्माने अपशकुन बताकर, मुनिको मरवा डालनेकी सलाह दी। किन्तु राजाने अन्य ज्योतिषियोंसे यह जानकारी प्राप्त की कि मुनिका दर्शन अपशकुन नहीं किन्तु बड़ा शुभ शकुन माना गया है, जिससे कार्यमें अवश्य सफलता प्राप्त होती है। हुआ भी ऐसा ही। तथापि सोमशर्माने द्वेषवश गुप्त रूपसे मुनिका घात कर दिया। यह जानकर राजाने उसे दण्डित किया। सातवें दिन उसे कुष्ठ व्याधि हो गयी। दुःखसे मरकर उसने अनेक बार नरकोंमें तथा मत्स्य, सिंह, सर्प, व्याघ्र आदि क्रूर पशुओंमें जन्म लेकर अन्ततः सिंहपुरके राजा सिंहसेनका दुर्गन्धी शरीर युक्त पुत्र हुआ। एक बार मुनिराजसे अपने पूर्वभवका यह वृत्तान्त सुनकर उसे धार्मिक रुचि उत्पन्न हो गयी, और रोहिणी व्रतके प्रभावसे वह उस मुनि-हत्याके पापसे मुक्त होकर अशोक कुमार उत्पन्न हुआ। पुण्यास्रव कथाकोश (३६-३७) में भी यह कथानक आया है, और वह भी इसी कथाकोशपर आधारित प्रतीत होता है।

कथाकोशके अन्तर्गत रोहिणी चरित्रके उपर्युक्त तीनों उपाख्यानोंमें मुनि-घातके पापसे कुष्ठ रोगकी उत्पत्ति, नरक-गति, नीच योनियोंमें परिभ्रमण, और अन्ततः धार्मिक आचरण-द्वारा उस पापका परिमार्जन, सुगति और सुखोंकी प्राप्तिके उदाहरण उपस्थित किये गये हैं। उपर्युक्त समस्त कथानकोंके मिलानसे इस बातमें सन्देह नहीं रहता कि प्रस्तुत सुगन्धदशमी कथाका सबसे निकटवर्ती आधार रोहिणीका पूर्वभव-वृत्तान्त ही है।

प्रस्तुत सभी कथानकोंमें मुनिनिन्दा या निरादरके पापसे कुष्ठव्याधि व दुर्गन्धित शरीरकी उत्पत्तिके अतिरिक्त दूसरा प्रबल तत्त्व है, नीच योनियोंकी दीर्घ परम्परा। महाभारतके मत्स्यगन्धा-सम्बन्धी आख्यानमें वह परम्परा दूसरे जन्मसे आगे नहीं बढ़ी। किन्तु विष्णुपुराण (३,१८) में एक ऐसा आख्यान भी आया है, जिसमें नीच योनियोंकी एक लम्बी शृंखला दिखलायी गयी है। एक समय राजा शतधनु और उनकी रानी शैब्या गंगामें स्नान करके निकले ही थे कि उन्हें अपने सम्मुख एक पाषण्डीके दर्शन हुए, जो राजाके

धनुर्वेदी आचार्यका मित्र था। अतः राजाने उससे गौरवपूर्ण मित्रवत् व्यवहार किया। इस पापके फलसे वह मरकर क्रमशः शृगाल, वृक, गृध्र, व्याल व मयूर हुआ। प्रत्येक जन्ममें उसकी पतिव्रता पत्नीने उसके पूर्व-जन्मोंका स्मरण कराया, जिससे पाषण्डोंके साथ सद्व्यवहारका घोर पाप क्रमशः क्षीण होते-होते वह मयूरके जन्ममें राजा जनकके अश्वमेध यज्ञमें जा पहुँचा। उन्होंने यज्ञानुष्ठानसम्बन्धी अवभृथस्नानके समय उसे भी स्नान कराया, जिसके पुण्यसे वह अगले जन्ममें स्वयं राजा जनकका पुत्र हुआ।

वैदिक परम्पराके पुराणोंमें विष्णुपुराण अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन माना जाता है; अतः महाभारतके समान इस पुराणके वृत्तान्तका प्रभाव भी पूर्वोक्त जैन-आख्यानोंपर पड़ा हो तो आश्चर्य नहीं।

४. कथाका उत्तर भाग

प्रस्तुत सुगन्धदशमी कथाका दूसरा भाग, जो दूसरी सन्धिमें वर्णित है, अपनी मौलिकता और रोच-कताकी दृष्टिसे विशेष महत्त्वपूर्ण है। सुगन्धदशमी व्रतके पुण्यसे दुर्गन्धा अपने अगले जन्ममें रत्नपुरके सेठ जिनदत्तकी रूपवती पुत्री तिलकमती हुई। किन्तु उसका पूर्वकृत कुछ पापकर्म अभी भी भोगनेको शेष रहा था। अतः जन्मके कुछ ही दिन पश्चात् उसकी माताका देहान्त हो गया। पिताने दूसरा विवाह किया, और उससे भी एक कन्या उत्पन्न हुई तेजमती। सौतेली माँ अपनी पुत्रीको बहुत प्यार करती, और तिलकमतीसे उतना ही द्वेष। इस कारण इस कन्याका जीवन बड़े दुःखसे व्यतीत होने लगा। युवावस्था आयी और पिता-को कन्याओंके विवाहकी चिन्ता हुई। किन्तु इसी समय उन्हें वहाँके नरेश कनकप्रभका आदेश मिला कि वे रत्नोंको खरीदनेके लिए देशान्तर जायें। जाते समय सेठ पत्नीसे कह गया कि सुयोग्य वर देखकर दोनों कन्याओंका विवाह कर देना। जो वर आते वे तिलकमतीके रूपपर मुग्ध होकर, उसीकी याचना करते। किन्तु सेठानी उसकी बुराई कर अपनी पुत्रीको ही आगे करती, और उसीकी प्रशंसा करती। तो भी वरके हठसे विवाह तिलकमतीका ही पक्का करना पड़ा। विवाहके दिन सेठानी तिलकमतीको यह कहकर श्मशान-में बैठा आयी कि उनकी कुल-प्रथाके अनुसार उसका वर वहीं आकर उससे विवाह करेगा। किन्तु घर आकर उसने यह हल्ला मचा दिया कि तिलकमती कहीं भाग गयी। लग्नकी वेला तक उसका पता न चल सकनेके कारण वरका विवाह तेजमतीके साथ कराना पड़ा। इस प्रकार कपटजाल-द्वारा सेठानीने अपनी इच्छा पूरी की।

उधर राजाने महलपर चढ़कर देखा कि एक सुन्दर कन्या घोर रात्रिमें श्मशानमें अकेली बैठी है। वह तुरन्त उसके पास गया और पूछ-ताछ कर व सब बात जान-समझकर उसने स्वयं उससे अपना विवाह कर लिया। पूछनेपर राजाने अपना नाम पिण्डार (ग्वाल—महिषीपाल) बतलाया और यही नाम कन्याने अपनी सौतेली माँको भी बतला दिया। एक पृथक् गृहमें उसके रहनेकी व्यवस्था कर दी गयी। राजा रात्रि-को उसके पास आता, और सूर्योदयसे पूर्व ही चला जाता। पतिने रत्नजटित वस्त्राभूषण भी उसे दिये, जिन्हें देख सेठानी घबरा गयी कि निश्चय ही उन्हें उसके पतिने राजाके यहाँसे चुराकर उसे दिये होंगे। इसी बीच सेठ भी विदेशसे लौट आये और सेठानीसे सब वृत्तान्त सुनकर राजाको खबर दी। राजाने चिन्ता व्यक्त की, और सेठको अपनी पुत्रीसे चोरका पता प्राप्त करनेका आग्रह किया। पुत्रीने कहा मैं तो उन्हें केवल चरणके स्पर्शसे पहचान सकती हूँ; अन्य कोई परिचय नहीं है। इसपर राजाने एक भोजका आयोजन कराया, जिसमें सुगन्धाको आँखें बाँधकर अभ्यागतोंके पैर धुलानेका कार्य सौंपा गया। इस उपायसे राजा ही पकड़ा गया। तब राजाने उस कन्यासे विवाह करनेका अपना समस्त वृत्तान्त कह सुनाया, जिससे समस्त वातावरण आनन्दसे भर गया। इस प्रकार मुनिके प्रति दुर्भावके कारण जो रानी दुखी दरिद्री दुर्गन्धा हुई थी, वही सुगन्धदशमी व्रतके पुण्यसे पूर्वोक्त पापको धोकर पुनः रानी बन गयी।

५. फ्रेन्च और जर्मन कथाओंसे तुलना

इस कथाके प्रसंगमें मुझे सिन्ड्रेला नामक अँगरेजीकी एक कहानीका स्मरण आ गया, जिसे मैंने

अपने स्कूलके दिनोंमें पढ़ा था। अब खोजनेपर वह कहानी मुझे "दि स्लीपिंग ब्यूटी एण्ड अदर फेयरी टेल्स फ्राम दि ओल्ड फ्रेंच, रिटोल्ड बाई ए० टी० क्विलर-कोउच", नामक कथा-संग्रहमें मिल गयी। इस ग्रन्थके आदिमें कहा गया है कि ग्रन्थकारने प्रस्तुत कथानक फ्रेंच भाषाके 'केबिने दे फी' नामक कथा-कोशके एकत्रित सामग्रीके आधारसे लिया है। उसके कर्ता चार्ल्स पेरोल्टका जीवन-काल सन् १६२८ से १७०३ तक माना गया है। संक्षेपतः यह कथानक इस प्रकार है –

एक धनिककी एक सुन्दर कन्या थी। उसके बचपनमें ही उसकी माताकी मृत्यु हो गयी। पिताने दूसरा विवाह किया। इस पत्नीके साथ उसकी पहलेकी दो पुत्रियाँ भी आयीं। सौतेली माँको अपनी सौतेली पुत्रीसे बड़ा द्वेष हुआ, क्योंकि उसके समक्ष उसकी वे दोनों पुत्रियाँ रूप और गुणोंमें बहुत फीकी पड़ती थीं। माँ उस सौतेली लड़कीसे घरका सब काम-काज कराती, उसे फटे-पुराने कपड़े पहनाती तथा सूखा-रूखा खानेको देती। किन्तु वह अपनी दोनों पुत्रियोंको खूब सज-धजसे रखती, और उनकी भी चाकरी उस सौतेली लड़कीसे कराती। इस लड़कीको जब घरके सब काम-काजसे कुछ अवकाश मिलता, तब वह घरके एक कोनेमें जहाँ कोयला रखा जाता था, जाकर पड़ जाती थी। इसीसे उसका नाम 'सिन्ड्रेला' पड़ गया। (सिंडर - कोयला)।

एक बार उस नगरके राजकुमारने नृत्योत्सवका आयोजन किया, जिसमें राज्यके समस्त धनी-मानी निमन्त्रित थे। धनिककी दोनों युवती कन्याओंको भी निमन्त्रण मिला, और वे खूब ठाठ-बाटसे नियत समयपर नृत्योत्सवमें पहुँचीं। किन्तु उस बेचारी सौतेली लड़कीको अपनी उन बहिनोंकी तैयारीका काम तो खूब करना पड़ा, परन्तु उत्सवमें जानेका उसका भाग्य कहाँ? वह अपने उसी गन्दे कोनेमें बैठ सिसक-सिसककर रोने लगी।

रोते-रोते अर्धचेतसी अवस्थामें जब उसने आँखें पोंछकर देखा तो अपने सम्मुख एक दिव्य मूर्तिको खड़ा पाया। उसने बड़े प्यारसे पूछा, "बेटी, रोती क्यों है? तू क्या चाहती है?" इस प्यारकी बोलीसे सिन्ड्रेलाका गला और भी रुँध गया और वह कुछ भी बोल नहीं सकी। तब देवीने स्वयं पूछा, "क्या तू राज-कुमारके नृत्योत्सवमें जाना चाहती है?" सिन्ड्रेलाके हाँ कहनेपर देवीने अपनी जादूकी छड़ीसे छूकर एक कुम्हड़ेको सुन्दर गाड़ीका रूप दे दिया, चूहोंके घोड़े और प्यादे बना दिये, और कन्याके मैले-कुचैले वस्त्रोंको सुन्दर बहुमूल्य वेश व रत्नमय आभूषणोंमें बदल दिया। सिन्ड्रेलाका रूप-सौन्दर्य अब किसी भी राजकन्यासे हीन नहीं रहा। दिव्य रूप व वेश-भूषा तथा राजोचित वैभवके साथ सिन्ड्रेला नृत्योत्सवमें गयी।

उत्सवमें राजकुमार सिन्ड्रेलाकी ओर ही सबसे अधिक आकृष्ट हुआ। उसने उसीका सर्वाधिक आदर-सत्कार किया और उसीके साथ बहुलतासे नृत्य भी किया। अकस्मात् ज्योंही सिन्ड्रेलाने पौने बारह बजे रात्रिकी घण्टी सुनी, त्योंही वह लौटनेके लिए अधीर हो उठी, क्योंकि देवीने उसे खूब सचेत कर दिया था कि उसका वह दिव्य वैभव अर्धरात्रिके पश्चात् नहीं ठहरेगा। वह राजकुमारसे तुरन्त छुट्टी लेकर तथा उसके आग्रह करने पर पुनः दूसरे दिन नृत्योत्सवमें आनेका वचन देकर, अपनी बहिनोंके लौटनेसे पूर्व ही घर आ गयी, तथा अपनी फटी-पुरानी वेश-भूषामें उनके आनेकी प्रतीक्षा करने लगी।

दूसरे दिन पुनः उसी प्रकार, किन्तु उससे भी अधिक सजधजके साथ वह नृत्योत्सवमें पहुँची। आज राजकुमारने अपना सारा समय उसीके साथ व्यतीत किया। वह भी इतनी तल्लीन हो गयी कि उसे अर्धरात्रि-से पूर्व घर लौटनेका ध्यान ही न रहा। अकस्मात् जब पूरे बारह बजेकी घण्टी बजनी प्रारम्भ हुई तब वह सचेत हुई और घबराकर तुरन्त वहाँसे भागी। उस जल्दीमें उसके पैरका एक काँचका जूता निकलकर वहीं रह गया, जिसे राजकुमारने बड़े चावसे उठाकर अपने पास रख लिया।

अब घर लौटनेके लिए सिन्ड्रेलाके पास न वे गाड़ी-घोड़ा थे और न प्यादे। उसकी पोशाक भी अपने स्वाभाविक मैले-कुचैले कपड़ोंमें बदल गयी थी। रात अँधेरी, मार्ग बहुत पथरीला और ऊपरसे घनघोर

पड़ि। अतः वह बड़े कष्टसे अपने घर पहुँच पायी। सौभाग्यसे उसकी बहिनोंकी गाड़ीका एक चाक निकल पड़ा था, जिससे वे भी बहुत विलम्बसे आयीं और सिन्ड्रेला उनके कोपके प्रसादसे बच गयी।

सिन्ड्रेलाके लौटनेपर उसकी वह देवी माता सम्मुख आ उपस्थित हुई, और बोली "बेटी तूने मेरी बातका ध्यान नहीं रखा, जिसके कारण तुझे इतना क्लेश भोगना पड़ा। अच्छा, यह जो तू अपनी छातीमें छिपाये हुए है, वह क्या है?" सिन्ड्रेलाका वह दिव्य वेश तो बदल गया था, किन्तु न जाने क्यों उसने अपनी वह बची हुई काँचकी एक जूती अपनी अँगियामें छिपाकर रख ली थी, और वह अभी भी ज्योंकी त्यों बनी हुई थी। उसे देखकर देवीने कहा, "अच्छा यह एक तो है, पर इसकी जोड़ी कहाँ है?" सिन्ड्रेला घबरायी। किन्तु देवीने कहा, "भला तुम असावधान तो हो, परन्तु जो मेरी देनकी इतनी निशानी बचा ली है, वही तुम्हारे भाग्यकी विधायक होगी।" इतना कहकर देवी अदृश्य हो गयी।

उधर दूसरे ही दिनसे राजकुमार व्याकुल होकर खोज करने लगा—यह काँचकी जूती किसके पैरकी है? उसने घोषणा करा दी कि जिसके पैरमें वह जूती ठीक बैठ जावेगी, वही उसकी प्रिय रानी होगी। क्रमशः एकसे एक राजकुमारियों व अमीरों-जमींदारों व सेठ-साहूकारोंकी कन्याओंने अपने-अपने भाग्यकी परीक्षा की, किन्तु वह जूती किसीके भी पैरमें ठीकसे नहीं बैठी। सिन्ड्रेलाकी दोनों सौतेली बहिनोंकी भी बारी आयी, किन्तु उन्हें भी निराश होना पड़ा। सिन्ड्रेला देख रही थी। उसने कहा, "क्या मैं भी प्रयत्न करूँ?" इसपर उसकी बहिनें हँस पड़ीं। किन्तु राजपुरुषने कहा, "मुझे इस जूतीको सभी युवतियोंके पैरमें पहनानेका आदेश है, इसलिए तुम भी इसे पहनकर देखो।" सबके आश्चर्यका ठिकाना न रहा जब सिन्ड्रेलाका पैर खटसे उस जूतीमें भली प्रकार बैठ गया। यही नहीं, उसने अपनी अंगियामेंसे उसकी जोड़की जूती निकालकर अपने दूसरे पैरमें पहन ली। अब कोयलेके कोनेमें रहनेवाली सिन्ड्रेला राजमहलकी रानी बन गयी।

यही कथानक जर्मनीमें कुछ हेर-फेरके साथ लोक-प्रचलित पाया जाता है। ऐसी लोक-कथाओंका एक संग्रह जेकब लुडविक कार्ल ग्रिम (१७८५-१८६३) कृत 'दि किंडर उण्ड हाउसमार्खेन' की तीन जिल्दोंमें प्रकाशित हुआ था, जिसका अनुवाद अँगरेजीमें 'ग्रिम्स टेल्स' में पाया जाता है। इस संग्रहमें अश्पुटेलकी कहानीका सार यह है—

एक धनिककी पत्नीने मरते समय अपनी एक मात्र पुत्रीको पास बुलाकर कहा—"बेटी, तुम सदा भली रहना, मैं स्वर्गसे भी तुम्हारी देख-रेख करूँगी।" माताकी मृत्युके पश्चात् पुत्री प्रतिदिन उसके श्मशान पर जाकर रोया करती थी।

उसके पिताने शीघ्र ही दूसरा विवाह कर लिया। इस नयी पत्नीकी पहलेसे दो पुत्रियाँ थीं, जो देखनेमें सुन्दर, किन्तु हृदयसे बहुत मैली थीं। वे अपनी सौतेली बहनसे घृणा करतीं, उससे घरका सब काम-काज करातीं, और रूखा-सूखा खानेको देती थीं। वह रसोईघरके राखके ढेरके पास सोया करती थी, जिससे उसका नाम अश्पुटेल पड़ गया।

एक बार वह धनिक किसी मेलेमें जा रहा था। उसने अपनी पुत्रियोंसे पूछा कि वे मेलेसे क्या मँगाना चाहती हैं। एकने अच्छेसे अच्छे वस्त्र और दूसरीने हीरा-मोती लानेको कहा। अश्पुटेलसे पूछनेपर उसने कहा—"पिताजी, जब आप घर लौटने लगें, तब जो वृक्षकी डाल आपके टोपसे उलझ जाये, उसे ही मेरे लिए लेते आइए, बस मुझे और कुछ नहीं चाहिए।" धनिकने वैसा ही किया। घोड़ेपर सवार होकर लौटते समय एक झुरमुटके वनमें उसके टोपसे हैजल (Hazel) वृक्षकी डाल टकरायी। बस उसे ही तोड़ कर वह अपनी अश्पुटेलके लिए लेता आया। अश्पुटेलने उसे ले जाकर अपनी माँ के श्मशान पर लगा दिया, तथा रो रोकर उसे अपने आँसुओंसे सींच डाला।

कुछ समय पश्चात् वहाँके राजाने एक तीन दिनका उत्सव मनाया, जिसमें राजकुमारका स्वयंवर भी होना था। अश्पुटेलकी दोनों बहिनोंको उस उत्सवमें जाना था, अतएव अश्पुटेलको उनके बालोंकी कंघी

करनी पड़ी, उनके जूतोंपर पालिश भी करनी पड़ी, तथा उनकी पोशाककी साज-सम्हाल भी करनी पड़ी। अश्पुटैलने अपनी माँसे अपने जानेकी भी इच्छा प्रकट की। सौतेली माँने उसे टालनेके लिए कहा,, "अच्छा मैं इन कुंडे भर मटरके दानोंको उस राखके ढेरमें मिला देती हूँ, यदि तुम उन्हें दो घण्टोंके भीतर चुनकर अलग कर लोगी, तो मैं तुम्हें भी स्वयंवरमें जाने दूँगी।" अश्पुटैलने यह शर्त स्वीकार कर ली, और अपने साथी कबूतरों व अन्य पक्षियोंकी सहायतासे उस कामको एक घण्टेमें ही निपटा दिया। किन्तु माँने फिर कहा, "नहीं, नहीं, तुम्हारी पोशाक बहुत मलिन है, अतः मैं तुम्हें राजोत्सवमें न जाने दूँगी।" अश्पुटैलके पुनः आग्रह करनेपर उसने कहा, "अच्छा, मैं अब दो कुण्डे मटरके दानोंको राखके ढेरमें मिलाती हूँ, यदि तुम एक घण्टेमें इन्हें चुन लोगी, तो मैं तुम्हें भी जाने दूँगी।" अश्पुटैलने कबूतरोंकी सहायतासे यह कार्य भी पूरा कर लिया। किन्तु सौतेली माँका हृदय फिर भी न पसीजा। अन्तमें उसने यह कहकर उसे बिलकुल मना कर दिया कि तुम्हारा वहाँ जाना बिलकुल निरर्थक है। तुम्हारे पास न तो अच्छी पोशाक है, और न तुम्हें नाचना ही आता है। अतएव तुम्हारे वहाँ जानेसे हम सबको लज्जित होना पड़ेगा।

सब राजोत्सवमें चले गये, और बेचारी अश्पुटैल अपनी माताकी श्मशान भूमि पर जाकर उस हैजल-के वृक्षके नीचे फूट-फूटकर रोने लगी। और गाने लगी —

हिलो हिलो तुम हैजल वृक्ष। चाँदी सोना बरसे स्वच्छ॥

इस पर उसके मित्र पक्षीने वृक्षसे उड़कर उसे चाँदी-सोनेकी पोशाक और रेशमकी जूतियाँ ला दीं। उन्हें पहिनकर अश्पुटैल भी स्वयंवर उत्सवमें जा पहुँची। उसकी बहिनोंने उसे देखा, किन्तु वे पहिचान न सकीं। उन्होंने समझा वह कोई राजकुमारी होगी।

उत्सवमें राजकुमारने अश्पुटैलको ही अपने साथ नृत्य करनेके लिए चुना, और अन्त तक उसका हाथ न छोड़ा। बहुत रात गये जब वह घर जाने लगी तब राजकुमारने स्वयं उसके साथ जाकर घर पहुँचा देनेकी इच्छा प्रकट की। किन्तु इस बातसे अश्पुटैल बहुत घबरायी, और राजकुमारकी आँख बचाकर वहाँसे निकल भागी।

दूसरे दिनके उत्सवमें भी अश्पुटैल उसी भाँति सुसज्जित होकर पहुँची। आज राजकुमारने निश्चय कर लिया कि वह उसका साथ कभी न छोड़ेगा। उत्सवसे बिदा होते समय वह उसके साथ हो गया। किन्तु घरके पास पहुँचने पर वह राजकुमारकी आँखें बचाकर बगीचेमें छिप गयी, और चुपके-चुपके अपने स्थान पर जा पहुँची। परन्तु राजकुमारने निश्चय कर लिया था, अतएव वह वहीं डटा रहा। अश्पुटैलके पिताके लौट आने पर राजकुमारने उससे कहा कि उसकी प्रिया इसी बगीचेमें कहीं छिप गयी है। दोनोंने मिलकर बहुत ढूँढ़ा, किन्तु उसका पता न चला।

तीसरे दिन और भी अधिक सुसज्जित होकर अश्पुटैल उत्सवमें पहुँची। सबकी दृष्टि उसीके अनुपम सौन्दर्य और अपार वैभवकी ओर थी। राजकुमारने आज पलभरके लिए भी उसका साथ न छोड़ा। जाते समय पुनः उसका पीछा किया। तथापि अपने घरके समीप पहुँचकर अश्पुटैल अदृश्य हो गयी। किन्तु घबराहटमें उसके पैरकी एक जूती पैरसे निकलकर गिर पड़ी। इस सुवर्णजटित जूतीको राजकुमारने अपने पास रख लिया, और अपने पिताके पास जाकर कहा कि जिसके पैरमें यह जूती ठीक बैठ जायेगी, उसीसे मैं अपना विवाह करूँगा। जिस घरमें उसकी सुन्दरी प्रिया अदृश्य हुई थी, वह घर तो उसे विदित था ही। अतः वह जूती उसी घरमें लायी गयी। पहले बड़ी लड़कीने अपना भाग्य आजमाया किन्तु उसके पैरका अँगूठा इतना बड़ा था कि वह जूतीमें किसी प्रकार समाता ही नहीं था। तब उसकी माँने उस अँगूठेको कटवा दिया, और जूती पहनाकर उसे राजकुमारके सम्मुख उपस्थित किया। राजकुमार घोड़ेपर बैठाकर उसे अपने साथ ले जाने लगा। जब वे उस हैजल वृक्षके समीपसे निकले, तब उसपर बैठा परेवा पक्षी गाने लगा—

छोटो छोटो राजकुमार। देखो जूती खूब निहार ॥
ढूँढ़ो अपनी पत्नी प्यारी ! यह है रानी नहीं तुम्हारी ॥

यह सुनकर राजकुमार लौट पड़ा, और उसे उसके घर उतार दिया, अब माताने अपनी दूसरी पुत्रीके पैरमें उस जूतीको पहनानेका प्रयत्न किया, उसकी एड़ी इतनी बड़ी थी कि वह जूतीमें नहीं बैठ सकी। तथापि रानी बनानेके लोभसे माँने उसे जबर्दस्ती जूतीमें ठूँस दिया, जिससे एड़ी लहू-लुहान हो गयी। राजकुमार उसे अपने घोड़ेपर बैठाकर ले चला। किन्तु उस हैजल वृक्षसे पुनः वही गानेकी ध्वनि सुनायी दी। अतएव राजकुमार फिर लौट पड़ा। लाचार होकर अबकी बार अश्पुटेलके पैरमें जूती पहनायी गयी। वह झटसे ठीक बैठ गयी। उसे लेकर जब राजकुमार हैज़ल वृक्षके समीपसे निकला तो उसे सुनायी पड़ा –

अब घर जाओ राजकुमार। खूब करो रानीसे प्यार ॥

इतना गाकर वह कपोत पक्षी उड़कर उस सुन्दरीके कन्धे पर आ बैठा। वे सब जाकर राजमहलमें प्रविष्ट हुए।

इन फ्रेंच और जर्मन दोनों कथाओंमें परस्पर बहुत-सी बातोंमें भेद होने पर भी उनमें निम्नलिखित तत्त्व समान रूपसे विद्यमान हैं –

एक धनी गृहस्थ, उसकी पत्नी और एक पुत्री। पत्नीके देहान्त हो जाने पर धनीका पुनर्विवाह व नयी पत्नीकी अपनी दो पुत्रियाँ। इस पत्नीका अपनी दो पुत्रियोंसे प्यार, और उस सौतेली लड़कीसे दुर्व्यवहार। राजमहलमें उत्सव। सौतेली लड़कीकी अवहेलना, किन्तु एक अदृश्य शक्ति (उसकी मृत माताकी आत्मा)-द्वारा उसकी सहायता। दर्शन-मात्रसे राजकुमारका उसकी ओर आकर्षण, और उसकी खोजबीन। सौतेली माँका अपनी पुत्रियोंको रानी बनानेका निष्फल प्रयास। अन्ततः सौतेली लड़कीका भाग्योदय और राजमहलकी रानीके रूपमें प्रवेश।

ये समस्त तत्त्व प्रस्तुत सुगन्धदशमी कथाके द्वितीय भागमें विद्यमान हैं, और जो भेदकी बातें हैं, वे भारतीय और यूरोपीय सभ्यता व संस्कृतिके बीच भेदसे सम्बन्ध रखती हैं। यूरोपीय कथाओंमें धनिकने अपनी पूर्व पत्नीकी मृत्यु होने पर एक ऐसी महिलासे विवाह किया, जिसकी पहलेसे ही दो पुत्रियाँ थीं। यह बात भारतीय स्वस्थ परम्पराके अनुकूल नहीं। अतएव यहाँ दूसरा विवाह हो जानेके पश्चात् एक पुत्री उत्पन्न होनेकी बात कही गयी है। उसी प्रकार राजोत्सवका आयोजन, उसमें उन कन्याओंका जाना व राजकुमारके साथ नृत्य करना, तथा जूतीके द्वारा राजकुमारको सच्ची प्रेयसीका पता लगाया जाना, यह सब भी यूरोपीय परम्पराके अनुकूल है, भारतीयताके अनुकूल नहीं। दूसरी बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि यूरोपीय दोनों कथाओंमें उस सौतेली कन्याके दुर्भाग्यको पलटनेके लिए बहुत कुछ दैवी चमत्कारका आश्रय लिया गया है। किन्तु उक्त भारतीय कथानकमें कहीं भी किसी अप्राकृतिक तत्त्वकी योजना दिखाई नहीं देती। सर्वत्र ऐसी स्वाभाविकता है जो कभी भी कहीं घटित हो सकती है। यहाँ जूती-द्वारा पत्नीकी पहचान नहीं, किन्तु पत्नी-द्वारा पतिके चरण-स्पर्शसे उसकी पहचान करायी गयी है। यह भारतीय संस्कृतिका अपना असाधारण लक्षण है, जो यूरोपीय रीति-रिवाजके अनुकूल नहीं।

उक्त सांस्कृतिक तत्त्वोंको पृथक् करके देखने पर हमें यह प्रतीत हुए बिना नहीं रहता कि सम्भवतः यूरोप और भारतके बीच इस कथानकका आदान-प्रदान हुआ है। मैक्समूलर व हर्टेल आदि अनेक विद्वानोंने यह सिद्ध कर दिखाया है कि भारतीय कथाओंका अटूट प्रवाह अति प्राचीनकालसे पश्चिमकी ओर प्रवाहित होता रहा है, जिसके फलस्वरूप वेदकालीन, जातकसम्बन्धी तथा पंचतन्त्र, हितोपदेश व कथासरित्सागर आदि भारतीय आख्यान साहित्यमें निबद्ध अनेक लोक-कथाएँ पाश्चात्य देशोंमें जाकर, वहाँके वातावरणके अनुकूल हेर-फेरसहित प्रचलित हुई पायी जाती हैं। उक्त यूरोपीय कथाके सबसे प्राचीन लेखक चार्ल्स परोल्टका जीवन काल सन् १६२८ से १७०३ तक माना गया है। उनसे पूर्व इस कथानकके यूरोपमें प्रचलित होनेका कोई प्रमाण हमारे सम्मुख नहीं है। इसकी तुलनामें भारतकी सुगन्धदशमी कथाकी परम्परा

अति प्राचीन है। इसका मराठी अनुवाद जिनसागर-द्वारा सन् १७२४ के लगभग, संस्कृत अनुवाद श्रुतसागर-द्वारा व गुजराती अनुवाद जिनदास-द्वारा सन् १४५० के लगभग, एवं अपभ्रंशकी मूल रचना सन् ११५० ई० के लगभग हुई पायी जाती है। अतः कोई आश्चर्य नहीं जो भारतीय अन्य कथाओंके सदृश इस कथाका भी देशान्तर-गमन हुआ हो, जिसका प्रसार-क्रम गवेषणीय है।

६. कथाका उत्तरकालीन प्रभाव

सुगन्धदशमी कथाका प्रभाव उससे उत्तरकालीन कथा-साहित्यपर पर्याप्त मात्रामें पड़ा दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणार्थ—हरिभद्रकृत सम्मत्तसत्तरि (सम्यक्त्वसप्तति) नामक ७० गाथात्मक एक रचना है, जिसपर गुणशेखर सूरिके शिष्य संघतिलक सूरिने वि० सं० १४२२ (सन् १३६५) में एक सुविस्तृत टीका लिखी है। इस टीकामें उदाहरण रूपसे बीस कथाओंका समावेश पाया जाता है, जिसमें देव-गुरु वैयावृत्यके उदाहरणमें 'आरामसोहा' नामक प्राकृत गद्यात्मक कथा (सूरियपुर, वि० सं० १९९७) यहाँ ध्यान देने योग्य है —

चम्पा नगरीमें कुलधर नामक सेठ और उसकी कुलानन्दा पत्नी रहते थे। उनके कमलश्री आदि सात पुत्रियोंके पश्चात् आठवीं कन्या उत्पन्न हुई। उस समय सेठकी सम्पत्ति नष्ट हो जानेसे वे दुखी रहते थे। इसीसे इस कन्याका नाम निर्भगा पड़ गया। युवती हो जाने पर भी उसके विवाहका सेठ कोई प्रबन्ध नहीं कर पाता था जिससे वह चिन्तित रहने लगा। अकस्मात् एक दिन कोई नवागन्तुक उनके द्वारपर कुछ पूछताछके लिए आ उपस्थित हुआ। सेठने उसे लोभ देकर अपनी पुत्रीसे विवाह करनेके लिए राजी कर लिया। वह चोल देशसे आया था, अतः वहीं जानेके लिए सेठने उसे अपनी पुत्रीसहित केवल मार्गके लिए कुछ सम्बल देकर बिदा किया। उज्जैनमें आकर उसने विचार किया कि उनके पास मार्गमें दोनोंके खाने-पीने योग्य सामग्री नहीं है। अतः वह अपनी वधूको वहीं सोती छोड़ वहाँसे चल दिया। जागने पर निर्भगा विलाप करने लगी। उसी समय मणिभद्र सेठने वहाँ पहुँच कर उसे आश्वासन दिया और अपने घर ले आया। यहाँ वह घरका काम-काज तथा मन्दिरमें धर्म कार्य बड़ी श्रद्धापूर्वक करने लगी। मन्दिरका सूखा उद्यान भी उसने अपने परिश्रमसे हरा-भरा कर लिया। अन्ततः मरकर वह स्वर्गमें गयी।

स्वर्गमें अपनी आयु पूर्ण कर निर्भगा भारतवर्षमें कुसट्ट देशवर्ती 'बलासअ' नामक ग्राममें अग्निशर्मा ब्राह्मणकी पत्नी अग्निशिखाके गर्भसे विद्युत्प्रभा नामक कन्या उत्पन्न हुई। आठ वर्षकी आयुमें उसकी माताका देहान्त हो गया, और उस छोटी सी बालिकाके ऊपर ही घरका सब काम-काज आ पड़ा। उसका बोझ हलका करनेके निमित्त पिताने दूसरा विवाह किया, जिससे एक और कन्याका जन्म हुआ। यह विमाता विद्युत्प्रभासे अच्छा व्यवहार नहीं करती थी। अतः उसका भार हलका नहीं हुआ, बल्कि दुगुना हो गया, जिससे कन्या अपने दुर्भाग्यको दोषी ठहराने लगी। एक दिन वह सदैवकी भाँति अपनी गौओंको चराने ले गयी थी। मध्याह्न हो गया, और वह ऐसे स्थानपर पहुँच गयी जहाँ वृक्षकी छाया भी उपलब्ध नहीं थी। वह थक कर धूपमें ही लेट गयी। उसी समय एक काला नाग वहाँ आ पहुँचा, जिसने मानवी भाषामें उसे जगाया, और अपना पीछा करने वाले गारुडिकसे रक्षाके लिए अपनी गोदमें आश्रय देनेकी प्रार्थना की। कन्याने वही किया। गारुडिकोंके चले जानेके पश्चात् उस नागने अपना दिव्य रूप प्रकट किया, और कन्यासे वरदान माँगनेको कहा। उसने केवल गौओंको चरानेकी सुविधाके लिए अपने ऊपर छाया प्राप्त करनेकी इच्छा प्रकट की। नागदेवने उसके ऊपर एक सुन्दर उद्यानका निर्माण किया जो उसके साथ-साथ उसकी इच्छानुसार गमन करे। इसके अतिरिक्त उसने यह भी वरदान दिया कि जब भी उसपर कोई विपत्ति पड़े, या साहाय्यके लिए उसका स्मरण करे, तभी वह आकर उसकी रक्षा व इच्छापूर्ति करेगा। इन वरदानोंसे उसके दिन सुखपूर्वक बीतने लगे।

एक दिन विद्युत्प्रभा गौओंको चराकर मध्याह्नमें उसी माया-उद्यानकी छायामें विश्राम कर रही थी,

तभी पाटलिपुत्रका राजा जितशत्रु विजय-यात्रानिमित्त अपनी चतुरंगिणी सेनासहित वहाँसे निकला, और उस सुन्दर उद्यानमें ही अपना पड़ाव डालकर विश्राम करने लगा। सैन्यके कोलाहलसे जागकर कन्या अपनी गौओंको देखने चल पड़ी। उसके साथ वह उद्यान भी चल पड़ा। इस आश्चर्यसे प्रभावित होकर राजाने उसके मन्त्रीसे परामर्श कर उससे पूछताछ की, और उसका समस्त वृत्तान्त जानकर उसके पिताको बुलाकर; उसकी अनुमतिसे उस कन्याके साथ अपना विवाह कर लिया। उद्यानके अतिशयके प्रसंगसे राजाने अपनी इस नयी वधूका नाम आरामशोभा रखा।

अपनी सौतेली पुत्रीके इस सौभाग्यसे उसकी विमाताके चित्तमें ईर्ष्या और विद्वेषकी अग्नि भड़क उठी और उसने सोचा कि यदि किसी प्रकार उसकी मृत्यु हो जाये, तो राजा उसकी औरस कन्याको ही कदाचित् अपनी रानी बना ले। इस आशासे उसने विष-मिश्रित मोदक बनाये, और इन्हें अपने पतिके हाथों आरामशोभाको खानेके लिए भेजा। किन्तु मार्गमें जब वह विश्राम कर रहा था, तब उस नागदेवने इस वृत्तान्तको जानकर, उन विषमय मोदकोंके स्थान पर अमृत मोदकोंसे उस पात्रको भर दिया। उन मोदकोंकी राजभवनमें बड़ी प्रशंसा हुई। घर लौटने पर उससे सब वृत्तान्त सुनकर, उसकी पत्नीको बड़ी निराशा हुई। उसने दूसरी बार हालाहल विषमिश्रित फेनियोंकी पिटारी भेजी, जिसे पूर्ववत् उस नागदेवने अमृतफेनीसे बदल दिया। तृतीय बार तालपुट विषयुक्त मांडे भेजे गये, जो पुनः नागदेवके प्रसादसे अमृतमय होकर राजभवनमें पहुँचे। पत्नीके निर्देशानुसार इस बार ब्राह्मणने अपनी गर्भवती पुत्रीको साथ लिवा ले जानेका भी आग्रह किया। विवश होकर राजाको अनुमति देनी पड़ी। अपने पितृगृहमें आरामशोभाने पुत्रको जन्म दिया; तत्पश्चात् अवसर पाकर विमाताने उसे अपने घरके पीछेके कुएँमें ढकेल दिया, और अपनी पुत्रीको राजकुमारके समीप सुलाकर उसे ही आरामशोभा प्रकट किया।

जब परिचारिकाओंने आरामशोभाको अपने सौन्दर्यादि गुणोंसे हीन देखा तो वे बहुत घबरायीं। उधर राजाकी ओर से मन्त्री आया, और राजकुमार सहित उसकी माताको पाटलिपुत्र लिवा ले गया। राजाने भी उसे अपने स्वाभाविक रूप तथा अनुगामी उद्यानसे रहित देखकर खेद और आश्चर्य प्रकट किया। पूछने पर नयी आरामशोभाने कपट उत्तर देकर प्रसंगको टाल दिया।

उधर कूपमें गिरने पर सती आरामशोभाने नागदेवका स्मरण किया। उसने तुरन्त आकर उसकी रक्षा की, और उसे वहीं पातालभवन बनाकर रखा। कुछ काल पश्चात् आरामशोभाने अपने पुत्रको देखनेकी इच्छा प्रकट की। नागदेवने उसे इस प्रतिबन्धके साथ अनुमति देकर राजभवनमें पहुँचा दिया कि यदि वह वहाँसे सूर्योदय होनेसे पूर्व लौटकर नहीं आयी तो उसके केशपाशसे एक मृतनाग गिरेगा और फिर उसे उसके दर्शन न होंगे। आरामशोभाने यह स्वीकार किया, और धात्रियोंके बीच सोये हुए पुत्रको लाड़-प्यार कर, उसपर अपने दिव्य उद्यानके पुष्पोंकी वृष्टि करके वह घर आ गयी। प्रभात होनेपर धात्रियोंने उन पुष्पोंको देख राजाको खबर दी। राजाके पूछनेपर उस बनावटी आरामशोभाने कह दिया कि मैंने ही अपने दिव्य उद्यानके पुष्पोंको अपने पुत्रपर बिखेरा है। राजाने कहा कि तुम उस उद्यानको लाकर मुझे दिखलाओ। किन्तु उसने उत्तर दिया वह उद्यान यहाँ दिनको नहीं लाया जा सकता। राजा पुनः शंकित होकर रह गया।

इस प्रकार तीन दिन बीत गये। चौथे दिन राजा सतर्क रहा और ज्योंही आरामशोभा पुत्रपर फूल बिखेर कर जाने लगी, त्योंही राजाने उसका हाथ पकड़ लिया, और उसके प्रार्थना व आग्रह करनेपर भी उसे नहीं छोड़ा, प्रत्युत समस्त वृत्तान्त जानना चाहा। विवश होकर आरामशोभाने अपनी विमाताका वह कपटजाल प्रकट कर दिया। इतनेमें सूर्योदय हो गया। और केशपाशसे मृतनाग गिरा। इसे देख आरामशोभा मूर्छित हो गयी। सचेत होनेपर उसने अपने रक्षक नागदेवका सब वृत्तान्त कह सुनाया। राजाने रुष्ट होकर उसकी कपटिनी भगिनीको बाँधकर कोड़े मारना प्रारम्भ किया, व उसके पिता और विमाताको नाक-कान काटकर देशसे निकाल देनेका आदेश दिया। किन्तु आरामशोभाने प्रार्थना कर उन

सबको क्षमा प्रदान करायी एवं अपनी भगिनीको अपने पास ही रखा।

एक दिन आरामशोभाने अपने पतिसे कहा—नाथ मैं पहले दुःखी थी, पीछे इतनी सुखी हुई, यह किसी पूर्वकृत कर्मका परिणाम होना चाहिए। यह बात जाननेके लिए राजा-रानी उसी समय विहार करते हुए उद्यानमें आये मुनिराज सूरिके समीप गये, और उनसे अपनी शंकाके निवारणकी प्रार्थना की। मुनिने आरामशोभाके पूर्वजन्मकी कथा सुनायी, और बतलाया कि उसने पूर्वजन्ममें मिथ्यात्वी पिताके गृहमें रहते हुए जो पाप उपार्जन किया था, उसके फलस्वरूप उसे इस जन्ममें उतना दुःख भोगना पड़ा। पीछे मणिभद्र सेठके घरमें रहते हुए उसने जो देव-गुरु-वैयावृत्य किया था, फलके जलसे उसे वे असाधारण सुखभोग प्राप्त हुए। उसने जो जिनमन्दिरका सूखा उद्यान अपने परिश्रमसे हरा-भरा कर दिया था उसके फलसे उसे यह दिव्य उद्यान प्राप्त हुआ, इत्यादि। यह सुनकर आरामशोभाको अपना जातिस्मरण हो आया और राजा-रानी दोनों ही अपने पुत्रका राज्याभिषेक कर, प्रव्रजित हो गये।

इस कथानकमें प्रस्तुत सुगन्धदशमी कथाके उत्तर भागका प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। आराम-शोभाके बालपनमें ही उसकी माताकी मृत्यु, पिताका दूसरा विवाह, और उससे भी एक कन्याकी उत्पत्ति, विमाताका विद्वेष, बड़ी पुत्रीका भाग्योदय व राजरानी पदकी प्राप्ति, विमाता-द्वारा उसके स्थानपर अपनी औरस पुत्रीको स्थापित करनेका छल-कपट, आदि तत्त्व वे ही हैं, जो सुगन्धदशमी-कथामें हैं। किन्तु उनके विवरण और विस्तारमें बहुत-सा भेद है, जो इस कथानकका अपना वैशिष्ट्य है। विशेष ध्यान देने योग्य वहाँ विमाताका वह प्रयास है, जिसके द्वारा आरामशोभाका विवाह हो जानेपर भी उसने उसके स्थानपर अपनी पुत्रीको रानी बनानेका कपटजाल रचा। दूसरी बात ध्यान देने योग्य है नागदेव-द्वारा आरामशोभाके भाग्योदयमें योगदान, तथा राजभवनमें आकर सूर्योदयसे पूर्व लौटने, व अन्यथा उसके नागदेवके सहयोगसे वंचित हो जाने की। ये प्रसंग पूर्वोक्त सिंड्रेला और अश्पुटेलके फ्रेंच और जर्मन कथानकोंसे तुलनीय हैं, जहाँ उस सौतेली पुत्रीकी देवीने सहायता की, आधी रातसे पूर्व राजोत्सवसे लौट आनेका प्रतिबन्ध लगाया व विमाताने अपनी एक या दूसरी पुत्रीको जबर्दस्ती रानी बनानेका प्रयास किया। आश्चर्य नहीं, सुगन्धदशमीके जिस कथानकका विदेशमें प्रसार हुआ, उसमें इस कथाके उक्त तत्त्वोंका भी प्रवेश व मिश्रण रहा हो।

७. सुगन्धदशमी-कथा : संस्कृत

संस्कृतमें वर्णित सुगन्धदशमी-कथा १६१ श्लोकोंमें पूर्ण हुई है, जिनमें अन्तके एक पद्यको छोड़कर शेष सब अनुष्टुप छन्दमें हैं। अन्तिम पद्यका छन्द मालिनी है। इसकी शैली साधारण कथा-प्रधान है। इसके कर्ताने अपने गुरुके नामका निर्देश रचनाके आदिमें और अन्तमें भी किया है। इससे सिद्ध है कि उसके रचयिता विद्यानन्दि यतिके शिष्य श्रुतसागर हैं। उन्होंने स्वयं अपने व अपनी रचनाके विषयमें इतना और कहा है कि वे वर्णी अर्थात् ब्रह्मचारी (देशव्रती साधु) थे, मुनि नहीं, तथा उन्होंने यह रचना अपने गुरु विद्यानन्दिके अनुरोधसे व उन्हींके उपदेशसे की थी। श्रुतसागरकी और भी अनेक रचनाएँ हैं टीकात्मक और स्वतन्त्र। इनमें यहाँ विशेष उल्लेखनीय है उनकी अनेक व्रत-कथाएँ, जैसे ज्येष्ठ-जिनवर कथा, षोडश-कारण कथा, मुक्तावली कथा, मेरुपंक्ति कथा, लक्षण-पंक्ति कथा, मेघमाला-व्रत कथा, सप्तपरम स्थान कथा, रविवार कथा, चन्दनषष्ठी कथा, आकाशपंचमी कथा, पुष्पाञ्जली कथा, निर्दुःख सप्तमी कथा, श्रावण-द्वादशी कथा व रत्नत्रय कथा। इनमें-से कुछ रचनाओंमें श्रुतसागरने अपने गुरुके आम्नायादि विषयपर कुछ अधिक प्रकाश डाला है। जैसे षोडशकारण कथामें उन्होंने कहा है–

श्री मूलसंघे विबुधप्रपूज्ये श्रीकुन्दकुन्दान्वय उत्तमेऽस्मिन्।
विद्याविनन्दी भगवान्बभूव स्वबुद्धसारश्रुतसारमाप्तः ॥
तत्पादभक्तः श्रुतसागराह्वो देशव्रती संयमिनां वरेण्यः।
कल्याणक तेंसुहुराग्रहेण कथामिमां चारु चकार सिद्ध्यै ॥

इसपर-से जाना जाता है कि उनके गुरु विद्यानन्दि मूलसंघ कुन्दकुन्दान्वयके आचार्य थे। अन्य प्रमाणोंपर-से इस आम्नायकी सूरतमें स्थापित शाखाके निम्न आचार्योंका परिचय प्राप्त होता है—पद्मनन्दि देवेन्द्रकीर्ति, विद्यानन्दि, मल्लिभूषण, लक्ष्मीचन्द्र आदि। विद्यानन्दिने अनेक मूर्तियोंकी स्थापना करायी थी, जिनमें उनके वि० सं० १५१३ से १५३७ तकके उल्लेख मिलते हैं। उनके द्वारा सूरतमें एक पंचमेरुकी स्थापना सं० १५२६ में करायी गयी थी, जिसके चारों कोनोंपर क्रमशः पद्मनन्दि, देवेन्द्रकीर्ति, विद्यानन्दि और कल्याणनन्दिकी मूर्तियाँ भी स्थापित हैं। इसपर-से श्रुतसागरका रचनाकाल वि० सं० १५३० (सन् १४७२) के आस-पास अनुमान किया जा सकता है।

यहाँ श्रुतसागरकी एक रचना प्राकृत-व्याकरण विशेष उल्लेख करने योग्य है। उनके इस व्याकरणका नाम औदार्य चिन्तामणि है, और उसपर उनकी स्वोपज्ञ वृत्ति भी है। उसके आदिमें उन्होंने कहा है—

अथ प्रणम्य सर्वज्ञं विद्यानन्द्यास्वदप्रदम्।
पूज्यपादं प्रवक्ष्यामि प्राकृतव्याकृतिं सताम्॥
समन्तभद्रैरपि पूज्यपादैः कलङ्कमुक्तैरकलङ्कदेवैः-
र्यदुक्तमप्राकृतमर्थसारं तत्प्राकृतं च श्रुतसागरेण॥

इस व्याकरणके द्वितीय अध्यायकी पुष्पिका है :—

इत्युभयभाषाकविचक्रवर्ति-व्याकरणकमलमार्तण्ड-तार्किकशिरोमणि-परमागमप्रवीणसूरिश्रीदेवेन्द्रकीर्तिप्र-शिष्य-मुमुक्षुविद्यानन्दिभट्टारकान्तेवासि-श्रीमूलसंघपरमात्मविद्वत्सूरिश्रुतसागर-विरचिते औदार्यचिन्तामणिनाम्नि स्वोपज्ञवृत्तिनि प्राकृतव्याकरणसंयुक्ताव्ययनिरूपणो नाम द्वितीयोऽध्यायः।

यहाँ श्रुतसागरकी उभयभाषा अर्थात् संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओंकी विद्वत्ता, व्याकरणमें निपुणता तथा तर्क व आगममें प्रवीणताका उल्लेख किया गया है।

८. सुगन्धदशमी कथा : गुजराती

इस रचनाका ग्रन्थकार ने 'रास' नाम दिया है, और उसे प्रथम नमस्कार पद्यके अतिरिक्त आगे 'भासों'में विभक्त किया है। इन भासोंमें क्रमशः २१ + १२ + २२ + २८ + २३ + २४ + ३२ + ४३ इस प्रकार कुल २०५ पद्य हैं। जसोधरनी, विनतिनो, चोपाइनी, रासनी, सुणो सुन्दरिनो, हेलिको, गुणराज भासकी और चोपईनी, ये उन भासोंके नाम दिये गये हैं। चोपई तो हिन्दी पाठकोंका सुपरिचित छन्द है, क्योंकि उसीमें तुलसीकृत रामायणकी तथा अन्य अनेक प्राचीन हिन्दी काव्योंकी रचना हुई है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि उक्त चोपई भासोंका अन्त कुछ 'दूहा' पद्योंके साथ किया गया है। यह चौपई-दोहाकी शैली अपभ्रंश काव्यके पद्धडिया घत्ता छन्दात्मक सुसम्बद्ध कडवकोंपर-से हिन्दी आदि भाषाओंमें अवतरित हुई है। विनति और रास ये गीतोंकी दो शैलियाँ रही प्रतीत होती हैं। 'सुणो सुन्दरि' पद उस भासकी प्रत्येक पंक्तिके पद्यमें आया है। और उसी प्रकार 'हेलि' पद उस नामके भासकी प्रत्येक पंक्तिके अन्तमें आया है। इसीपर-से उन भासोंको वे नाम दिये गये हैं, जसोधरनो भास और गुणराज भासमें सम्भावित उस-उस नायकसे सम्बद्ध पूर्व सुपरिचित रचनाकी गेय शैलीका अनुकरण किया गया है, जैसे हिन्दीमें कहा जाता है—चाल आल्हाकी, या चाल ढोलामारुकी। इन समस्त पद्यशैलियोंको किसी वर्णात्मक या मात्रात्मक छन्दकी नियामकलामें बाँधना असम्भव है। वे तो स्वच्छन्द सजीव गेय शैलियाँ हैं, जिनका असली स्वरूप और माधुर्य तभी आँका जा सकता है, जब उन्हें किसी गायकके मुखसे सुना जाये।

इस रासके रचयिताने आदिके पद्यमें, तथा दूसरी, पाँचवीं, छठी और नवमी भासके अन्तमें, अपना नाम ब्रह्म जिनदास अंकित किया है। इससे स्पष्ट है कि वे मुनि नहीं, ब्रह्मचारी साधु थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने रचनाके आदि और अन्तमें अपने दो गुरुओंके नाम सकलकीर्ति और भुवनकीर्ति प्रकट किये हैं।

यद्यपि उन्होंने अपनी इस रासमें इन गुरुओंकी संघ व गण-गच्छादि परम्पराका तथा रचना कालका कोई उल्लेख नहीं किया, तथापि अन्यत्र प्राप्त उल्लेखोंके द्वारा उनका पता सुलभतासे लग जाता है। सकलकीर्ति और उनके शिष्य भुवनकीर्ति मूलसंघ, बलात्कार गणकी ईडर (गुजरात) में स्थापित शाखाके आदि भट्टारक थे। जिनके उल्लेख मूर्तियों और ग्रन्थोंमें संवत् १४९० से १५२७ तकके मिले हैं। स्वयं जिनदासने अपनी एक रचना—रामायणरासमें सं० १५२० का उल्लेख किया है। इसपर-से सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि उनकी प्रस्तुत रचना भी इसी काल अर्थात् सन् १४५० ई० के आस-पास लिखी गयी होगी।

ब्रह्म जिनदासकी रचनाओंका भाण्डार विशाल है। प्रस्तुत ग्रन्थके अतिरिक्त उनके २. रामायण, ३. हरिवंश, ४. सुकुमाल, ५. चारुदत्त, ६. श्रीपाल, ७. जीवन्धर, ८. नागश्री, ९. धर्मपरीक्षा, १०. अम्बिका, ११. जम्बूस्वामी, १२. यशोधर, १३. नागकुमार, १४. जोगी, १५. जीवदया, १६. पंचपरमेष्ठी, १७. आदिनाथ, १८. श्रेणिक, १९. करकण्डु, २०. प्रद्युम्न, २१. धनपाल, २२. हनुमंत, २३. आकाशपंचमी, २४. निर्दोष सप्तमी, २५. कलश दशमी, २६. अनन्त चतुर्दशी, २७. षोडश कारण, २८. दशलक्षण, २९. चन्दनषष्ठी, ३०. भद्रसप्तमी, ३१. लब्धिविधान, ३२. अष्टाह्निक, ३३. पुष्पांजलि, ३४. श्रावणद्वादशी, ३५. पुरन्दर, ३६. श्रुतिस्कन्ध नामक रास व कथानक पाये गये हैं। इनके अतिरिक्त भी उनकी पूजा-पाठविषयक अनेक रचनाएँ हैं। ब्रह्म जिनदासकी इन रचनाओंमें अपभ्रंशसे आधुनिक भाषाओं गुजराती, मराठी, हिन्दी आदिके विकास तथा काव्य शैलियों गीतों और छन्दोंके प्रादुर्भावको समझनेकी प्रचुर सामग्री विद्यमान है।

ब्रह्म जिनदासके कुछ शिष्यों और उनकी भी साहित्यसेवाके कुछ प्रमाण मिलते हैं। उन्होंने अपने रामायण-रास व हरिवंश-रासमें ब्रह्म मल्लिदास और गुणदास नामक शिष्योंका उल्लेख किया है। यथा —

शिष्य मनोहर रूवडा ब्रह्म मल्लिदास गुणदास।
पढ़ो पढ़ावो विस्तरे जिम होइ सौख्य निवास॥

इनमें-से गुणदासने मराठीमें श्रेणिक चरित्रकी चार अध्यायों व ओवी छन्दमें रचना की। उसमें कहा गया है—

शिष्यु सकलकीर्ति देवाचा। तो जिनदासु गुरु आमुचा॥
प्रसादु लाधला त्याचा गुणदासें ता॥ (अ० ४, ओं० ९५)

जिनदासके एक अन्य शिष्य शान्तिदासने अपभ्रंश, गुजराती व संस्कृत मिश्रित पूजापाठविषयक अनेक ग्रन्थ रचे। शान्तिनाथ पूजाके अन्तमें वे कहते हैं —

मया श्रुत्वा गुरुः पार्श्वे हास्यहेतु निवेदयन्। ब्रह्मश्री जिनदासेन आश्वासनं ददौ मम॥
पूज्यपादकृतं स्तोत्रं श्रुतसिन्धुकृताष्टकम्। आशाधरोक्तमध्याद्य ग्रन्थमेतं मया कृतम्॥

उस समयकी चालू संस्कृतका यह एक नमूना है।

मुद्रित पाठका संशोधन सेनगण दिगम्बर जैन मन्दिरके शास्त्र भण्डारसे उपलब्ध तीन हस्तलिखित संग्रह प्रतियों पर-से किया गया है। तीनों प्रतियोंमें और भी अनेक रचनाएँ हैं। तीनों प्रतियोंके पाठभेद भी यहाँ अंकित किये गये हैं। इन प्रतियोंका विशेष परिचय इस प्रकार है—

अ—क्रमांक ३। इसमें ९″ × ७″ आकारके १७१ पत्र लिखे हुए हैं जिनमें प्रस्तुत कथा पत्र ११ से २२ तक पायी जाती है। यहाँ इसी कर्ताकी अन्य कथा-रचनाएँ हैं – आकाशपंचमी, निर्दोषसप्तमी, कलश दशमी, अनन्तव्रत, चन्दनषष्ठी, षोडशकारण, दशलक्षण, अम्बिका, सुकुमाल रास व चारुदत्त रास। अन्य रचनाएँ हैं – ज्ञानसागरकृत द्वादशी व्रतकथा, विमलकीर्तिकृत आराधना व मेघराजकृत जसोधर रास (मराठी)। प्रारंभिक वाक्य है – 'अथ सुगन्धदशमी कथा प्रारम्यते', तथा अन्तिम वाक्य है—'इति सुगन्धदशमी रास कथा सम्पूर्ण समाप्त'। भासशीर्षक और विराम चिह्न लाल स्याहीमें लिखे गये हैं, और शेष भाग काली स्याहीमें। लेखन-कालका निर्देश नहीं है।

ब—क्रमांक २१। इसमें १०"×६" आकारके ५९० पत्र सिले हुए हैं जिनमें प्रस्तुत कथा पत्र ५५७ से ५६९ तक पायी जाती है। यहाँ अन्य रचनाएँ संकलित हैं—बनारसीविलास, सुमतिकीर्तिकृत धर्मपरीक्षा रास, सामुद्रिक लक्षण व माधवानल। तथा स्वयं जिनदासकृत रचनाएँ हैं—श्रीपाल रास, नागकुमार रास व आकाशपंचमी, निर्दोषसप्तमी, कलशदशमी, सोलहकारण, पुष्पांजलि व चन्दनषष्ठी—ये कथाएँ। अन्तिम पुष्पिका-वाक्य है – हे पोथी पठनार्थ साबजी नेमासा तथा पुत्र गोरासा व आम्बूसा मालवि वास्तव्ये सोलापुर शुभं भवतु। शके १६४१ मिति अधिक सुद चौदस १४। लेखनार्थ त्र्यंबक शेत सेनगण। शुभं भवतु।

स—क्रमांक १९। इसमें ७"×६" आकारके २९६ पत्र सिले हुए हैं जिनमें प्रस्तुत कथा पत्र २१५ से २२६ तक पायी जाती है। अन्य रचनाएँ हैं – अष्टाह्निका, सोलहकारण, दशलक्षण, चन्दनषष्ठी, लब्धिदत्त, लब्धिविधान, निर्दोषसप्तमी, आकाशपंचमी, श्रीपाल, नागपंचमी, मोक्षसप्तमी, श्रुतस्कंध, पुरन्दर, अम्बिका, षट्कर्म, पुष्पांजलि, कलशदशमी, अनन्त, होली और श्रावण द्वादशी। लेखन-कालका निर्देश नहीं है।

संस्कृत कथाके रचयिता श्रुतसागर और गुजराती कथाके लेखक ब्रह्म जिनदासकी जो गुरुपरम्पराएँ ऊपर बतलायी गयी हैं उनसे एक पीढ़ी और ऊपर जानेपर वे एक ही गुरुसे जुड़ जाती हैं। यह बात निम्न वंशवृक्षसे स्पष्ट हो जाती है—

पद्मनन्दि

देवेन्द्रकीर्ति (सूरत) — विद्यानन्दि — श्रुतसागर

सकलकीर्ति (ईडर) — भुवनकीर्ति — ब्रह्म जिनदास

६. सुगन्धदशमी कथा : मराठी

मराठी भाषामें निबद्ध सुगन्धदशमी कथामें कुल १३६ पद्य हैं। इनकी रचना विविध छन्दोंमें हुई है, जो इस प्रकार है – उपेन्द्रवज्रा ४२, भुजंगप्रयात ३८, रथोद्धता २१, स्वागता ८, शालिनी ६, उपजाति ६, शार्दूलविक्रीडित ५, मालिनी ४, कलहंसा २, वसन्ततिलका १, सवैया १, द्रुतविलम्बित १, शिखरिणी १। इन छन्दोंके नाम जहाँ वे आये हैं स्वयं मूलमें ही दिये गये पाये जाते हैं, और उन्हींके अनुसार इस रचनाका प्रकरण-विभाग हुआ है। इस प्रकार यह मराठी कविता संस्कृत छन्दोंमें निबद्ध है।

ग्रन्थकारने ग्रन्थके अन्तमें प्रकट किया है कि वे देवेन्द्रकीर्तिके शिष्य जैनादिसागर अर्थात् जिनसागर हैं। यद्यपि देवेन्द्रकीर्ति नामके अनेक आचार्य हुए हैं, तथापि जिनसागरकी अन्य अनेक रचनाओंमें जो उनका स्थान व काल-निर्देश पाया जाता है, उसपर-से वे कारंजाकी मूलसंघ बलात्कारगण शाखाके देवेन्द्रकीर्ति तृतीय सिद्ध होते हैं, जिनका भट्टारक काल संवत् १७५६ से १७८६ तक पाया जाता है। जिनसागरकी आदित्य व्रतकथाकी रचना कारंजा (जि० अकोला, बरार) में शक १६४६ में हुई थी। उनकी जिनकथा भी कारंजामें ही शक १६४९ में पूर्ण हुई थी। पुष्पांजलि कथाका रचनाकाल शक १६६०, तथा जीवन्धर पुराण का शक १६६६ निर्दिष्ट पाया जाता है। इस प्रकार १८वीं शती ईसवीका मध्यभाग उनका रचनाकाल सिद्ध होता है। कुछ रचनाओंमें उनके रचनास्थल शिरड (जि० परभणी) का उल्लेख है। उक्त रचनाओंके अतिरिक्त उनकी निम्नलिखित कृतियाँ पायी गयी हैं – अनन्तव्रतकथा, लवांकुश कथा, कलशदशमी व सप्तमी कथा, पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ, पद्मावती व क्षेत्रपाल स्तोत्र, पंचमेरु, ज्येष्ठजिनवर, नवग्रहपूजा, दशलक्षण,

महावीर, पद्मावती व षोडशकारण आरती। इन रचनाओंमें जो रचनास्थलोंका उल्लेख आया है, उसपर-से कवि विदर्भप्रदेशवर्ती सिद्ध होते हैं।

स्वभावतः जिनसागरकी भाषामें वैदर्भी मराठीकी अनेक विशेषताएँ दिखाई देती हैं। उदाहरणार्थ प्रस्तुत ग्रन्थमें (११) का म्हणूनके लिए काम्हुनि (११) म्हणूनके लिए म्हुनि (५७) दुकानाहूनके लिए दुकानूनि (९६) सर्वनामोंके स्त्रीलिंगी रूप एकारान्त-जैसे जे एकता (जी एकता) बोलेचना ते (बोलचेना ती) आज्ञार्थ क्रियाके दीर्घतर रूप, जैसे – वदजीस (वदव) जाई (जा), साखरका उच्चारण साकर, अनुस्वारोंका प्रयोग कम मात्रामें आदि ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो आज भी विदर्भकी बोलीमें प्रचलित हैं।

कारक विभक्तियोंमें यहाँ प्राचीनताके लक्षण दिखाई देते हैं। जैसे शारदेसी (शारदेला दि०), चमरें (चमराने तृ०) दुकानूंनि (दुकानाहून पं०) सिंहासनीं (सिंहासनावर स०) भोजना लागि (भोजना करता च०) मनाभाजि (मनांत स०)। यहाँ स्पष्टतः हमें अपभ्रंशकी प्रवृत्तियों तथा परसर्गोंके प्रादुर्भावका दर्शन होता है। शब्दावलिमें भी वेणावन (वेणी), निवाडी (निर्णय), कूड (कूट-क्रोध), वोजा (आदरसे), घाला (तुच्छ), ओटीत (आंचलसे), विराली (उद्विग्न), सेजारिनी (पड़ोसिनें), मळवट (कुंकुमकी रेखा) आदि शब्दोंमें देशी प्रभाव दिखलाई पड़ता है। सामान्यतः रचना सर्वत्र ही संस्कृत व अपभ्रंशसे प्रभावित है।

ग्रन्थके संशोधनमें तीन हस्तलिखित प्रतियोंका उपयोग किया गया है जो इस प्रकार हैं –

क – यह सेनगण मन्दिर, नागपुरके शास्त्रभण्डारकी है, जिसका क्रमांक १२ है। इसमें ७''×६'' आकारके ३२ पत्र लिखे हुए हैं, जिनमें प्रस्तुत रचना पत्र १३ से २४ तक है। इसी कर्ताकी जिनकथा व अनन्तव्रतकथा तथा ब्रह्म शान्तिदासकृत निरमोहलरास भी इसमें संगृहीत है। प्रति लेखनके कालका निर्देश नहीं है।

ख – यह प्रति श्री भा० स० महाजन, नागपुरके निजी संग्रहकी है। क्रमांक ११। इसमें ७½''×५½'' आकारके ७२ पत्र लिखे हुए हैं। प्रस्तुत रचना पत्र १ से १२ तक है। तत्पश्चात् इसी लेखककी आदित्यव्रत और अनन्तव्रत कथा, तथा वृषभकृत नववाड, मेघराजकृत भरतक्षेत्र विनति, कान्हासुत कमलकृत बलभद्र विनति, महीचन्द्रकृत कालीगोरी वाद तथा पद्मावती सहस्रनाम, इन रचनाओंका संग्रह है। इनके अतिरिक्त पद्मावती, वृषभनाथ, चन्द्रनाथ, पार्श्वनाथ, सिद्ध तथा मुक्तागिरिके पूजापाठ भी यहाँ सम्मिलित हैं। लेखनकालका निर्देश नहीं है।

ग – यह प्रति भी सेनगण भण्डार नागपुरकी है, और बड़ी महत्त्वपूर्ण है। इसमें १०½''×६'' आकारके २३ पत्र (४६ पृ०) हैं, जिनमें कथावर्णनके साथ-साथ विविध प्रसंगोंके रंगीन चित्र भी हैं। आश्चर्य नहीं जो यह लेखन और चित्रण स्वयं ग्रन्थकर्ताका हो। इस सम्पूर्ण प्रतिके चित्र यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं। उनका वर्णन भी अन्यत्र दिया जा रहा है।

१०. सुगन्धदशमी कथा : हिन्दी

हिन्दी सुगन्धदशमी कथाकी रचना दोहा-चौपाई छन्दोंके १४३ पद्योंमें हुई है। चौपाइयोंके बीच-बीचमें दोहे आये हैं, किन्तु उनकी संख्यामें एकरूपता नहीं है। उदाहरणार्थ आदिमें आठ चौपाइयोंके पश्चात् एक दोहा आया है। फिर पन्द्रह चौपाइयों (१०-२४) के पश्चात् दो दोहे आये हैं। फिर छह चौपाइयोंके पश्चात् एक दोहा है। इस प्रकार अक्रमसे रचनामें कुल एक सौ इक्कीस चौपाइयाँ और उन्नीस दोहे हैं। बीचमें तीन पद्य (६७-६९) चौदह मात्रात्मक अन्य छन्दके हैं।

इस कथाके रचयिताने अपना नाम ग्रन्थके अन्तमें खुस्याल (खुशाल या खुशालचन्द्र) प्रकट किया है। उन्होंने वहाँ यह भी कह दिया है कि उनकी इस रचनाका आधार श्रुतसागर-कृत सुगन्धदशमी कथा है। यह वही संस्कृत कथानक है, जो यहाँ भी संकलित किया गया है, और जिसका परिचय भी अन्यत्र दिया

जा चुका है। चूंकि श्रुतसागरका काल १६वीं शती सिद्ध होता है, अतः प्रस्तुत रचना उससे पश्चात्कालीन है। इस कविकी और भी अनेक कृतियाँ पायी जाती हैं, जिनमें उनके रचनाकालका भी उल्लेख मिलता है, व अन्य कुछ और भी परिचय। तदनुसार उनका उपनाम काला था, और व सांगानेर (राजस्थान) के निवासी थे। उन्होंने हरिवंशपुराणकी रचना सं० १७८० में, यशोधर चरित्रकी सं० १७८१ में, पद्मपुराणकी १७८३ में, व उत्तरपुराणकी १७९९ में की थी। उनकी अन्य रचनाएँ धन्यकुमार चरित्र, व्रतकथाकोश, जम्बूचरित, नेमीसुर पूजापाठ आदि भी मिलती हैं। इनकी भाषामें राजस्थानी व विशेषतः जयपुरकी ढूँढारी भाषाकी पुट पायी जाती है। इस रचनाका प्रस्तुत पाठ इसकी एक मुद्रित प्रतिपर-से तैयार किया गया है, जो कस्तूरचन्द छाबड़ा, भादवा (जयपुर)-द्वारा संगृहीत तथा जिनवाणी प्रेस, कलकत्ता-द्वारा दीपावली संवत् १९८६ में द्वितीय बार मुद्रित करी गयी है। इसमें प्रस्तुत सम्पादकको केवल साधारण मुद्रणादि दोषोंके संशोधनकी आवश्यकता पड़ी है।

अपभ्रंश व संस्कृत, गुजराती, मराठी और हिन्दी कथानकोंकी संगति

अपभ्रंश	संस्कृत	गुजराती	मराठी	हिन्दी
सन्धि १ कडवक				
१	१–९	१	१–३	१–९
२	१०–११	२, १–३	४–५	१०–११
३		२, ४	६	११
४	१२–२३	२, ५–११	७–१०	१२–१३
५	२४–२५	२, १२–२१	१०–१५	१४–१९
६	२६–३५	३, १–१३	१६–२५	२०–२६
७	३६–४२	३, १४–२२	२६–३४	२७–३६
८	४३–४९	४, १–७	३५–३९	३७–३९
९	५०–५४	४, ७	४०–४२	४०–४२
१०	५५–५८	४, ८–११	४३	४३–४४
११	५९–६५	४, १२–१७	४४–४८	४४–४८
१२	६६–७३	४, १८–२२	४९–५०	४९–५८
सन्धि–२				
१	७४–८३	५, १–१३	५१–६१	५९–६६
२	८४–१०६	५, १४–२८	६१–९१	६७–८५
		६, १–२३		
		७, १–९		
३	१०७–११९	७, १०–२४	९२–९९	८५–१०३
		८, १–६		
४	१२०–२२	८, ७–९	९९	१०४–१०९
५	१२३–१३६	८, १०–१८	१००–१०५	११०–१२०
		९, १–७		
६	१३७–१४२	९, ८–१३	१०६–१११	१२१–१२६
७	१४३–१५६	९, १४–२२	११२–१२३	१२७–१४०
८	१५७–१६०	९, २३–४१	१२४–१३५	१४१–१४२
९	१६१	९, ४२–४३	१३६	१४३

अपभ्रंश कथाका विषयानुक्रम

सन्धि—१

१

चतुर्विंशति जिनको नमस्कार, श्रेणिकके प्रश्नके उत्तरमें तीर्थंकर-द्वारा सुगन्ध-दशमी कथाका व्याख्यान। काशी देशका वर्णन। ३

२

वाराणसी पुरी, राजा पद्मरथ और रानी श्रीमती, वसन्त ऋतुका आगमन। ४

३

वसन्तका उद्दीपन और रमणियों-द्वारा गीत, नृत्य, रास चर्चरी आदि लीलाएँ। ५

४

राजाका रानियों-सहित उद्यान-क्रीड़ाके लिए प्रस्थान। मार्गमें सुदर्शन मुनिका दर्शन व रानीको घर लौटकर मुनिको आहार दानका राजाका आदेश। ६

५

रानीका कोप व मुनिराजको कड़वी तूम्बीका आहार-दान। मुनिको पीड़ाकी उत्पत्ति। रानीका तुरन्त उद्यानगमन। देखते ही राजाकी रानीसे विरक्ति। ७

६

रानीके मुखसे दुर्गन्धकी उत्पत्ति। लौटकर राजा ने मुनिकी मूर्छाका समाचार सुना। राजाका क्रोध व रानीका परित्याग। रानीका आर्तध्यानसे मरण व भैंसकी योनिमें दूसरा जन्म, सरोवरकी कीचड़में फँसकर मरण। तीसरे जन्ममें शूकरी, चौथेमें साँभरी और पाँचवेंमें योजन दुर्गन्धा चाण्डालिनीके रूपमें जन्म। ८

७

दुर्गन्धके कारण चाण्डालों-द्वारा उसका अटवीमें परित्याग व आठ वर्ष तक फलों व पत्तोंसे उसकी जीवनवृत्ति। मुनिसंघका उस ओर विहार व गुरु-द्वारा शिष्यको उसकी दुर्गन्धके कारणका तथा उस पापसे छूटनेका उपाय बतलाना। उत्तम क्षमादि दश धर्म, पंच उदुम्बर, निशि-भोजन व मद्यपानके त्यागका उपदेश। दुर्गन्धा-द्वारा यह सुनना और उसपर श्रद्धान तथा उसके प्रभावसे अगले जन्ममें उज्जयिनीके एक दरिद्र कुटुम्बमें पैदा होना। १०

८

उसकी दुर्गन्ध कुछ कम हो गयी, जन्म होते ही माताका मरण लकड़ी, घास बेचकर जीवनवृत्ति। नगरमें मुनि-आगमन, राजा जयसेनकी दर्शन-यात्रा। दुर्गन्धा भी वहाँ पहुँच गयी। ११

९

मुनिराजके दर्शनसे दुर्गन्धाको मूर्छा, सचेत होनेपर राजाके प्रश्नके उत्तरमें अपना पूर्व वृत्तान्त-निवेदन। १२

१०

राजाके प्रश्नके उत्तरमें मुनि-द्वारा दुर्गन्धाके वृत्तान्तका समर्थन व कर्मोंके छेदके लिए सुगन्धदशमी व्रतका निर्देश। उसी बीच विमान-द्वारा भुवंजय विद्याधरका आगमन। मुनिराज-द्वारा सुगन्धदशमी व्रत पालन व उसके उद्यापनके उपदेशकी प्रतिज्ञा। १३

११
सुगन्धदशमी व्रत पालन विधि। —१५

१२
सुगन्धदशमी व्रतके उद्यापनकी विधि–१६

सन्धि—२

१
राजा व नगरवासियों तथा दुर्गन्धा-द्वारा व्रतका पालन। इस पुण्यके प्रभाव-से दुर्गन्धाका राजा कनकप्रभ-द्वारा शासित रत्नपुरके सेठ जिनदत्तकी पुत्री तिलकमतीके रूपमें पुनर्जन्म। उसका सुन्दर और सुगन्ध युक्त शरीर। माता जिनदत्ताकी मृत्यु व सेठका दूसरा विवाह और पुत्री तेजमती। —१७

२
सौतेली माँका अपनी पुत्रीका पक्षपात और तिलकमतीसे दुर्व्यवहार। सेठका रत्न खरीदने विदेश गमन व सेठानीको पुत्रियोंके विवाहका आदेश। तिलकमती-का विवाहकी रात्रिको श्मशान प्रेषण और उसके स्थानपर तेजमतीका विवाह। राजा कनकप्रभका श्मशानमें जाकर तिलकमतीसे विवाह। —१९

३
प्रातः महिषीपालके रूपमें अपना परिचय तथा प्रतिदिन रात्रिमें मिलनका आश्वा-सन देकर राजाका प्रस्थान। सेठानी-द्वारा उसकी खोज व लोक प्रपंच। सन्ध्याको राजाका वस्त्राभरण लेकर तिलकमतीके पास आगमन। —२०

४
उसे सुसज्जित देख माताका कोप, व उनका परिहरण। —२२

५
सेठका द्वीपान्तरसे आगमन; विवाहके वृत्तान्तका पत्नीके मुखसे श्रवण, तथा उन आभूषणोंको राजाके पहचान कर राजाको निवेदन। राजा-द्वारा चोरका पता लगानेका आदेश। पुत्रीसे सब बातें जानकर सेठका राजाको पुनः निवेदन। राजा-द्वारा सेठके घर भोजका आयोजन। —२३

६
तिलकमती-द्वारा आँखोंपर पट्टी बाँधकर भी पैर धुलानेके मिषसे चरण-स्पर्श-द्वारा पतिकी पहचान। राजा-द्वारा स्वयं समर्थन, आनन्द, उत्साह और विवाह। —२४

७
तिलकमतीका रानीके रूपमें वैभव, अन्त-में संन्यास-द्वारा मरण; व स्त्रीलिंग छेदकर ईशान स्वर्गमें देवोत्पत्ति। —२५

८
जिनेन्द्रका श्रेणिकको सम्बोधन व सुगन्ध दशमी व्रतके प्रभावका वर्णन। —२६

९
सुगन्धदशमी व्रत पालनका भावना-सहित कथा-पाठ करनेका, व्याख्यानका, सुनने तथा श्रद्धान करने व सीखनेका सुफल। —२७

ग्रन्थकारका आत्म-निवेदन। —२८

सुअंधदहमीकहा

[अपभ्रंश]

सुअंधदहमीकहा

पढमो संधी

१

जिण चउवीस णवेप्पिणु हियइं धरेप्पिणु देवत्तहं चउवीसहं ।
पुणु फलु आहासमि धम्मु पयासमि वर-सुअंधदसमिहिं जह ॥

पुच्छिउ सेणिएण तित्थंकरु । कहहि सुअंधदसमि-फलु मणहरु ।
भणइ जिणिंदु णिसुणि अहो सेणिय । भव्वरयण गुणरयणनिसेणिय ।
इह जंबुदीवे सुरगिरि - समवणे । लवणण्णव-परिवेढिय-रवणे ।
तहिं भरहु वि णामें वरिसु संति । जहिं सुरवर-णर खेयर रमंति ।
तहिं कासी णामइं विसउ अत्थि । जहिं सहि चल जूह भमंत हत्थि।
जहि सरवर कमलालय हसंति । रहिं सयिणह रह - चक्कइं धरंति ।
जहिं सरिउ पवर पाणिय सहंति । सूलिणि-करवालहिं अणुहरंति ।

हिन्दी अनुवाद

१

चौबीसों जिन भगवान्‌को नमस्कार करके तथा चौबीस देवताओंको हृदयमें धारण करके मैं श्रेष्ठ सुगन्धदशमी व्रतका जो फल होता है उसका व्याख्यान करते हुए धर्मका स्वरूप प्रकाशित करता हूँ ।

राजा श्रेणिकने चौबीसवें तीर्थङ्कर भगवान् महावीरसे पूछा 'हे भगवन् ! सुगन्धदशमी व्रतके पालनका जो फल होता है उसका कथन करनेकी कृपा कीजिए ।' श्रेणिक नरेशका यह प्रश्न सुन कर भगवान् महावीर जिनेन्द्र बोले—हे श्रेणिक ! तुम भव्य जीवोंमें श्रेष्ठ और गुणरूपी रत्नोंके निधान हो । अतः तुम्हें मैं सुगन्ध दशमी व्रतके फलकी कथा सुनाता हूँ । तुम ध्यान लगाकर सुनो ।

सुरगिरिके समान, लवण-समुद्रसे वेष्टित तथा रमणीक इस जम्बूद्वीपमें भरत नामक देश है, जहाँ उत्तम देव, मनुष्य व खेचर सभी रमण करते हैं । इस भरत क्षेत्रमें काशी नामक प्रदेश है जहाँ हाथियोंके झुण्ड विचरण करते हैं, और जहाँ सरोवर कमल-पुष्पोंसे शोभायमान हो रहे हैं । वे चक्रवोंको धारण करते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे रथी अपने रथोंके चक्रोंको धारण किये हों । इस प्रदेशकी सरिताओंमें प्रचुर पानी बहता रहता है और इस प्रकार वे उन शूल व

जहिं सरसइं सुअ-चुंबिय वणाइं । मुहकमल पुरंधिहिं जिह वणाइं ।
जहिं सधणाइं पयपूरइं सहंति । गामइं जलहरहं वि अणुहरंति ।
जहिं कंसदलण-लंगलकराइं । पामरइं व हरि-बल-सरिसणाहाइं ।
जहिं तिलय-सालिवर-संजुआइं । छेत्ताइं व कामिणि णं थियाइं ।
जहिं मुह-मइलणु थड्डिम थणाहं । करपीडणु ताहं जि णउ जणाहं।
चवलत्तणु जहिं तिय-लोयणाहं । मउ कलहु वि कुंजर-साहणाहं ।

घत्ता—*तहो देसहो मज्झे पसिद्धिया पुरि वाणारसि थिय पवर ।*
परिहा-पायारहिं परियरिय धयमालालंकरियघर ॥ १ ॥

२

बहुवण रेहइ णं भड-संगरु । जोह-कुडुंबु व दाविय-वरसरु ।
वर-धवलहर-जुत्त कइलासु व । चोर-कुडुंबु व थिय वइवेसुव ।
रेहइ सरु जिह सउणावासिय । काणणु जिह वर-कइहिं णिवासिय ।

कृपाणधारी वीराङ्गनाओंका अनुसरण करती हैं जिनके शस्त्रोंकी धारें खूब पानीदार अर्थात् पैनी हैं। वहाँके सघन वन-उपवन सरस फलोंसे व्याप्त हैं जिनका शुक चुम्बन करते हैं; जिस प्रकार कि वहाँ की पुरनारियोंके मुखकमल लावण्ययुक्त हैं जिनसे वे अपने पुत्रोंके मुखोंका खूब चुम्बन करती हैं। उस प्रदेशके ग्राम धन-धान्य तथा जलसे परिपूर्ण होते हुए शोभायमान हैं और इस प्रकार वे वहाँके इन्द्रधनुष और पयसे पूर्ण जलधरों अर्थात् मेघोंकी समानता करते हैं। वहाँके ग्रामीण किसान जब अपने काँसके खेतोंको जोतनेके लिए हलोंको हाथमें लेकर चलते हैं तब वे विष्णु और हलधर (बलभद्र) के समान दिखाई देते हैं। वहाँके खेतोंमें तिलक नामक वृक्षों तथा उत्तम शालिधानकी प्रचुरता होनेसे वे वहाँकी उन कामिनी स्त्रियोंकी तुलना करते हैं जो भालमें तिलक दिये हुए हैं और अपने वरों अर्थात् पतियोंके सहित सुखसे रहती हैं। वहाँ मुखकी मलिनता, कठोरता एवं करपीडन तो केवल स्त्रियोंके स्तनोंमें देखे जाते हैं न कि जनतामें। उसी प्रकार वहाँ चपलता केवल स्त्रियोंके लोचनोंमें पाई जाती है और मद व कलह केवल सेनाके हाथियोंमें, न कि लोक-समूहमें।

इस प्रकारके उस सुन्दर, समृद्ध और सदाचरणशील (काशी देशमें सुप्रसिद्ध और विशाल वाराणसी नगरी है जो परिखा और प्राकार अर्थात् पुरीकी रक्षाके निमित्त बनाई हुई खाई और कोटसे सुसज्जित है) वहाँके घर ध्वजा मालाओंसे अलंकृत रहते हैं ॥१॥

२

वह नगरी अपने अनेक वनोपवनोंसे ऐसी शोभायमान है जैसे योद्धाओंका युद्ध व्रण अर्थात् शस्त्राघातोंसे परिपूर्ण होता है। वहाँ जो उत्तम सरोवर दिखाई देते हैं उससे वह नगर शरोंसे सुसज्जित योद्धाओंके समूहके समान प्रतीत होता है। वहाँके धवलगृहोंके द्वारा नगर कैलाश पर्वत-सा दिखाई देता है। वहाँ व्रतियोंके वेश्म अर्थात् धार्मिक लोगोंके घर स्थित हैं, अतः वह चोरोंके कुटुम्बके सदृश है जो विना घर-द्वारके रहते हैं। शकुन अर्थात् पक्षियोंसे परिपूर्ण वहाँका सरोवर ऐसा सुन्दर दिखाई देता है मानो वह शकुनों अर्थात् शुभ सूचनाओंका घर ही हो। वहाँ उत्तम कवियोंका निवास देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो वह कपियों अर्थात् बन्दरोंसे बसा हुआ कोई वन ही हो।

तहिँ णिउ पोमणाहु विक्खाइउ। णं सई सग्गहु इंदु पराइउ।
णं अरि-करिहिँ जोह पंचाणणु। णं लच्छी सणाहु णारायणु।
तहो पिय सिरिमइ सिरि-अग्गेसरि। णं हिमवंतहो गंग महासरि।
णं पोमावई वि धरणिंदहो। हरहो गउरि जिम रोहिणि चंदहो।
तउ तहो पियपमएहिँ पहाणिय। जिम दहमुह मंदोदरि राणिय।
तहिँ जा तें समु रज्जु करंतउ। ताम वसंतमासु संपत्तउ।

घत्ता—*कल-कोइल-सद्दहिँ महुअरविंदहिँ णं आलावणि वज्जइ।*
सुअपढणसहासहिँ बहुविहभासहिँ णडु वसंतु णं गज्जइ ॥२॥

३

रे रे एहु जणु णच्चइ ण काइं। मइं विणु उग्गिरणय-चित्तु णाइं।
विणु मेहहिँ को सरवर भरेइ। विणु सुहडहि को संगरु करेइ।
विणु कइहिँ णिबंधइ को वि कव्वु। जिणदेवहँ विणु को कहइ दव्व।
मइं विणु को जणु बहु भासएहिँ। णच्चावइ चच्चरि रासएहिँ।
एत्थंतरे जाणेवि जणे वसंतु। आयउ विरहिणि-सोसणु वसंतु।
ता तरुणिहिँ पारम्भिउ सुरम्मु। मुणि-मयणुद्दीवणु गेयकम्मु।

उस वाराणसी नगरीका सुविख्यात राजा पद्मनाथ था, जो अपने प्रभावसे ऐसा दिखाई देता था मानो स्वर्गसे स्वयं इन्द्र ही भूतल पर आ उतरा हो। वह अपने शत्रुरूपी हाथियोंके लिए सिंहके समान शूरवीर योद्धा था और अपनी राज्यलक्ष्मी सहित साक्षात् नारायण सा प्रतीत होता था। उस पद्मनाथ राजाकी प्रिय रानी श्रीमती थी जो श्री अर्थात् लक्ष्मीसे भी अधिक सुन्दर थी; मानो हिमवान् पर्वतकी स्वयं गंगा महानदी हो, धरणेन्द्र देवकी पद्मावती देवी हो अथवा शिवजीकी पत्नी गौरी व चन्द्रमाकी पत्नी रोहिणी हो। श्रीमती पद्मनाथ राजाकी प्रियतम रानियोंमें प्रधान थी, जैसे दशमुख अर्थात् रावणकी रानियोंमें मन्दोदरी प्रमुख थी।

पद्मनाथ जब श्रीमतीके साथ बनारसमें राज्य कर रहे थे, तब वसन्त मासका आगमन हुआ। उस समय कोकिलोंकी ध्वनियों और भौंरोंकी गुंजारसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे आलापिनी वीणा बज रही हो। शुक अर्थात् तोतोंके सहस्रों प्रकारके पाठों और नानाविध स्वरोंसे ऐसा लगने लगा मानो वसन्त नट बनकर गरज रहा हो ॥ २ ॥

३

वह वसन्त रूपी नट क्या कह रहा था सो सुनिए—"अरे, अरे, ये लोग नृत्य क्यों नहीं कर रहे? मानो मेरे बिना वे चित्तमें निरुत्साह हो रहे थे। बिना मेघोंके सरोवरोंको कौन भरे और सुभटोंके बिना युद्ध कौन करे? कवियोंके बिना काव्योंकी रचना करनेवाला तथा जिनदेवके बिना द्रव्योंका कथन करनेवाला भला अन्य कौन है? इसी प्रकार मेरे बिना विविध भाषाओंमें लोगोंको रासों सहित चर्चरी नचाने वाला और कौन रखा है?" ऐसा समझकर ही लोगोंके बीच विरहिणी स्त्रियोंको सन्ताप उत्पन्न करनेवाला वसन्त मास आया।

वसन्तके उत्साहमें तरुणी स्त्रियोंने सुरम्य गीत गाना प्रारम्भ किया जिससे कि मुनियोंके

क वि णच्चइ जण-संतोसयारि । क वि रासु भणइ विरहियहिँ मारि ।
क वि चच्चरि देइ हणंति ताल । क वि दावइ थण तह मिसिण बाल ।
क वि रासु रमइ णिय-कंत-जुत्त । हिंदोलइ क वि तह गीयरत्त ।
क वि कील करइ जलि पिय-समाण । आलविय रमइ तह क वि जुवाण ।

घत्ता—*इय णयरजण उद्दीवियमण रमइ वसंतहो लीलए ।*
ता णिवइ सकंतउ परियणजुत्तउ चलिउज्जाणहो कीलए ॥ ३ ॥

४

ता खयउ पसाहण राणियाहँ । बहुवण्ण वत्थ णिव-माणियाहँ ।
मयगलि आरूढउ णरवरिंदु । रेहइ अइरावइ णाइ इंदु ।
अद्धासणे पिय उवइट्ठ केम । तिणयणहो भडारिय गउरि जेम ।
पहि चलिउ ससाहण णिवइ जाम । आवंतउ दिट्ठु मुणिंदु ताम ।
परिपालिय-सावय-वयधरेण । सम्मत्त - अडंबर-धुरधरेण ।
णिव्वाहिय-अतिहिंइ णिम्मएण । जिणधम्म-परंजिय-चित्तएण ।
दिट्ठउ वि सुदंसण मुणिवरिंदु । मयलंछणहीणु अउव्व-इंदु ।
दो-दोसा-आसा-चत्तकाउ । णाणत्तय-जुत्तउ वीयराउ ।

मनमें भी रागका उद्दीपन हो उठे। कोई लोगोंको सन्तोषदायक रीतिसे नृत्य करने लगी, और कोई विरही जनोंको मार डालनेवाला रास कहने लगी। कोई ताल दे देकर चर्चरी नाचने लगी और कोई बाला (युवती) उसी बहाने अपने स्तनोंका दर्शन कराने लगी। कोई अपने पतिके साथ रास खेलने लगी, और कोई गीतमें मस्त होकर हिंडोला झूलने लगी। कोई अपने पतिके साथ जलक्रीड़ा करने लगी, और कोई अपने आलापों द्वारा युवकोंके मनको रमाने लगी। इस प्रकार नगर-निवासी मदोन्मत्त होकर वसन्तकी लीलामें रमण करने लगे। तब राजा पद्मनाथ भी अपनी रानी श्रीमती तथा परिजनों सहित उद्यान-क्रीड़ाके लिए निकला ॥ ३ ॥

४

उद्यान क्रीड़ाके लिए रानियोंने अपना शृङ्गार किया। राजाकी प्रियाओंने रंग-बिरंगे वस्त्र धारण किये। मदोन्मत्त हाथी पर सवार हुआ नरेश ऐसा शोभायमान था जैसे इन्द्र ऐरावत पर सवार होकर निकल रहा हो। राजाके साथ अर्ध आसन पर उनकी प्रिय रानी श्रीमती बैठी ऐसी शोभायमान हुई जैसे त्रिनयन अर्थात् महादेवजीके साथ भगवती गौरी ही विराजमान हों। इस प्रकार जब राजा सजधजसे उद्यान क्रीड़ाके लिए जा रहा था, तभी उसने एक मुनीन्द्रको आते हुए देखा। राजा पद्मनाथ श्रावकके व्रतोंको धारण किये हुए थे और उन व्रतोंको भलीभाँति पालते भी थे। वे सम्यक्त्वको उसके समस्त अंगों सहित धारण करते थे और सम्यक्त्वी जीवोंमें अग्रेसर थे। वे अतिथियोंका नम्रतापूर्वक सत्कार करते थे। उनका चित्त जैन धर्मके प्रभावसे पूर्ण था। ऐसे पद्मनाथ राजाने जब उन सुदर्शन नामक मुनिवरको देखा, तो वे उन्हें ऐसे प्रतीत हुए मानो मृगरूप कलंकसे हीन कोई अपूर्व चन्द्रमा ही हो। वे मुनि राग और द्वेष इन दोनों

सव्वंग-मलेण विलित्तगत्तु । चउविकहा-वयणहे जो विरत्तु ।
परमेसरु सिरि मासोपवासि। गिरि कंदरे अहव मसाण वासि ।
सो पेक्खिवि परमाणंदएण । पभणिय पिय परमसणेहएण ।
इह पेसणजोग्गु ण अण्णु को वि । तो हउं मि अह व फुडु पत्तु होइ ।
जाएप्पिणु अणुराएण वुत्त । पारणउ करावहि मुणि तुरंत ।
लब्भइ पियमेलणु भवसमुद्दे । वणकीलारोहणु गयवरिंदे ।
इउ सुलहउ जीवहो भवि जि भए । दुलहउ जिणधम्मु भवण्णवए ।
दुलहउ सुपत्तदाणु वि विमलु । मुत्ताहल-सिप्पिहिं जेम जलु ।

घत्ता—तं जाएवि भावइं गुरु-अणुरायइं देहि जोग्गु जं एयहो ।
फासुअउ सुणिल्लउ महुरु रसिल्लउ जाउ कम्मु जिण एयहो ॥ ४ ॥

५

ता चलिय जंपंति । कोवेण कंपंति ।
कहिं आउ पाविट्ठु । एहु धिट्ठु णिक्किट्ठु ।
मइ विग्घु पिययस्स । किउ एण भोयस्स ।
वणि निविण सह जामि । साणंद कीलामि ।

दोषोंसे मुक्त थे, वे मति, श्रुति और अवधि इन तीन ज्ञानोंके धारी और वीतराग थे। उनका समस्त शरीर मलसे विलिप्त था (क्योंकि वे मुनियोंको निषिद्ध स्नान नहीं करते थे व उन्हें अपने शरीरका कोई मोह नहीं था)। वे राजकथा, चोरकथा, स्त्रीकथा व भोजनकथा, इन चारों प्रकारकी विकथाओंसे विरक्त थे। वे मुनीश्वर मासोपवासी थे अर्थात् एक एक मासके अन्तरसे केवल एक बार आहार करने निकलते थे, और शेष समस्त काल पर्वतकी गुफाओंमें अथवा श्मशानमें ध्यान द्वारा व्यतीत करते थे।

ऐसे उन परम मुनीश्वर सुदर्शनका दर्शन पाकर राजाको परम आनन्द हुआ और उन्होंने बड़े स्नेहसे अपनी प्रिय रानी श्रीमतीसे कहा—"हे प्रिये! इस समय हमारा जो कर्तव्य है उसको निभानेकी योग्यता अन्य सेवक-सेविकाओंमें नहीं है। इसके लिए पात्र तो स्पष्टतः तुम हो अथवा मैं। अतएव तुम स्वयं जाकर धर्मानुराग सहित मुनि महाराजको तुरन्त पारणा करा आओ। इस भवसागरमें प्रिय-मेलन, वन-क्रीड़ा, गजारोहण आदि सुख तो इस जीवको जन्म-जन्मान्तरमें सुलभ हैं; किन्तु इस भवसमुद्रमें जिन-धर्मकी प्राप्ति दुर्लभ है। और उसमें भी अति दुर्लभ है शुद्ध सुपात्र दानका सुअवसर, जिस प्रकार कि मुक्ताफलको सीपके लिए स्वाति नक्षत्रका जलबिन्दु दुर्लभ होता है। अतएव सद्भाव सहित घर जाकर खूब अनुराग सहित इन मुनि महाराजको ऐसा योग्य आहार कराओ जो प्राशुक और गीला हो, मधुर और रसीला हो जिससे इनका धर्म-साधन सुलभ हो ॥ ४ ॥

५

राजाकी यह बात सुनकर रानी कोपसे काँप उठी और यह कहती हुई घरको वापिस चली कि "यह पापी, ढीठ, निकृष्ट मनुष्य इसी समय यहाँ कहाँसे आ गया? अपने प्रियतमके साथ उद्यानमें जाकर आनन्द क्रीड़ाका जो मुझे सुख होता, उसमें इसने विघ्न उत्पन्न कर दिया"

इय चिंतवंतीए । मुणि धरिउ ता तीए ।
पुणु दुट्ठ-रुट्ठाइं । पारविउ मुणि ताइं ।
कडु हलइं दिण्णाइं । जे डहइं अंगाइं ।
जिउ हरइं तुरियाइं । णं गिम्ह-किरणाइं ।
तं लेवि मुणिएण । मणि सरिस अमिएण ।
कडु आसियउ जाम । तणु भमिउ तहो ताम ।
चिंतिउ ण सक्केमि । वणि अज्जु जाएमि ।
ता अज्जु जिण-भवणे । अच्छेमि अइरमणे ।
इय चिंतवंतो वि । जिण-भवणु पत्तो वि ।
तहिं दिवसु थिउ एक्कु । आहारु जा पक्कु ।
ता तेहिं सावेहिं । किउ विणउ तहु तेहिं ।
पुरि खोहु संजाउ । हा हा रउण्णाउ ।

घत्ता—उत्तहे देवी तुरिय गय णिवइ-पासे जा भवणहो ।
ता दिट्ठ णरिंदइं झत्ति तहिं विरइ जणंती णिय-मणहो ॥ ५ ॥

६

साहरण करालिय भाविणाय । उहिह चित्तें रायाहिराय ।
एत्थंतरे आइय णिविड जाम । मुहि एह दुगंधु वि पउरु ताम ।
ता णंतरे पुरि पइसंतएण । णिसुणिउ कोलाहलु तहिं णिवेण ।

ऐसी ही कुभावना मनमें धारण करती हुई रानीने मुनिको अपने साथ लिया । घर जाकर उस दुष्ट रानीने रोषसे मुनिको कड़ुए फलोंका आहार कराया जिनसे अंगोंमें दाह हो और जिनसे अल्पकालमें मृत्यु भी सम्भव हो, जैसे ग्रीष्मकी प्रचण्ड किरणें ।

मुनि महाराजने उस आहारको भी अमृत सदृश मानकर ग्रहण कर लिया । किन्तु उन्होंने ज्योंही वह कड़ुए फलोंका आहार किया त्योंही उनके शरीरमें चक्कर आने लगे। तब उन्होंने विचार किया "अब मैं आज वनको तो वापिस जा नहीं सकता । अतः आजका दिन मैं यहींके अति रमणीक जिन-मन्दिरमें व्यतीत करूँगा ।" ऐसा विचार करते हुए वे जिन-मन्दिरमें आये । वहाँ वे एक दिन रहे जिससे उनका वह आहार पच जाय । मन्दिरमें श्रावकोंने विनयसे उनकी सेवा की । समस्त नगरीमें इस समाचारसे बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ और लोग हाय, हाय, करने लगे ।

वहाँ रानी मुनिके आहारको दुष्ट भावसे निपटाकर झट पुनः अपने पतिके पास उपवनमें जा पहुँची । राजाने उसे आते देखा, किन्तु उनके मनमें तत्काल उसके प्रति अरुचि उत्पन्न हो उठी ॥ ५ ॥

६

भगवान् महावीर राजा श्रेणिकसे कहते हैं—हे राजाधिराज, उस समय यद्यपि रानी वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत थी, तथापि वह विकराल दिखाई देने लगी, और उसके चित्तमें भी अधीरता आ गई । भवितव्यता ऐसी होती है । इसी बीच जब रानी समीप आई, तब राजाको प्रतीत हुआ कि उसके मुखसे बहुत दुर्गन्ध आ रही है । अनन्तर जब राजाने नगरमें प्रवेश किया तो उन्हें

पुच्छिउ किं जिणहरे पउरु खोहु ।　　किं चोज्जु कवणु किं को विरोहु ।
ता एक्क मणुण वि चविउ तेत्थु ।　　जइ अभउ देइ णिउ कहमि तत्थु ।
राएण वुत्तु कहि कहिउ तेण ।　　मुच्छाविउ मुणिवरु परवसेण ।
देविए तुम्हइं वि सुपेसियाइं ।　　दिण्णउ अपक्कु आहारु ताइं ।
तं सुणिवि णरिंदए कोवएण ।　　चिंतिउ किउ सयलु अजुत्तु एण ।
जइ मारमि तो जणे तिय-पवाउ ।　　अच्छइ परिहारइं दूह ठाउ ।
इय चिंतिवि मुक्क णिरत्थ करिवि ।　　वइ अणुहवेवि दुत्तण मरिवि ।
उप्पण्ण म्हइसि-कुच्छिए हवेवि ।　　मुअ माइरि सेइत्तइ ण कोवि ।
बहु रिणिधिणंति सा झसियकाय ।　　किमि सिमिसिमंत दुग्गंध जाय ।
सा अण्णहिं दिणे तण्हाइं तत्त ।　　पहे सरिहे पइट्ठिय पंकि खुत्त ।
मग्गेण मुणीसर दिट्ठ जंत ।　　सिरु धुणइ सकोवइं हणणचित्त ।
ता खुत्तु खंधु पंकए मरेवि ।　　उप्पण्ण णिवइ-सूवरि हवेवि ।
मुअ मायरि छुहइ म खीणगत्त ।　　ताडिज्जइ लोयहिं किं कियत्त ।
तहिं मुअ पुणु संवरि झसियकाय ।　　पुणु मुअ चंडालिहिं गब्भे जाय ।

वहाँ महान् कोलाहल सुनाई पड़ा । राजाने पूछा कि जिन-मन्दिरमें इतना क्षोभ क्यों हो रहा है ? वहाँ कोई कौतुक हो रहा है या कुछ लड़ाई-झगड़ा उठ खड़ा हुआ है । तब किसी एक नागरिकने भयभीत होते हुए राजासे प्रार्थना की "हे महाराज, यदि अभय प्रदान करें तो मैं सत्य बात कहूँ ।" राजाने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर उसे वृत्तान्त कहनेके लिए आदेश दिया । तब उसने कहा "हे महाराज, आपके द्वारा प्रेषित होनेपर रानीजीने मुनिवरको अपक्व आहार दिया, जिसके कारण परवश होकर मुनिराजको मूर्च्छा आ गई ।" यह वृत्तान्त सुनकर राजाको बड़ा क्रोध आया । वे विचारने लगे "इस रानीने यह बहुत ही अयोग्य कार्य किया है । यदि मैं इसे मार डालूँ तो लोगोंमें यह अपकीर्ति होगी कि राजाने स्त्रीघात किया । और इसे यों ही राजमहलमें रहने दूँ तो लोग यह दोष देंगे कि राजाने रानीके घोर अपराधके लिए उसे कोई दण्ड नहीं दिया ।" ऐसा चिन्तन करके राजाने रानीके सब वस्त्राभूषण छीन लिये और उसे निर्धन करके राजमहलसे निकाल दिया । तब रानी बड़े क्लेशका अनुभव कर आर्तध्यानसे मरणको प्राप्त हुई । पश्चात् उसने एक भैंसकी कुक्षिमें जन्म लिया । उसके जन्म लेते ही माताका मरण हो गया और उसका पालन करनेवाला कोई न रहा । बहुत झूंक-झूंक कर वह कुछ बड़ी हुई, किन्तु उसका शरीर नितान्त दुर्बल था । उसके शरीरमें कीड़े पड़ रहे थे जिससे उसकी दुर्गन्ध भी आने लगी । एक दिन वह प्याससे तप्त होकर एक सरोवरमें घुसी और वहाँ कीचड़में फँस गई । उसी समय उस मार्गसे एक मुनीश्वर निकले । किन्तु उन्हें देखकर वह कोपसे सिर हिलाने लगी और उन्हें मारनेकी उसे इच्छा हुई । इससे उसके कन्धे भी कीचड़में डूब गये और वह वहीं मृत्युको प्राप्त हुई ।

भैंसकी योनिसे निकलकर उस रानीका जीव, हे राजन्, एक शूकरीके गर्भमें आया । उसे जन्म देनेवाली शूकरीका शीघ्र ही मरण हो गया और यह भूख प्याससे क्षीण-शरीर हो गई । लोग उसको मनमाना मारने पीटने लगे । निदान वह मरणको प्राप्त हुई ।

शूकरीकी योनिसे निकलकर पुनः उस रानीका जीव साँभरी (मृगी) की योनिमें आया ।

घत्ता—गब्भत्थहे मुउ चंडालु तहे मायरि मुए जम्मंतियहे ।
जोयण दुग्गंधु सरीरहो वि आवइ फुडु तहे तीयहे ॥ ६ ॥

७

असहंतहिं चंडालहिं दुगंधु । चिंतिउ किं किज्जइ पडिणिबंधु ।
जइ एक्कई बहुअहं होइ दुक्खु । तो किज्जइ परि एक्कहिं पि सोक्खु ।
इम जंपिवि अडविहि णेइ मुक्क । वरिसट्ठ जाम ता तहिं मि थक्क ।
पिप्पल पिलिखिणि उंबर फलाइं । भक्खइ आलुंबरि सद्दलाइं ।
एत्थंतरे केण मुणीसरेण । गुरु पुच्छिउ सविणय णिअसिरेण ।
परमेसर पूरिय-णासरंधु । कहिं आवइ एहु अइसय-दुगंधु ।
मुणि पभणइ णिय-हिय-कोवकरणि । चिरु रिसिहिं उवरि संसार-सरणि ।
तें पावइं एहु दुग्गंधु जाउ । तं सुणिवि चविउ सिसु पुणु सराउ ।
णिच्छरिहइ किम एहु एहु पाउ । ता कहिउ मुणिंदें तहो उवाउ ।
मेल्लेविणु जिणवर-धम्मसारु । को जीवहं अण्णु जि होइ तारु ।
दयमूलु खंति मद्दव परद्दु । अज्जव सउच्च सच्चोवविद्दु ।

उसका शरीर यहाँ भी बहुत दुर्बल था । और शीघ्र वह यहाँ भी मरणको प्राप्त हुई ।

साँभरीकी योनिसे निकलकर वह रानीका जीव एक चाण्डालिनीके गर्भमें आया । गर्भमें आते ही उसके चाण्डाल पिताकी मृत्यु हो गई और उसको जन्म देनेकी पीड़ामें ही माताका मरण हो गया । इस चाण्डाल-सुताके शरीरसे एक योजन तक जानेवाली दुर्गन्ध निकलने लगी ॥ ६ ॥

७

इस मातृ-पितृ-विहीन चाण्डाल-कन्याकी उस घोर दुर्गन्धको उसके पड़ौसी चाण्डाल भी सहन न कर सके । तब वे सोचने लगे कि इस आपत्तिका क्या उपाय किया जाय । जब किसी एकके कारण अनेकोंको दुःख उत्पन्न हो, तो उस एकका तिरस्कार कर दिया जाय, इसीमें भलाई है । ऐसे आपसमें विचार कर उन्होंने उस दुर्गन्धा कन्याको एक अटवीमें ले जाकर छोड़ दिया । वहाँ वह आठ वर्ष तक रही । वह पीपल, पिलखिन, ऊमर आदि अभक्ष्य उदुंबर फलोंको मय पत्तोंके भक्षण कर जीवित रही ।

एक दिन उसी अटवीके समीप कुछ मुनि विहार कर रहे थे । एक मुनिने अपने गुरुको प्रणाम कर विनय भावसे पूछा—हे गुरुवर, यह हमारी नाकको भरनेवाली महान् दुर्गन्ध कहाँसे आ रही है ? तब उन मुनीश्वरने उत्तर दिया—"एक स्त्रीने अपने हृदयमें मुनिराजपर क्रोध धारण किया था, उसी पापके फलसे उसके मुँहमें दुर्गन्ध उत्पन्न हुई है, जो जन्म-जन्मान्तरमें भी उसका पीछा नहीं छोड़ती ।" गुरुकी यह बात सुनकर उस शिष्यने मुनिसे फिर भक्तिपूर्वक पूछा—हे गुरुवर, अब हमें आप कृपाकर यह बतलाइये कि उस स्त्रीका यह पाप कैसे दूर होगा ? तब मुनिराज उस पापके निवारणका उपाय बतलाने लगे । वे बोले—

इस संसारमें सारभूत वस्तु जैनधर्म ही है । उस जैनधर्मको छोड़कर और कौन इस जीवका तरण-तारण कर सकता है । दयामूलक उत्तम क्षमा और मार्दव ये पुरोगामी गुण हैं; आर्जव, शौच

संजमु तह पोसणु आवणीउ । तउ णउ जलउत्तहि तारणीउ ।
वेउव्विय करि तह मज्झि खंभु । दह धम्महं णावइ पुरउ बंभु ।
इउ पालइ पंचुंबर-विरत्ति । णिसिभोज्जहं मज्जहं किय णिवित्ति ।
इय कहिउ असेसु वि मुणिवरेण । तेण वि आयण्णिउ आयरेण ।
पुणु सद्दहाणु किउ धम्मु तेण । णियमिय-पंचुंबर-भक्खणेण ।
एत्तहे वि आउ परिपुण्णु जाउ । मुअ धम्महं उप्परि धरंति भाउ ।

घत्ता—तहु वयहु पहावइं उवसम-भावइं दालिद्दिय-दियवरहो घरि ।
जाइवि उप्पण्णिय देह कुवण्णिय उज्जेणिहि आसण्ण धरि ॥ ७ ॥

८

तहिं कोसु एक्कु दुग्गंधु जाइ । बहु-पावहु कहिमि ण छेउ होइ ।
तहि मायरि मुअ तहु दियहु कंत । माया-विहीण बहु-दुक्ख-तत्त ।
जामच्छइ कव्वाडु वि करंति । खड-कट्ठ-पण्ण-फल विक्किणंति ।
ता अण्णहिं दिणि णंदण-वणम्मि । उज्जेणि-तडिहि तरुवर-घणम्मि ।
आयउ वि सुदंसणु मुणिवरिंदु । गय-वाहणु रेहइ णं सुरिंदु ।
तिदंसणु णं संकरु विहाइ । चउभासापढणु बंभु णाइ ।
गय-रहिउ अउव्वु वि विण्हु भाइ । बहुगुणु वण्णणउं ण कहिमि जाइ ।

व सत्य, ये उन गुणोंके साधक उत्पादक हैं, संयम इन गुणोंका पोषण करनेवाला है, तप और त्याग जलोदधिके तारनेवाले हैं। विक्रिया अर्थात् आकिंचन उनका मध्यस्तम्भ है और ब्रह्मचर्य मानो दशों धर्मोंके आगे है। इन दश धर्मोंके अतिरिक्त पंच उदुम्बरका परित्याग करना चाहिए तथा रात्रिभोजन व मद्यपानसे भी निवृत्ति रखना चाहिए।

इस प्रकार मुनिराजने समस्त धर्मका सारभूत उपदेश दिया जिसे उस दुर्गन्धा चाण्डाली ने भी आदर सहित सुना। इसे सुनकर उसने धर्मपर श्रद्धा की और पंच उदुम्बरका त्याग किया। शीघ्र ही उसकी आयु भी पूर्ण हुई। तब वह धर्ममें भावना रखती हुई मृत्युको प्राप्त हुई। उस व्रतके प्रभावसे तथा मरणकालके उपशम भावसे वह उज्जैनीमें एक दरिद्री ब्राह्मणके घर जाकर कुरूप कन्या उत्पन्न हुई॥ ७॥

८

इस भवमें अब उस कन्याकी दुर्गन्ध एक कोस तक ही जाती थी। तीव्र पापका अन्त शीघ्र नहीं हो पाता। जन्म होते ही उसकी माता द्विज-पत्नीका मरण हो गया। मातृ-विहीन होकर इसने बहुत दुःख पाया। वह घास, लकड़ी, पत्ते, फल आदि बेचनेका कबाड़ करके अपना पेट पालने लगी। तब एक दिन उस उज्जयिनी नगरीके समीप सघन वृक्षों वाले नन्दन वनमें सुदर्शन मुनिवरका आगमन हुआ। वे मुनीन्द्र गतवाहन अर्थात् वाहनरहित थे जिससे उसकी उपमा सुरेन्द्रसे दी जा सकती है जो गजवाहन अर्थात् हाथी पर आरूढ़ होते हैं। वे तीन दर्शनोंके (चक्षु अचक्षु और अवधि) के धारक थे जिससे वे त्रिदर्शन अर्थात् तीन आँखों वाले शंकरके समान थे। वे चार भाषाओंके पाठी थे जिससे वे ब्रह्माके समान थे जो चार वेदोंका पाठ करते हैं। वे गदारहित होनेसे अपूर्व विष्णुके समान दिखाई देते हैं। वे इतने गुणवान् थे कि उनके समस्त गुणोंका वर्णन करना अशक्य है।

एहउ परमेसरु आउ जाम । णयरिहिं जणु जत्तहिं गयउ ताम ।
जससेणु णराहिउ परियणेण । गउ जत्तएं सहु अंतेउरेण ।
वणतिलय मणोहरि भज्ज तासु । आया गुरुभत्तिएं मुणिवरासु ।
ता णंतरि सा दियवरणिव तणय । आया गिण्हेप्पिणु कट्ठ-तिणय ।
पुच्छिउ कि दीसइ णयरि खोहु । आवइ जणु वणहु असंखु एहु ।
ता कारणु केण वि कहिउ तेत्थ । जइवसहु परायउ एक्कु एत्थ ।
तहो वंदणभत्तिए जाउ लोउ । णिउ आयउ पेक्खइ अण्णु कोउ ।
तं सुणिवि तेण भरु मेल्लिऊण । गय वणहु झत्ति कोऊहलेण ।

घत्ता—*ता दिट्ठउ लोयउ पुरउ वइट्ठउ पुच्छंतउ जम्मंतरइं ।*
दुक्कियइं पणासइ मुणिवरु भासइ जासु वि जाइं णिरंतरइं ॥ ८ ॥

९

तहो धम्माहम्महो फलु वि के वि । पुच्छहिं वयदाणहिं अण्णए वि ।
एत्थंतरि तासु सुणेवि सव्वु । अवलोयउ मुणिवरु मणहरव्वु ।
उम्मूलिउ जें भवतरुहु मूलु । चूरिउ सल्लत्तउ जिं तिसूलु ।
भूसिउ रयणत्तय-भूसणेण । जं दिट्ठिवि सा पुणु तक्खणेण ।
णिवडिय महियलि तहि अवसरेण । आणाविय णियडु मुणीसरेण ।

ऐसे परम मुनीश्वरके आनेपर नगर-निवासियोंकी उनके दर्शनके लिए यात्रा प्रारम्भ हो गई। राजा जयसेन अपने अन्तःपुर एवं परिजनों सहित यात्राको निकले। उनकी वनतिलका नामक मनोहर भार्या भी बड़ी भक्ति सहित मुनिवरके समीप आयी। इसी बीच वह द्विजकन्या दुर्गन्धा भी घास लकड़ी लिये हुए वहींसे निकली। उसने लोगोंसे पूछा "नगरमें इतनी हलचल क्यों हो रही है और वनकी ओर ये असंख्य लोग क्यों आ रहे हैं ? तब किसीने उसे बतलाया कि वहाँ एक यतिवर आये हैं और उन्हींकी वन्दनाके लिए लोग भक्ति सहित जा रहे हैं। और की तो बात ही क्या, स्वयं राजा भी उनके दर्शनके लिए आया है। यह बात सुनकर उस द्विज-कन्याको भी कौतूहल हुआ और वह अपना भार वहीं छोड़कर वनकी ओर चल पड़ी। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि वहाँ बहुत लोग बैठे हुए हैं और वे अपने-अपने जन्मान्तरकी बातें पूछ रहे हैं। मुनि महाराज जिस किसीसे बोल लेते हैं उसके निरन्तर पापोंका विनाश हो जाता है ॥ ८ ॥

९

वहाँ कोई मुनिराजसे धर्म और अधर्मका फल पूछ रहे थे, तो अन्य कोई व्रत और दानका फल जाननेकी इच्छा कर रहे थे। इसी बीच दुर्गन्धाने वहाँ पहुँचकर और उनकी सब बातें सुनकर मनोहर मुनिवरको ओर देखा। वे मुनिराज सामान्य नहीं थे। उन्होंने अपने संयम और तपके प्रभावसे भव रूपी वृक्षके मूलको नष्ट कर दिया था और त्रिशूल-सा चुभनेवाले मिथ्यात्व, माया और निदान इन तीनों शल्योंको चूर-चूर कर दिया था। वे दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन तीनों रत्नोंसे विभूषित थे। मुनिराजपर दृष्टि पड़ते ही दुर्गन्धा उसी समय मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। मुनिराजने उसे अपने समीप मँगा लिया और गोषीर रससे उसका सिंचन कराया। वह क्षण भरमें सचेत हो गई।

सिंचाविय गोसीरहु रसेण । सणमेत्तकइं चेयण लइय तेण ।
एत्थंतरे पुच्छिय णरवरेण । तुहुं मुच्छिय कवणहि कारणेण ।
ता भणिउ णिसुणि रायाहिराय । महु तणिय अहम्म-कहाणियाय ।
परिसाहिवि सक्कइं जिणवरिंद । महु दुक्खसंख अह वा मुणिंद ।
जइ भणउं लेसु एक्कु जि कहेमि । णीसेस ण कहणहं सक्कणमि ।
ता भणिउ णरिंदइं जेत्तिया वि । सक्कहिं कह पयडहि तेत्तिया वि ।
सा भणइ एत्थ सुपसिद्ध जाय । णामेण वणारसि णयरि राय ।
तहि णरवइ णामें पउमणाहु । जिणवर-पय-भसलु महीसणाहु ।
हउं सिरिमइ णामें तासु कंत । अइपाणपियारी गुणमहंत ।
ता अण्णहि दिणि वणकीलणेण । जा चल्लिय णिरु अद्धासणेण ।
ता दिट्ठु मणीसरु सुमुहु एंतु । पुव्वकियकम्महो जो कयंतु ।
ता रायएं णिलयहु पेसियाइं । खावाविउ मइं वि सरोसियाइं ।
तें पावें तहि भवे णिवेण चत्त । मुअ कुट्ठिणि होइवि दुक्खतत्त ।

घत्ता—*हुअ महिसि सिगालिय सूवरि कालिय पुणु संवरि चंडालि तह ।*
एवहिं हुव बंभणि दुक्ख-णिसुंभणि एत्तिए भव-आवलिय-कह ॥ ९ ॥

१०

ता णिवेण वुत्तु मुणि मज्झु भासि । इय सच्चु चवइ किं अलियरासि ।

दुर्गन्धाके सचेत होनेपर राजाने उससे पूछा कि हे कन्ये, तू यहाँ मूर्च्छित किस कारण से हुई ? तब दुर्गन्धाने कहा "हे राजाधिराज, मेरी अधर्मभरी कहानी सुनिये। मुझे जो असंख्य दुख सहन करने पड़े हैं वे या तो जिनेन्द्र ही कह सकते हैं अथवा ये मुनीन्द्र ! यदि मुझे ही कहना है तो मैं केवल एक लेशमात्र कहती हूँ। समस्त वृत्तान्त कहना मेरी शक्तिके बाहर है। तब राजाने कहा जितनी कथा तू कह सके उतनी ही कह। तब दुर्गन्धाने कहा—

इसी भरत क्षेत्रमें बनारस नामकी सुप्रसिद्ध नगरी है। वहाँ एक बार पद्मनाथ नामका राजा राज्य करता था। वह राजा जिनपद्भक्त अर्थात् जैन धर्मका उपासक था। मैं उसी पद्मनाथ राजाकी रानी श्रीमती थी। सर्वगुणसम्पन्न होनेसे राजा मुझे अपने प्राणोंके समान प्यार करता था। एक दिन जब मैं राजाके साथ अर्धासनपर बैठी हुई वन-क्रीड़ाके लिए जा रही थी, तब सम्मुख आते हुए एक मुनिराज दिखाई दिये। वे पूर्वकृत कर्मोंके क्षय करनेमें कृतान्त अर्थात् यमराजके समान थे। उनके दर्शन होनेपर राजाने मुझे उन्हें आहार करानेके लिए वापिस घर भेजा। मैंने आकर क्रोध भावसे उन्हें कड़वे फलोंका आहार कराया। उस पापके फलस्वरूप राजाने उसी भवमें मेरा परित्याग कर दिया। मैं कुष्ट रोगसे पीड़ित हो गई और दुःखसे तपायमान होते हुए मैंने प्राण विसर्जन किये। जन्मान्तरमें मैं क्रमशः भैंस, शृंगाली, काली शूकरी, फिर साँभरी और फिर चण्डालिनी होकर अब इस जन्ममें ब्राह्मणी हुई हूँ। यही मेरे भवभ्रमणकी दुःखपूर्ण कहानी है ॥ ९ ॥

१०

दुर्गन्धाके जन्म-जन्मान्तरोंकी दुःखपूर्ण कथा सुनकर राजाने मुनिराजसे पूछा 'हे मुनीन्द्र !

ता भणिउ मुणिंदें सयलु सच्चु । अयणारिंसु अत्थि ण एण वंचु ।
पुणु तत्थ णरिंदें वुत्तु साहु । किम कम्मछेउ होसइ सुलाहु ।
कहि को वि उवाउ अउव्वु तेम । चलि पावइ सुहगइ एह जेम ।
ता भणिउ सुअंधदहमि करेइ । दुत्तरु कम्मोवहि तिण्ण तरेइ ।
तहिं अवसरि ताइं णरेसरेण । भालयलि णिहियकर-णअसिरेण ।
पभणिउ परमेसर कहहि तेम । किज्जइ दिज्जइ उज्जमणु जेम ।
एत्थंतरि णहि जंतउ विमाणु । पडिखलिउ विचिंतइ ता विमाणु ।
णामेण भुवंजउ खगवईसु । णिय तेओहामिय-गहवईसु ।
अच्छइ किं अरि महु कूरभाउ । किं मुणिवरु को वि उज्झिय-कसाउ ।
इम चिंतिवि झायउ जा मणम्मि । ता जाणिउ मुणि णिम्मलु जणम्मि ।
अच्छइ पयडंतउ धम्मसारु । लइ जाउं ण गच्छइ जहिं कुयारु ।
इम चिंतिवि खेयरु आउ तेत्थु । अच्छइ मुणि णायर-जणु वि जेत्थु ।
वंदेप्पिणु तहिं उवइट्ठु जाम । एत्थंतरे मुणि कह कहइ ताम ।

घत्ता—णिसुणहि णियपुत्तिए आयम-जुत्तिए णिसुणहि अवर वि सयलह ।
भासमि विहिकरणउ पुणु उज्जमणउ फलु सुअंधदहमिहि जह ॥ १० ॥

यह जो दुर्गन्धा ब्राह्मणीने कहा है वह सब सत्य है या झूठ बातोंका पुंज है। मुनिराजने कहा—'जो कुछ इसने कहा है वह सब सत्य है, औरोंके समान उसने झूठ कहकर धोखा देनेका प्रयत्न नहीं किया। तब राजाने मुनिसे पूछा 'हे मुनिराज, अब इस ब्राह्मणीको अपने कर्मोंका छेद करनेका अवसर कब और कैसे मिलेगा ? आप कोई ऐसा अपूर्व उपाय बतलाइये जिससे कि आगे चलकर यह कन्या शुभ गतिको प्राप्त हो सके। राजाका प्रश्न सुनकर मुनिराज बोले 'इस कन्याको सुगन्ध दशमी व्रतका पालन करना चाहिए। उसी व्रतके द्वारा यह कर्मोंके दुस्तर समुद्रको पार कर सकती है।' इस अवसरको पाकर राजाने सिरपर हाथ जोड़ मुनिको नमन करके प्रार्थना की 'हे मुनिराज, अब यह बतलानेकी कृपा करें कि यह व्रत कैसे किया जाता है और उसके उद्यापनकी विधि क्या है ?'

ठीक इसी बीच आकाशसे गमन करता हुआ एक विमान वहाँ आकर सहसा रुक गया। अपने विमानको अवरुद्ध हुआ देखकर उसमें आरूढ़ हुआ विद्याधर भी विमान अर्थात् मानहीन होकर चिन्तामें पड़ गया। विमानका अधिपति भुवंजय नामक विद्याधरोंका राजा था जिसने अपने तेजसे ग्रहपति अर्थात् चन्द्रमाको भी पराजित कर दिया था। अपने विमानके अकस्मात् रुकनेसे वह विद्याधर सोचने लगा 'क्या यहाँ कोई मेरा शत्रु बैठा है जो मेरे प्रति क्रूर भाव रखता है; अथवा यहाँ कोई मुनिवर विराजमान हैं जिन्होंने अपने क्रोधादि कषाय त्याग दिये हैं ?'' यह चिन्ता उत्पन्न होनेपर ज्योंही उस विद्याधरने मनमें ध्यान लगाया त्योंही वह जान गया कि वहाँ एक निर्मल स्वभाव और प्रचण्ड तपस्वी मुनिवर लोगोंके बीच बैठे हुए उन्हें धर्मका सार समझा रहे हैं। 'तो मैं भी शीघ्र वहीं जाऊँ जहाँ कुकर्मी नहीं जाता' ऐसा विचार कर वह विद्याधर भी वहीं आ पहुँचा जहाँ वे मुनिराज और नगरनिवासी बैठे थे। विद्याधर मुनिवरकी वन्दना कर जब वहाँ बैठ गया तब मुनिराजने अपना धर्मोपदेश देना प्रारम्भ किया।

उस दुर्गंधा कुमारी तथा अन्य उपस्थित जनोंको सम्बोधन करते हुए मुनिराज बोले

११

भद्दवि सियपंचमि उववसिज्जइ । पंचदिवसि कुसुमंजलि दिज्जइ ।
णाणाफलहिं फणस-विज्जउरहिं । फोफल-कुंभंडहिं णालियरहिं ।
कुसुमहि पंच-पयार-सुअंधहिं । महमहंत-वरधूवहि दीवहिं ।
पुणु दहमीहिं सुअंधउ किज्जइ । तद्दिणि आहारु वि णियमिज्जइ ।
अहवा पोसहु णउ सक्केज्जइ । एयभत्त तो णियमइं किज्जइ ।
रयणिहि जिण चउवीस ण्हविज्जइं । दहवारें दह पुज्जउ किज्जइ ।
दहमुह-कलस करेवि थविज्जइ । पुणु दहंगु तहे धूउ दहिज्जइ ।
कुंकुमाइ दहदव्वइं जुत्तउ । किज्जइ जिण-समलहणु पवित्तउ ।
पुणु दह भत्तिहि अक्खय-जुत्तउ । लिहियइं मंडल अंसु विचित्तउ ।
तहिं दह दीवय उवरि धरिज्जइं । दह फल मणहर अग्गइं दिज्जइं ।
दह पयार णेविज्जइं किज्जइं । दह वारइं जिणणाहु थुणिज्जइ ।
इय विहिए किज्जइ दह वरिसइं । दह पाणइं परिवड्ढिय-हरिसइं ।
घत्ता—*इय विहाणु णिसुणिउ णिवइ पुणु णिसुणहि उज्जमणउ ।*
(तं तुह) आहासमि कमिण पयासमि होइ जेम जं करणउ ॥ ११ ॥

"हे पुत्रि तथा अन्य नगरनिवासियो, सुनो । मैं तुम्हें आगम और युक्ति सहित यह समस्त विधि बतलाता हूँ जिसके अनुसार सुगन्धदशमीव्रतका पालन और फिर उसका उद्यापन करना चाहिए । मैं यह बतलाऊँगा कि इस व्रतके पालनका फल क्या होता है ॥ १० ॥

११

सुगन्धदशमी व्रतका पालन इस प्रकार किया जाता है—भाद्रपद शुक्ल पंचमीके दिन उपवास करना चाहिए और उस दिनसे प्रारम्भ कर पाँच दिन अर्थात् भाद्रपद शुक्ल नवमी तक कुसुमाञ्जलि चढ़ाना चाहिये । कुसुमाञ्जलिमें फनस, बीजपुर, फोफल, कूष्माण्ड, नारियल आदि नाना फलों तथा पंचरंगी और सुगन्धी फूलों तथा महकते हुए उत्तम दीप, धूप आदिसे खूब महोत्सवके साथ भगवान्‌का पूजन किया जाता है । इस प्रकार पाँच दिन नवमीतक पुष्पाञ्जलि देकर फिर दशमीके दिन जिन-मन्दिरमें सुगन्धी द्रव्यों द्वारा सुगन्ध करना चाहिए और उस दिन आहारका भी नियम करना चाहिए । उस दिन या तो प्रोषध करे, और यदि सर्व प्रकारके आहारका परित्याग रूप पूर्ण उपवास न किया जा सके, तो एक बार मात्र भोजनका नियम तो अवश्य पाले । रात्रिको चौबीसी जिन भगवान्‌का अभिषेक करके दश बार दश पूजन करना चाहिए । एक दशमुख कलशकी स्थापना करके उसमें दशांगी धूप खेना चाहिए । कुंकुम आदि दश द्रव्यों सहित जिन भगवान्‌की पवित्र पूजा स्तुति करना चाहिए । पुनः अक्षतों द्वारा दश भागोंमें नाना रंगोंसे विचित्र सूर्य मण्डल बनाना चाहिए । उस मण्डलके दश भागोंमें दश दीप स्थापित करके उनमें दश मनोहर फल और दश प्रकार नैवेद्य चढ़ाते हुए दश बार जिन भगवान्‌की स्तुति वन्दना करना चाहिए । इस प्रकारकी विधि हर्ष पूर्वक मन वचन कायसे पांचों इंद्रियोंकी एकाग्रता सहित प्रति वर्ष करते हुए दश वर्ष तक करना चाहिए ।

मुनि महाराज कहते हैं, हे राजन् सुगन्धदशमी व्रतके विधानको तुमने सुना । अब आगे इस व्रतकी जो उद्यापनविधि है, उसमें जो कार्य जिस प्रकार करना चाहिए, उसे यथाक्रमसे बतलाता हूँ ॥ ११ ॥

१२

दह वरिसइं पूरिहिं उज्जमणउ । किज्जइ जिणवर-देवहं ण्हवणउ ।
पुणु मणहरु फुल्लहरउ किज्जइ । अंगणि चंदोवउ ताडिज्जइ ।
दह-धयहिं उब्भिज्जइ जिणहरु । तारइय हु लंबिज्जइं मणहरु ।
दिज्जइ घंट चमर जुअलुल्लउ । धूवडहणु आरत्तिउ भल्लउ ।
दह पोत्थय वत्थइं धल्लिज्जइं । दह पुणु ओसह-दाणइं दिज्जइं ।
दह साडय दिज्जइं वयधारिहिं । दह अच्छायण तह बंभारिहिं ।
पुणु दह मुणिहिं रसहिं छहिं जुत्तउ । दिज्जइ आहारो वि पवित्तउ ।
दह कंचुल्ल खीर-घय-जुत्तइं । दिज्जइं सावय-घरिसु पवित्तइं ।
एयउ उज्जवणु वि णरेसर । कहिउ असेसु वि मइं तुह सिरिहर ।
अहवा एत्तिउ जइ वि ण पुज्जइ । तो णियसत्तिए थोवउ दिज्जइ ।
थोवइं हीणु पुण्णु उप्पज्जइ । एउ ण चिंति कयावि धरिज्जइ ।
अहियहु तउ णिय-सत्तिए दिण्णउ । थोवइं अहिउ पुण्णु पडिवण्णउ ।
सग्गहु पिंडु कहाणिय जारिसु । होइ अणंतु पुण्णु इह तारिसु ।

घत्ता—*इय विहिय-विहाणइं सहु उज्जमणउ जो करेइ तिय पुरिसु लहु ।*
सो कम्मइं खंडिवि भवदुहु छंडिवि पुणु पावइ सिउपयहु सुहु ।

इय सुअंधदहमीकहाए पढमो संधी परिच्छेओ समत्तो ॥ १ ॥

१२

जब सुगन्धदशमी व्रतका विधिपूर्वक पालन करते हुए दश वर्ष पूर्ण हो जायँ तब उस व्रतका उद्यापन करना चाहिए। मन्दिरजीमें जिन-भगवान्‌का अभिषेक पूजन करना चाहिए। समस्त जिन-मन्दिरको पहले मनोहर पुष्पोंसे खूब सजाना चाहिए, आँगनमें चँदोवा तानना चाहिए, दश ध्वजाएँ फहराना चाहिए और मनोहर तारांएँ भी लटकाना चाहिए। मन्दिरजीको घंटा और चामरोंकी एक जोड़ी तथा अच्छी धूपधानी और आरती चढ़ाना चाहिए। दश पुस्तकें और दश वस्त्र भी चढ़ाना चाहिए तथा दश व्यक्तियोंको औषधिदान देना चाहिए। जो व्रतधारी ब्रह्मचारी आदि श्रावक हों उन्हें दश धोतियाँ और दश आच्छानक (छल्लों) का दान देना चाहिए। फिर दश मुनियोंको षड्रस युक्त पवित्र आहार देना चाहिए। दश कटोरियाँ पवित्र खीर और घृतसे भरकर दश श्रावकोंके घरोंमें देना चाहिए। हे श्रीमान् नरेश, यह सुगन्धदशमी व्रतका उद्यापन विधान है जो मैंने तुम्हें समस्त बतला दिया। यदि इतना विधान करना व दान देना अपनी शक्तिके बाहर हो तो अपनी शक्तिके अनुसार थोड़ा ही दान करना चाहिए। थोड़ा देनेसे हीन पुण्य उत्पन्न होता है, ऐसा विचार चित्तमें कदापि न लाना चाहिए। बहुत दानकी अपेक्षा जो भी अपनी शक्तिके अनुसार दिया जाता है उससे अधिक ही पुण्य उत्पन्न होता है। नाना स्वर्गोंकी प्राप्तिकी जो नाना कहानियाँ कही जाती हैं उनके ही समान इस सुगंधदशमी व्रतके पालनसे भी अनन्त पुण्यकी प्राप्ति होती है।

ऊपर बतलाये हुए विधि विधानके अनुसार जो कोई स्त्री या पुरुष सुगंधदशमी व्रतका पालन करता और उद्यापन कराता है वह अपने कर्मोंका खण्डन करके व संसारके दुःखोंको छोड़कर उत्तम स्वर्गादि पदोंके सुखका अनुभव करता है ॥ १२ ॥

इति सुगंधदशमी कथा प्रथम सन्धि ।

बीओ संधी

१

दह मीहि वउ किज्जइ मणि अणुराए।
कलिमलु अवहरइ पुव्वकिय मुच्चइ पावें।

इउ कहिउ मुणिंदइं जाम अत्थु। तहिं दिणि तहिं हुइ दहमि तत्थु।
किउ वउ ता सयलतेउरेण। किउ राएं सह परिवारएण।
किउ णयरिहिं लोयहिं सयलएहिं। किउ तेण दुगंधइं अवरएहिं।
ता दिण्णउ चंदणु केण ताहे। केण वि कुसुमक्खय दीणयाहे।
केण वि तह अप्पिउ ण्हवणु अमलु। केण वि चरु दीवउ धूउ-सहलु।
तेण वि किउ गुरु-अणुराएण। ण्हवणच्चणु सहुं उववासएण।
मुणिणाहहो आउसु मुणिउ ताहे। अज्जियहे समप्पिय सुव्वयाहे।
ता छट्ठोवासइं कंजियाइं। एक्कंत-राय-रस-वज्जियाइं।
अवराइं मि बहु भेयाइं जाइं। गुरुकायकिलेसइं कियइं ताइं।
अवसाण-यालि जिणु संभरेवि। मुअ चउविहु सण्णासणु करेवि।
उप्पण्णिय सुणि सेणिय-णरिंद। जहिं वयहं पहावइं अरि-मइंद।

द्वितीय संधि

१

सुगंध दशमी व्रतका पालन मनमें अनुराग सहित करना चाहिए। इससे कलिकालके मलका अपहरण होता है और जीव अपने पूर्वमें किये हुए पापोंसे मुक्त होता है।

जिस दिन मुनिराजने यह सुगंध दशमी व्रतके विधानका उपदेश दिया उसी दिन भाग्यसे वहाँ दशमीका दिन था। अतः इस व्रतको राजाने और उनके समस्त अन्तःपुर तथा परिवारके लोगोंने धारण किया। नगर-निवासी सभी लोगोंने भी व्रत किया। और सबके साथ उस दुर्गन्धाने भी व्रत धारण किया। उस दीन बालिकाको किसीने चन्दन दे दिया और किसीने फूल व अक्षत दे दिये। किसीने उसे निर्मल अभिषेककी सामग्री दे दी तथा किसीने नैवेद्य, दीप, धूप व फल प्रदान किये। इस समस्त सामग्रीको पाकर दुर्गन्धाने बड़ी भक्तिसे उपवास धारण किया और भगवान्का अभिषेक-पूजन भी किया। मुनि महाराजने अपने अवधिज्ञानसे उसकी आयु अल्प शेष रही जान उसे सुव्रता नामक अर्जिकाको सौंप दिया। दुर्गन्धाने अर्जिकाके समीप रहते हुए षष्ठोपवास अर्थात् लगातार दो-दो दिनके उपवास किये तथा राग और रससे वर्जित कांजीका आहार लिया। और भी जो उपवासोंके अनेक भेद हैं तथा जो कायक्लेश रूप व्रत हैं उन्हें दुर्गन्धाने विधिपूर्वक पाला। आयुका अन्त आनेपर उसने जिन भगवान्का स्मरण करते हुए खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय इन चारों प्रकारके आहारका संन्यास अर्थात् सर्वथा परित्याग करके मरण किया।

भगवान् महावीर राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि 'हे शत्रुरूपी मृगोंके लिए सिंह नरेन्द्र, उस सुगंध दशमी व्रतके प्रभावसे वह दुर्गन्धा मरकर पुनः अगले जन्ममें जहाँ उत्पन्न हुई उसकी कथा सुनिए—

रयणउरि णयरि वर-कणय-काउ । कणयप्पहु णामइं अत्थि राउ ।
तहो कणयमाल णामेण कंत । अइमणहर पइ-गुरु-विणयवंत ।
अह तहिं पुरि वणि जिणयत्तु णाम । जिणयत्त भज्ज रइ-सोक्ख-धाम ।
तहो सेट्ठि-अपुत्तहो पुत्ति जाय । उप्पण्णी जाएवि तहिं मि सा य ।
णामेण तिलयमइ णिसुणि राय । बहुलक्खण-लंछिय कणयकाय ।
अइसूहव सुकलालय विहाइ । तणुअंगें चंदहो रेह णाइ ।
मइलिज्जइ तणु तहे कुंकुमेण । ण्हाविज्जइ पुणु चंदण-रसेण ।
सइं एइ सुअंधु सरीरि ताहे । कप्पूरि ण तरिसु मयणाहे ।
बहुभावहिं लालिज्जंतियाहे । मुअ मायरिं अण्णहि दियहिं ताहे ।

घत्ता—*ता ताएं परिणिय अवर तहिं धीय ताहे उप्पण्णी ।*
णामेण राय सा तेयमइ लक्खण-गुण-संपण्णी ॥ १ ॥

२

सा लालइ सज्जइ णियय बाल । अवहीलइ इयर वि णिरु सुबाल ।
आहरणइं वत्थइं णियहे देइ । उद्दालिवि इयरहि पासि लेइ ।
आहार पाण णियसुअहि देइ । इयर वि मग्गंति ण पाउ लहेइ ।

रत्नपुर नगरीमें उत्तम कनकके समान सुन्दर शरीर कनकप्रभ नामके राजा राज्य करते थे। उनकी प्रिय भार्याका नाम कनकमाला था जो बड़ी मनोहर और अपने पति तथा गुरुजनोंके प्रति बड़ी विनयवती थी। उसी रत्नपुर नगरमें सेठ जिनदत्त रहते थे जिनकी पूर्ण सुख देनेवाली भार्याका नाम जिनदत्ता था। जिनदत्त सेठके कोई पुत्र नहीं था। उनके एक मात्र कन्या उत्पन्न हुई थी जिसका नाम था तिलकमती। हे राजन्, सुनिए—वह तिलकमती नामक कन्या सभी सुलक्षणोंसे सम्पन्न थी और शरीर तो इतना सुन्दर था जैसे मानो सुवर्णका ही बना हो। वह सुभग कन्या समस्त कलाओंकी भी निधान थी जैसे मानो कोमल शरीर धारण करके चन्द्र-कला ही उत्पन्न हुई हो। जिनदत्त सेठ उस कन्याको इतने लाड़-प्यारसे रखते थे कि केशरसे तो उसके शरीरका मालिश किया जाता था और चन्दनके रससे उसे स्नान कराया जाता था। उसके शरीरमें स्वभावसे ऐसी सुगन्ध आती थी जैसी कपूर और कस्तूरीमें भी नहीं पाई जाती। ऐसी उस सुन्दर लावण्यवती कन्याका जब नाना प्रकारके लाड़-प्यारसे लालन-पालन किया जा रहा था तब एक दिन अकस्मात् उसकी माता जिनदत्ताका स्वर्गवास हो गया।

अपनी प्यारी भार्याकी मृत्युके पश्चात् उसके पिता सेठ जिनदत्तने दूसरा विवाह किया। इस दूसरी सेठानीके गर्भसे भी एक कन्या उत्पन्न हुई। हे राजा श्रेणिक, इस लक्षणों और गुणोंसे सम्पन्न कन्याका नाम तेजमती रखा गया ॥ १ ॥

२

सेठानी अपनी औरस पुत्रीको तो खूब लाड़ करती और सजाती थी, किन्तु उस दूसरी सौतेली कन्या तिलकमतीका उसके भले स्वभावकी होनेपर भी तिरस्कार करती थी। सेठानी अपनी पुत्रीको अच्छे आभरण और वस्त्र देती थी, किन्तु सौतेली पुत्रीके पास जो कुछ होता उसे भी छीन लेती थी। अपनी सुताको वह अच्छा भोजन खिलाती-पिलाती थी, किन्तु बेचारी सौतेली कन्या माँगनेपर भी भरपेट खानेको नहीं पाती थी। अपनी पुत्रीको सेठानी सदैव अपने पास

णिय सुअ धरेइ अप्पुणहु पासि । इयर वि कम्मावइ जेम दासि ।
ता ताएं जाणिउ महु सुआहे । ण सहेइ सवक्किहि विरहु ताहे ।
इम चिंतिवि पुणु दुवि दासिआउ । णेविंत्तिय करिवि समप्पियाउ ।
एत्थंतरे रयणइं लेवि साहु । पेसिउ णरणाहें सायराहु ।
जंतेण कंत पभणिय विवाहु । विहि जणिहि करेज्जहि भोयलाहु ।
ता पिच्छिवि मग्गहिं सुवण कणए । णामेण तिलयमइ कणयवण्ण ।
ता दावइ अग्गइं णियय कण्ण । वण्णइं लावण्णइं एह पुण्ण ।
इयर वि णिब्भंछइ दूअराय । विहिरियल धूअ कय सुंदराय ।
इय वयणहि केण वि वरिय सा वि । इयर वि जा ण लहिय मणहरा वि ।
ता किउ संजोउ विवाहकम्मु । मंडउ चउ चंउरिए वेइ रम्मु ।
पुणु तइल-पमुह वण्णइं वराइं । कीयइं विहि जणिहिं मणोहराइं ।
परिणयण-दिवसि रयणीहिं तेण । मुक्किय मसाणि सिंगारिएण ।
आवेसइ को इह वरु पसत्थु । परिणावहि अप्पुणु पुत्ति एत्थु ।
चउपासहि दीवय चारि देवि । चउ वारइं चउपासहि थवेवि ।
आईसहुं दासिहिं इय भणेवि । एक्कल्लिय तहिं सा वणि मुएवि ।
एत्थंतरि णिउ सोहयल-सिहरि । ता पेक्खइ थिउ उत्तुंग-पयरि ।

रखती थी, किन्तु उस सौतेली पुत्रीको सदैव काममें लगाये रखती थी, जैसे कि वह कोई दासी हो।

तिलकमतीके पिताने समझ लिया कि सेठानी उसकी पहली पुत्रीको पास रखना उसी प्रकार नहीं सह सकती जिस प्रकार कि वह अपनी पुत्रीका विरह नहीं सहन करती। इस चिन्तासे सेठने अपने घरमें दो दासियाँ नियुक्त कर दीं।

इसी बीच एक और प्रसंग आ गया। राजा कनकप्रभने सेठ जिनदत्तको बुलाकर बड़े आदरसे उन्हें रत्न खरीदनेके लिए देशान्तर जानेकी आज्ञा दी। जाते समय सेठने सेठानीसे कहा "मैं तो राजाकी आज्ञासे देशान्तर जाता हूँ, किन्तु तुम अपनी इन दोनों पुत्रियोंका विवाह दो योग्य वर देखकर कर देना जिससे वे सुखसे रहें।" यह कहकर सेठ तो देशान्तरको चले गये। इधर जो भी वर कन्याओंको देखने आता वह उसी कनकवर्ण सुन्दरी तिलकमतीसे ही विवाहकी याचना करता था। किन्तु सेठानी अपनी पुत्रीको ही आगे करके दिखाती और कहती यही कन्या सुन्दरवर्ण और लावण्यवती है। वह अपनी उस सौतेली कन्याकी बुराई करती और उसे कुरूप बनाकर दिखाती। इन वचनोंसे किसी वरने उस कन्यासे ही विवाह करना स्वीकार किया और उस मनोहर दिखाई देनेवाली दूसरी कन्यासे नहीं। सेठानीने विवाह पक्का कर लिया। विवाहका समय आया। मंडप सजाया गया जिसमें चँवरी लटकाई गई व रमणीक विवाह-वेदी बनाई गई। दोनों कन्याओंकी तेल,हलदी आदि विवाहकी उत्तम विधियाँ उत्सव पूर्वक की गईं। विवाहके दिन रात्रि होते ही तिलकमतीका शृङ्गार करके सेठानी उसे नगरके बाहर श्मशानमें ले गई और उसे वहाँ बैठाकर बोली "हे पुत्रि, तेरा श्रेष्ठ वर यहीं आवेगा और तुझसे विवाह कर लेगा।" ऐसा कहकर उसके चारों ओर चार दीपक रखकर तथा चारों पार्श्वोंमें चार कलश स्थापित करके "दासियोंसहित आऊँगी" ऐसा कहकर सेठानी तिलकमतीको श्मशानमें अकेली छोड़कर घर लौट गई। उसी समय राजा कनकप्रभ अपने राजमहलकी ऊँची अट्टालिकापर चढ़कर

चिंतिउ किं दीसइ जक्खिणीय । किं साहइ विज्जाइं मणुसिणीय ।
किं देवि का वि गंधव्वि एह । किं अच्छरि वर लावण्णदेह ।
अहवा किं एण वियप्पएण । पुच्छमि लहु तुट्टइ भंति जेण ।
इय चिंतिवि णिउ संपत्तु तेत्थु । अच्छइ मसाणि वर बाल जेत्थु ।
चिंतिउ पर होइ ण जक्खिणीय । लोयणहु फडप्फडु मणुसिणीय ।
इय चिंतिवि अप्पु वि पयडु होइ । गउ तहु कुमारिहे णियडु सोइ ।
हक्कारिय का तुहुं एत्थु काइं । किं ईहहि भणु महु बालियाइं ।
सा भणइ कुमारिय वरु णिएमि । परिणयणु एत्थु अज्जु वि करेमि ।
महु पेसिउ ताउ णरेसरेण । देसंतरु रयणहं कारणेण ।
पच्छइं सावक्किए मायरीए । पारद्धु विवाहु मणोहरीए ।
णियसुअहे गेहि महुतणउ इत्थु । ता राएं जाणिउ सयलु अत्थु ।
घत्ता—तहि रायए संजोउ करि परिणिय ता तहिं सुंदरि ।
जिह हरेण गंग अदिण्णिय वि तह सा णयण-मणोहरि ॥ २ ॥

३

पच्चूसि णिवइ घरु जाइ जाम । धाएप्पिणु अंचलु धरिउ ताम ।
पुणु भणिउ कत्थ मइं परिणिऊण । चल्लिउ कहि एवहिं छंडिऊण ।

नगरकी शोभा देख रहे थे। श्मशानकी ओर ज्योंही उनकी दृष्टि पड़ी त्योंही वे विचारने लगे—"श्मशानमें यह कौन दिखाई पड़ रही है ? क्या यह यक्षिणी है, अथवा कोई मनुष्यनी ही है जो किन्हीं विद्याओंकी साधना कर रही है। या यह कोई देवी है,या कोई गन्धर्विणी है,या श्रेष्ठ लावण्य-वती कोई अप्सरा है ? अथवा इस संकल्प-विकल्पसे क्या लाभ ? वहाँ जाकर ही मैं उससे क्यों न पूछ लूँ जिससे मेरी सब भ्रान्ति दूर हो जाय।" ऐसा विचारकर राजा उसी श्मशानमें आया जहाँ वह सुन्दर सेठ-कन्या बैठी हुई थी। राजाने उसकी ओर अच्छी तरह देखकर यह तो निश्चय कर लिया कि यह यक्षिणी नहीं है क्योंकि इसकी पलकें ढलती और उघड़ती हैं, अतएव यह मनुष्यनी ही है। इतना मनमें निश्चय कर राजा प्रकट होकर उस कुमारीके समीप गया। राजाने सम्बोधन कर कहा "हे बालिके, तू मुझे बतला कि तू कौन है, यहाँ क्यों बैठी है व क्या चाहती है ?" राजाकी यह बात सुनकर वह कुमारी बोली "मैं यहाँ अपने उस वरकी प्रतीक्षामें बैठी हूँ जिससे आज ही मेरा विवाह होना है। राजाने मेरे पिताको रत्न खरीदनेके लिए देशान्तर-को भेज दिया। तत्पश्चात् मेरी मनोहर सौतेली माँ ने यह विवाहका समारम्भ किया है। आज ही उसकी निजी पुत्रीका विवाह घरपर और मेरा यहाँ पर होनेवाला है।" उस कन्याकी ये बातें सुनकर राजाने समस्त वृत्तान्त समझ लिया और स्वयं उस नयन-मनोहर सुन्दरीसे अपना विवाह कर लिया,जिस प्रकार कि हर अर्थात् महादेवने गंगा देवीसे बिना किसीके द्वारा कन्यादान दिये विवाह कर लिया था ॥ २ ॥

३

उस रात्रि राजा उस कन्याके समीप वहीं रहा। प्रातः सूर्योदयसे पूर्व ही जब राजा वहाँ-से घरको चलने लगा तब उस कन्याने दौड़कर उसका अंचल पकड़ लिया और बोली "आप मुझसे विवाह करके मुझे यहाँ अकेली छोड़कर कहाँ जा रहे हैं ? अब आपको आजन्म मेरा

आजम्मु जाम परिपालियाहि ।　　मा विसहरु जिह डंसेवि जाहि ।
ता णरवइं साणंदउ हसेवि ।　　सा लच्चिय सुंदरि विहसिएवि ।
हउं जाउं घरइं तुह णिलइं संतु ।　　आएसमि दिणि दिणि णिसि तुरंतु ।
ता ताए भणिउ को तुहुं पयासि ।　　हउं महइसिवालु गुणरयणरासि ।
गउ घरि णिउ एत्तहि मायराए ।　　वाहाविय मंडवि आउरीए ।
पुणु जंपिउ कहि गय णिक्कलेवि ।　　केरिसु तहे तायहो वयणु देवि ।
इय जंपिवि जोयहुं चलिय जाम ।　　दिट्ठिय स मसाणि वइट्ठ ताम ।
पुच्छिय दीसहि परिणियहि छाय ।　　वर-वत्थ-मउड कंकण-कराय ।
तें भणिउ माए पिंडारएण ।　　आवेप्पिणु परिणिय एत्थु तेण ।
ता जंपइ पेक्खहु चरिउ एहिं ।　　महो सयणवग्ग दूसणु थवेहिं ।
करि विहि जणीहि मणिणउ विवाहु ।　　कारावमि लोयहु भोयलाहु ।
गय मंडवहुंतिय णिक्कलेवि ।　　अप्पउ पिंडारहं अप्पवेवि ।
जसु तणउ कम्मु जारिसु फुरंतु ।　　अवतरिहइ तहु तारिसु भवंतु ।
इम वयणहिं रंजिउ सयलु लोउ ।　　कवडेण पयारिउ तहि मि सोउ ।
पुणु वुत्त पुत्ति एहि भणहिं कंतु ।　　आएइ तुहारइ घरे तुरंतु ।

घत्ता—*एत्थंतरि रायइं मणि अणुरायइं लेविणु वत्थाहरणु तहिं ।*
आयउ सइं संझहि खलहं दुगेज्झइं मंदिरे अच्छइ मज्ज जहिं ॥ ३ ॥

पालन-पोषण करना होगा । सर्पके समान डसकर आप मेरे पाससे अन्यत्र नहीं जा सकते ।" राजाने युवतीके ये वचन सुनकर आनन्द पूर्वक हँसकर कहा "हे सुन्दरि, अभी मैं अपने घर जाता हूँ । मैं प्रतिदिन रात्रिको तुम्हारे घर आया करूँगा ।" युवतीने यह सुनकर कहा "आप मुझे यह तो प्रकट करके बतला दीजिए कि आप कौन हैं ?" राजाने कहा "हे गुण रूपी रत्नोंकी राशि ! मैं महिषीपाल हूँ ।" इतना कहकर राजा अपने घर चला गया । इधर माताने अपने घर बड़ी आतुरताके साथ मण्डपमें अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया । फिर तिलक-मतीके वहाँ न दिखाई देनेका बहाना कर कहने लगी "यह बालिका घरसे निकलकर कहाँ चली गई ? अपने बापकी इसने कैसी अपकीर्ति की ?" ऐसा कहते हुए वह उसे ढूँढ़नेके बहाने चली । श्मशानमें पहुँचकर उसने तिलकमतीको वहाँ बैठे देखा । उसने कन्यासे पूछा "तेरी छवि विवा-हित स्त्री जैसी दिखाई देती है, अच्छे वस्त्र, मुकुट और हाथमें कंकन विवाहके चिह्न हैं ।" तब कन्याने कहा "हे माता ! एक पिंडार (ग्वाल) ने आकर यहाँ मुझसे विवाह कर लिया है ।" यह सुनकर सेठानी बोली "देखो तो इस कन्याका चरित्र ? परिवारके सब स्वजन बन्धु मुझे ही दोष देते हैं । मैंने तो यह विचार किया था कि दोनों पुत्रियोंका निश्चित किये हुए वरोंके साथ विवाह कराकर लोगोंको जीमनवार कराऊँगी । किन्तु यह स्त्री मेरे मण्डपमेंसे निकल गई और एक पिंडारको उसने आत्मसमर्पण कर दिया । अब मैं क्या करूँ ? जिसका जैसा कर्म उदयमें आता है वैसा ही उसे फल भोगना पड़ता है ।" इस प्रकारके वचनों द्वारा समस्त लोगोंका सन्तोष करके उसने कपट शोक प्रकट किया ! फिर उससे बोली 'हे पुत्रि, जो हुआ सो हुआ, अब अपने प्रिय पतिसे तू यह कह कि वह तुम्हारे घर तुरन्त आकर रहने लगे ।' इसी बीच राजा अपने मनमें उस कन्यासे अनुरक्त होकर वस्त्राभरण लेकर सन्ध्याकालमें उस भवनमें आया जहाँ वह कन्या रहती थी और जहाँ खल पुरुषोंका कोई प्रवेश नहीं था ॥ ३ ॥

४

पइ पिक्खिवि उट्ठिय तहिं सराय । गुरुभत्तिए केसहिं लुहिय पाय ।
पुणु देविणु आसणु धाविआए । उवविट्ठ णियडु अणुराइयाए ।
एत्थंतरे रायइं देवि वत्थ । आहरण विलेवण बहु पयत्थ ।
दिण्णउ कंचुल्लिउ मणिमयाउ । सुतेउ थणाहं उज्जोइयाउ ।
मणिमउ सिरि मउडु सुतार हार । सोहंति विविह रयणेहिं फार ।
अण्ण वि कंकण मणि-खंचियाय । ढोइय दत्तेण सुहार णाय ।
इय सयलु समप्पिवि गयउ जाम । पच्छा जणेण सा दिट्ठ ताम ।
पुणु लोयहिं जाइवि कहिउ ताहे । विउमायहे दुट्ठसहावयाहे ।
तामाइय कोवइं कंपमाण । पेक्खेप्पिणु भासइ तहे समाण ।
हे भग्गि णिलक्खणि तुहुं हयासि । किं चोरइं परिणिय एत्थु दासि ।
णिवभूसणाइं एउ होंहिं अण्ण । चोरेप्पिणु केण वि तुज्झ दिण्ण ।
माराविवाइ आयाइयाय । तुहुं कुलखउ करिवइं जाइ जाय ।
इम जंपिवि उयाएवि ते वि लेवि । गय घरहं चीरु तहिं खंडु देवि ।

घत्ता—*थिय णियघरु जाम वि जणभउ लाएवि बाहिरि कोवाउ करिवि ।*
अच्छइ मणि मुद्धिय संसए छुद्धिय कम्मु पुराणउ संभरिवि ॥ ४ ॥

५

एत्थंतरि दीवहं जाइ एवि । संपत्तु सेट्ठि णियमंदिरे वि ।

४

अपने पतिको आया देखकर अनुराग सहित तिलकमती उठी और बड़ी भक्ति सहित अपने केशोंसे पतिके चरणोंको पोंछा। फिर दौड़कर पतिके लिए आसन दिया और उनके निकट स्नेह सहित बैठ गई। तब राजाने उसे लाये हुए वस्त्र,आभरण,विलेपनादि बहुत प्रकारकी श्रृंगारकी सामग्री प्रदान की। उन्होंने उसे रत्नजटित चोलियाँ दीं जो अपने तेजसे स्तनोंको उद्योतमान करती थी। सिरके लिए एक मणिमय मुकुट और अच्छी लड़ियों वाले हार जो नाना प्रकारके रत्नोंसे शोभायमान थे,तथा अन्य मणियोंसे जड़े कंकन आदि अपनी प्रिय पत्नीको पहननेके लिए दिये। राजा ये सब वस्त्राभूषण देकर चला गया और पश्चात् यहाँ लोगोंने तिलकमतीको वे सब धारण किये हुए देखा। देखकर उन्होंने जाकर उसकी उस दुष्ट-स्वभाव विमातासे कहा। माताने स्वयं आकर उसे देखकर और कोपसे कंपायमान होते हुए उसे कहा—"अरी भगोड़ी,कुलक्षणा,हत्यारी,दासी! क्या तूने किसी चोरसे अपना विवाह किया है? ये जो आभूषण तू पहने हुए है वे और किसीके नहीं, स्वयं राजाके हैं और वहाँसे चुराकर किसीने तुझे दिये हैं। तू अपने बाप आदिको मरवाने,आतापित कराने तथा हमारे कुलका नाश करानेके लिए ही उत्पन्न हुई है।" ऐसा कहकर उस विमाताने उसके वे सब वस्त्राभूषण उतरवा कर ले लिये और उसे पुनः एक फटा पुराना चीरका टुकड़ा पहनाकर अपने निवासको चली गई। इधर तिलकमती लोगोंसे भयभीत हुई तथा बाहर कोपसे रुदन करती और मनमें मूढ़ भावसे शंकित और क्षुब्ध हुई अपने पूर्व कर्मोंका स्मरण करती हुई घरमें बैठ रही ॥ ४ ॥

५

यहाँ जब रत्नपुर नगरमें यह सब घटना हो रही थी तभी सेठ जिनदत्त द्वीपान्तर जाकर

ता दिट्ठु विवाह-परिक्कमो वि । परिदीसइ तहिँ मि ण सुण्णु को वि ।
ता दिट्ठिय पिय अमणोजियाइं । पुच्छिउ कारणु वज्जरिउ ताइं ।
संताविय हउं तुह जाइयाइं । सइं कियउ विवाहु उमाइयाइं ।
परिणिय चोरइं किं ईरिएण । कारणु ण मुणिज्जइ किं पि तेण ।
तिम जंपिवि दाविउ तेण सव्वु । आहरण-वत्थ-कंचुलिय-दव्वु ।
ता भीयए तण वियक्खणेण । दाविउ णरणाहहो तक्खणेण ।
विण्णाविउ देव ण मुणिमि कज्जु । देसंतरु जाइवि आउ अज्जु ।
तामग्गे घरि जायउ विवाहु । अण्णु वि संपत्तउ कणयलाहु ।
केण वि चोरेप्पिणु सुयहे दिण्णु । इउ तुम्हहं तणउ ण होइ अण्णु ।
ता राएं णिसुणिवि साहुवयणु । जंपइ सराउ पहसंतवयणु ।
लइ सयलु खमिउ मइं तुज्झ एउ । पर तुह सुअ चोरहं कहउ भेउ ।
जें परिणिय सो दावहि णिरुत्तु । ओलक्खिऊण पइं भणि तुरंतु ।
मोक्कल्लिउ ता वणि गउ घरम्मि । पुच्छिय सुअ णेविणु विजणम्मि ।
ओलक्खहि परिणिय जेण पुत्ति । पइं सइं परिणाविउ कय अजुत्ति ।
सा पभणइ णिच्छउ मुणमि ताय । ओलक्खमि णियमइं तासु पाय ।

और वहाँ से लौटकर अपने घर आया। आते ही उसने वह सब विवाहका उपक्रम तो देखा, किन्तु विवाहके आगे पीछे भी जो स्वजन परिजनोंकी भीड़भाड़ रहा करती है वह उसे कुछ दिखाई नहीं दिया ; सब सूना पड़ा था। उसने जाकर अपनी प्रिय पत्नीको देखा जो बिना किसी शृंगारके उदास बैठी हुई थी। सेठने इस उदासीका कारण पूछा। तब सेठानी बोली—"तुम्हारी इस पुत्रीसे मैं बहुत संतप्त हुई हूँ। इसने उन्मादमें आकर अपना विवाह स्वयं कर लिया है। मैं आपसे क्या कहूँ ? इसने अपना विवाह किसी चोरसे किया है। इसका कोई कारण मेरी समझमें नहीं आता।" ऐसा कहकर सेठानीने अपने पतिको ये आभरण, वस्त्र, कंचुकी आदि समस्त मूल्यवान् वस्तुएँ दिखाईं। उन्हें देखकर सेठ भी स्वयं भयभीत हो उठा। वह तो चतुर था, अतः उसने उसी समय वे सब वस्तुएँ ले जाकर राजाको दिखलाईं। सेठने राजासे कहा—"हे देव, मुझे यहाँका सब कार्य कुछ भी ज्ञात नहीं है। मैं तो देशान्तर जाकर आज ही वापिस आया हूँ। मेरे आनेसे पूर्व ही इधर मेरे घरमें मेरी पुत्रियोंका विवाह हो गया है, और यह एक नया सुवर्ण-लाभ हुआ है। किसी चोरने चुराकर ये सब वस्त्राभूषण मेरी कन्याको दिये हैं। किन्तु ये सब वस्तुएँ तो आपकी ही हैं ; वे और किसीकी नहीं हो सकतीं।"

राजाने जिनदत्त सेठके ये वचन सुनकर प्रेमसे हँसमुख होते हुए कहा—"देखो सेठ, यह सब तुम्हारा अपराध तो मैं क्षमा करता हूँ; किन्तु तुम्हारी पुत्रीको उस चोरका भेद बतलाना पड़ेगा। जिसने उससे विवाह किया है उसे निश्चयसे मुझे दिखलाओ। अच्छी तरह यह सब देख भाल कर तुम शीघ्र मुझे सूचना दो।"

इस प्रकार राजाके पाससे मुक्ति पाकर सेठ अपने घर गया। सेठने अपनी उस पुत्रीको एकान्तमें लेजाकर उससे पूछा—"हे पुत्रि, तुमने अयोग्य रीतिसे जिसके साथ स्वयं अपना विवाह कर लिया है उस पुरुषको मुझे बतलाओ।" अपने पिताके ये वचन सुनकर कन्याने कहा—"हे तात, मैं निश्चयसे तो अपने पतिको उसके चरणोंका स्पर्श करके ही पहचान सकती हूँ, क्योंकि मैं नियमसे उसके चरणोंका ही स्पर्श करती रही हूँ।" अपनी पुत्रीकी इस बातको

ता णउ भणिए इय वयणुत्ति लेवि । उवइट्ठु असेसु वि णिव कहेवि ।
ता राएं वुत्तु विवाह-भोज्जु । दुह गेहि करेसमि हउं मि अज्जु ।
तेमइं चोरहु उवलंभु करहु । परिणिय अदिण्ण सुअ सो जि धरहु ।

घत्ता—ता सेट्ठिहे घरि संजोउ किउ संपत्तु राउ परिमिय-सहइ ।
उवइट्ठ कमेण वि सहु जणहिं तहिं मि भोज्जु सयल वि कहइ ॥ ५ ॥

६

आणहि सुय णयणइं झंपऊण । जिम कहइ चोरु ओलक्खिऊण ।
ता आणिय वणिणा वुत्त सा वि । ओलक्खहि जें तुहुं परिणिया वि ।
सा भणइ धुआवहु मइं मि पाय । णिसि दिट्ठउ ओलक्खमि ण ताय ।
ता ताएं पाय धुआविया य । धोवंति संति तहिं आविया य ।
णिव-पायहं कर छुडु लग्ग जाम । ओलक्खिउ तायहि कहिउ ताम ।
इहु चोरु वि जें हउं परिणियाय । णउ अण्णु होइ इम जंपियाय ।
एत्थंतरि णिवें साणंदएण । णीसेसु कहिउ विचंतु तेण ।
तहिं सयलहं मणि आणंदु जाउ । अइपुण्णवंति पिउ लद्धु राउ ।
एत्थंतरि पुणरवि किउ विवाहु । सहु सयणहिं णिउ घरु जिणवराहु ।

लेकर सेठ पुनः राजाके पास गया और जो कुछ उसने अपनी पुत्रीसे सुना था वह सब राजाको कह सुनाया। तब सेठकी बात सुनकर राजाने कहा—"अच्छा, मैं आज ही अपनी ओरसे तुम्हारे घर पर विवाहके भोजका आयोजन करूँगा। उसी भोजमें उस चोरको पहिचान लेना, और जिसने तुम्हारी पुत्रीको बिना कन्यादानके विवाह लिया है उसे पकड़ लेना।"

इस प्रकार कहकर राजाने सेठके घर भोजकी तैयारी कराई। स्वयं राजा अपनी सभाके कुछ गिने चुने सभ्योंके साथ वहाँ पहुँचे। सब अभ्यागत मिलजुल कर सेठके घरमें बैठे। सब लोग वहाँ होनेवाले कौतुककी ही चर्चा कर रहे थे ॥ ५ ॥

६

राजाने आज्ञा दी कि सेठकी वह कन्या आँखें ढँककर वहाँ लाई जाय, जिससे कि वह उस चोरका पता लगा सके। सेठ अपनी कन्याको वहाँ ले आया और उससे कहा—"हे पुत्रि, अब तू उस पुरुषकी पहिचान कर जिसने तुझसे विवाह किया है।" कन्याने कहा—"हे तात, मैं तो अभ्यागतोंके पैर धुलाकर ही उनमेंसे अपने पतिको पहिचान सकूँगी, क्योंकि रात्रिमें ही उनके दर्शन होनेसे मैं उनकी मुखाकृतिसे भलीभाँति परिचित नहीं हूँ।" तब सेठने अभ्यागतोंके पैर धुलवानेका आयोजन किया। कन्या अपने हाथोंसे प्रत्येक अतिथिके पैर धुलाती जाती थी और वे यथा स्थान बैठते जाते थे। राजाकी भी बारी आई। राजाके पैरोंका कर-स्पर्श होते ही कन्याने अपने पतिको पहिचान लिया और पितासे कह दिया—"हे पिता, यही वह चोर है जिसने मुझसे विवाह किया है, अन्य कोई नहीं।" कन्याके ऐसा कहने पर राजाने आनन्दित होकर वह सब वृत्तान्त वर्णन करके सुना दिया। उस वृत्तान्तको सुनकर सबके मनमें आनन्द हुआ और वे सब कहने लगे—"यह कन्या बड़ी पुण्यवान् है जिसने स्वयं राजाको अपना पति पाया।"

इस वृत्तान्तके पश्चात् कन्या तिलकमतीका राजा कनकप्रभके साथ पुनः विधिवत् विवाह

जिणु वंदिवि तहिं उवइट्ठ जाम । पुणु तिलयमइए संदिट्ठु ताम ।
पुच्छिउ परमेसर पइ णिएवि । महु णेहु काइं वड्ढइ सुणेवि ।
ता मुणिणा कहिउ असेसु कज्जु । जिह भमिय भवंतर भुत्त रज्जु ।
जिह कयइ सुअंध मणोहरो वि । एत्थंतरे आयउ देउ को वि ।
तेण वि पणवेप्पिणु पुणु मुणिंदु । पुणु तहे तियहे चरणारविंदु ।
पभणिउ सामिणि महं तुअ पसाउ । वउ चरिउ तेण हुउ अमरराउ ।
इय जंपिवि भूसणु वत्थ देवि । गउ दिव्वहि पुणु पुणु थुइ करेवि ।

घत्ता—*सा गेहिणि हुअ तहु णरवइहो जिम रइ कामहो पाणपिय ।*
अग्गेसरि सयलंतेउरहो विविह भोय भुंजंति थिय ॥ ६ ॥

७

सा सूहव सयलंतेउरहो । सा मणहर सयलहो परियणहो ।
सा सुमहुरवाणिय हंसगई । सा पीणपओहरि सुद्धसई ।
सा आसाऊरिया दुत्थियाहँ । सा भूरुह दीणहं पंथियाहँ ।

किया गया । विवाहके पश्चात् वर-कन्या जिन-मन्दिरमें लाये गये । वहाँ जिन भगवान्की वन्दना करके वे यथास्थान बैठ गये । वहाँ एक मुनिराज भी विराजमान थे । तिलकमतीने उन मुनिराजके दर्शन करके उनसे पूछा- -"हे, परम मुनीश्वर, यह बतलाइए कि अपने पतिके प्रथम दर्शन मात्रसे मेरा उनके ऊपर इतना प्रेम क्यों उत्पन्न हुआ ।" यह सुनकर मुनिराजने समस्त वृत्तान्त कहा जिस प्रकार कि उसने अपने पूर्व भवमें राज्यका उपभोग करके भवान्तरोंमें दुःख पाते हुए भ्रमण किया था और जिस प्रकार कि अन्तमें उसका शरीर पुनः सुगन्धयुक्त और मनोहर हुआ ।

जब मुनिराज उस सुगन्धा कन्याके पूर्व भवोंका वृत्तान्त कह रहे थे, तभी वहाँ एक देव आ पहुँचा । उसने मुनिराजको प्रणाम करके उस कन्याके भी चरणकमलोंमें अपना मस्तक नवाया । फिर वह देव बोला—"हे स्वामिनि, मैंने भी तुम्हारे प्रसादसे उसी सुगन्ध दशमी व्रतका पालन किया था और उसीके प्रभावसे मुझे यह अमरेन्द्र पद प्राप्त हुआ है ।" इतना कहकर और तिलकमतीको भूषण,वस्त्र देकर एवं पुनः पुनः स्तुति करता हुआ वह देव वहाँसे चला गया । इस प्रकार तिलकमती राजा कनकप्रभकी उसी प्रकार प्राणप्रिया गृहिणी हो गई जिस प्रकार रति कामदेवकी प्राणप्रिया हुई । वह राजाके समस्त अन्तःपुरकी प्रधान पटरानी बनकर नाना प्रकारके सुखोंका उपभोग करती हुई रहने लगी ।

७

अब तिलकमती ही समस्त अन्तःपुरकी सौभाग्यवती सुन्दरी थी । वह समस्त सेवकों व परिजनोंके मनको आकर्षित करती थी । उसीकी वाणी सबसे अधिक मधुर और उसीकी गति हंसके समान सुन्दर समझी जाती थी । वही सबसे अधिक रूपवती और शुद्ध सती मानी जाने लगी । वह दुखी दरिद्री जनोंकी आशाओं और प्रार्थनाओंको पूरा करती थी व दीन लोगोंको उसी प्रकार आश्रय प्रदान करती थी जैसे वृक्ष पथिकोंको शीतल छाया देकर सन्तुष्ट करता है ।

सा पुण्णवंति बहु आयरीय । सा तियपहाण सयलहँ धरीय ।
सा दुक्खअदुक्खियणह वरीय । गुरु लच्छिय णियपियआयरीय ।
सा चउविहु-दाणु-पयासयारि । सा जिणवरधम्मुज्जोयकारि ।
सा रोय-सोय-णिण्णासयरि । सा समयरयाण महाण सरि ।
सा पुत्त-पउत्तइं णत्तियाइँ । देक्खवि दोहित्तइं पोत्तियाइँ ।
वर सयणहं णेत्तहं तरयमाणु । जुउ जुव्वणु होतउ बलु पराणु ।
जें ववसिय दहमि सुअंधएण । इह दुक्खु ण देक्खइ एक्कु तेण ।
इम रज्जु करेवि असंखु कालु । जाणेप्पिणु पुणु अवसाण-कालु ।
चउविहु आराहणु भाविऊण । सण्णासें मुअ जिणु झाइऊण ।

घत्ता—*ईसाणविमाणे सुहहो णिहाणे उप्पण्णिय सुरवरु हवेवि ।*
तियलिंगु हणेप्पिणु कम्मु दहेप्पिणु जिणसुपासचरणइं णवेवि ॥ ७ ॥

८

अहो सेणिय जीवहो वउ दुलंभु । वयएण वि पुणु सयलु वि सुलंभु ।
सा वयहं पहावें अमरराउ । हुअ मणि-आहरणहिं जुत्तकाउ ।

उस पुण्यवतीका सब कोई बड़ा आदर करते थे और सभी उसे स्त्रियोंमें एक प्रधान रत्न रूप मानते थे। वह नाना क्लेशोंसे दुखी जनोंके लिए महान् लक्ष्मी देवीके समान थी और उसके पति भी उसका उसी प्रकार आदर-सम्मान करते थे। वह आहार, औषधि, अभय और शास्त्र इन चारों प्रकारके दानका खूब प्रचार करती तथा जैन धर्मकी प्रभावना बढ़ाती थी। जनतामें यदि कोई रोग या शोक फैल जाता तो वह तुरंत उसके निवारणका उपाय करती। धर्मानुरागी स्त्री-पुरुषोंके लिए तो वह एक महान् सरिताके समान उपकारी थी। उसने खूब दीर्घायु पायी जिससे कि उसे अपने पुत्र और पौत्र और नातियोंको तथा दौहित्र और प्रपौत्रोंको देखनेका सुख मिला। वह अपने स्वजनोंके नेत्रोंकी तारिका (पुतली) के समान रहती हुई यौवनसे निकलकर वृद्धावस्थामें प्रविष्ट हुई। तथापि उसने जो सुगन्ध दशमी व्रतका परिपालन किया था उसके प्रभावसे उसे फिर कोई एक भी दुख देखने मात्रको भी नहीं मिला।

इस प्रकार उसने चिरकाल तक राज्यके सुखका उपभोग किया। तत्पश्चात् अपनी आयु पूर्ण होती हुई जानकर उसने दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप यह चार प्रकार आराधनाकी भावना प्रारम्भ कर दी और जिनेन्द्र भगवान्का ध्यान करते हुए संन्यास पूर्वक उसने अपने प्राणोंका परित्याग किया। इस समस्त धर्माचरणके फलस्वरूप भगवान् सुपार्श्वनाथके चरणोंकी वन्दना करते हुए उसने अपने स्त्री लिंगका छेदन कर दिया और अपने दुष्कर्मोंका भी नाश कर डाला जिससे वह समस्त सुखोंके निधान ईशान स्वर्गके विमानमें उत्तम देव हुई ॥ ७ ॥

८

भगवान् महावीर राजा श्रेणिकसे कहते हैं—"हे श्रेणिक, इस जीवके लिए धार्मिक व्रत ही धारण करना बड़ा दुर्लभ है। किन्तु जहाँ एक बार जीवको व्रत धारण करनेका सुअवसर मिल गया, तहाँ फिर उसके लिए सकल पदार्थ सुलभ हो जाते हैं। देखो वह दुर्गन्धा व्रतके प्रभावसे कैसी सुगन्धा हो गई और उसका शरीर मणिमयी आभरणोंसे अलंकृत हो गया। इस

दहमिहि फलेण तहे अवहिणाणु । किंकिणि-कणंतु मणहरु विमाणु ।
दहमिहि फलेण कोडिच्छरेहिं । सेविज्जइ सत्तावीसएहिं ।
दहमिहि फलेण हुइ सायराउ । देवंग-वत्थ-भूसियउ काउ ।
दहमिहि फलेण सेविय सुरेहिं । विज्जिज्जइ धवलहिं चामरेहिं ।
दहमिहि फलेण वरु आयवत्तु । अइरावइ मणहरु गुलुगुलंतु ।
दहमिहि फलेण सयलहं पहाणु । पडिखलियइ कहिं मि ण तासु माणु ।
दहमिहि फलेण वरकंतिकाउ । णिय-तेओहामिय-गहपहाणु ।
अण्णु वि किं बहुअइं वण्णिएण । को वि सरिसु ण पुज्जइ भुवणि तेण ।
अण्णु वि जं दुलहउ जयहं सारु । तं तसु संपज्जइ बहुपयारु ।

घत्ता—तहिं तिहुअण-सारउ मयण-वियारउ जिणु सुपासु वंदइ अमरु ।
तहिं परभवि होसइ कम्मु डहेसइ सिद्धि-वरंगण-तणउ वरु ॥ ८ ॥

९

जा इह दहमि करइ तिय अह णरु । सो अचिरेण होइ सुरु मणहरु ।
जो वाचइ सुद्धक्खर भावइं । सो जि महंतु पुण्णफलु पावइ ।
जो वक्खाणइ गुरुअणुरायइं । सो मुच्चइ पुव्वकिय-पावइं ।
जो णिसुणइ मणि उवसम-भावइं । तासु देहु णाउ लिप्पइ आवइं ।

सुगन्ध दशमी व्रतके फलसे उसे अवधिज्ञान हुआ और किंकिणी-पंक्तियोंकी कलध्वनिसे युक्त मनोहर स्वर्ग विमान भी मिला। इस सुगन्ध दशमी व्रतके फलसे सत्ताईस कोटीश्वरोंकी सेवाका सुख भी मिलता है। दशमीके फलसे यह शरीर देवांग वस्त्रोंसे विभूषित होता है। दशमीके फलसे देव सेवा करते हैं और धवल चँवर ऊपर ढोले जाते हैं। दशमीके फलसे श्रेष्ठ आतपत्र (छत्र) प्राप्त होता है व मनोहर गुडगुडाते हुए ऐरावत हाथीपर आरूढ़ होनेका सुख मिलता है। दशमीके फलसे सबके बीच प्रधानता प्राप्त होती है और कहीं भी उसका मानभंग नहीं होता। दशमीके फलसे ही ऐसी उत्तम शरीर-कान्ति मिलती है कि उसके तेजके आगे चन्द्रमाकी कान्ति भी फीकी पड़ जाय। अन्य बहुत विस्तारसे वर्णन करनेकी क्या आवश्यकता है? संक्षेपमें इतना ही कहना पर्याप्त है कि सुगन्ध दशमी व्रतके पालन करनेवालेके समान अन्य किसी मनुष्यका संसारमें आदर-सत्कार नहीं होता। अन्य जो कुछ भी इस जगत्‌के सारभूत पदार्थ हैं वे सभी नाना प्रकारके व्रतधारीको प्राप्त हो जाते हैं।

ईशान विमानमें भी वह सुगन्धाका जीव देव होकर त्रिभुवनमें सारभूत, कामदेवका निवारण करनेवाले जिन भगवान् सुपार्श्वनाथकी वन्दना करना नहीं भूलता था। अगले भवमें वह देव मनुष्य योनिमें आकर और अपने शेष समस्त घाति अघाति कर्मोंको संयम और तपके द्वारा भस्मसात् करके सिद्धि रूपी वरांगनाका पति अर्थात् मोक्षगामी होगा ॥ ८ ॥

९

जो कोई स्त्री या पुरुष इस सुगन्ध दशमी व्रतका पालन करता है वह शीघ्र ही मनोहर देवके पदको प्राप्त हो जाता है। जो कोई इस सुगन्ध दशमी व्रतकी कथाका भावना सहित शुद्ध पाठ करता है वह भी महान् पुण्यके फलको पाता है। जो खूब धर्मानुराग सहित इस कथाका व्याख्यान करता है उसे अपने पूर्वकृत पाप कर्मोंसे मुक्ति मिलती है। जो इसे शान्त भावसे

जो पुणु सद्दहेइ णिसुणेप्पिणु । अहिउ पुण्णु तहो भासइ जिणु पुणु ।
जा पुणु जाणइ एह कहाणिय । सा तिय होइवि महियलि राणिय ।
इय सुअदिक्खहि कहिय सवित्थर । मइं गाविवि सुणाइय मणहर ।
णिय कुलणह-उज्जोइय-चंदइं । सज्जण-मण-कय-णयणाणंदइं ।
भवियण-कण्णाण-मणहर-भासइं । जसहर-णायकुमारहो वायइं ।
बुहयण-सुयणहं विणउ करंतइं । अइसुसील-देमइयहि कंतइं ।
एमहिं पुणु वि सुपास जिणेसर । करि कम्मक्खउ महु परमेसर ।

घत्ता—*जहिं कोहु ण लोहु सुहि ण विरोहु जिउ जर-मरण-विवज्जिउ ।*
ण हि हरिसु विसाउ पुण्णु ण पाउ तहिं णिवासु महु दिज्जउ ।

इय सुअंधदहमीकहाए बीओ संधी परिच्छेओ समत्तो ॥ २ ॥

सुनता है उसके शरीरको कभी कोई आपत्ति नहीं व्यापती । जो कोई इसे सुनकर उसपर श्रद्धान करता है उसको जिन भगवान्‌ने विशेष पुण्यकी प्राप्तिका फल कहा है । जो स्त्री इस कथानकको भले प्रकार सीख लेती है उसे इस जगत्‌में रानी होनेका सुख मिलता है ।

इस कथानकको श्रुतदर्शी शास्त्रकारोंने विस्तारसे वर्णन किया है । मैंने उसीके अनुसार संक्षेपमें इसे मनोहर रीतिसे गाकर सुनाया है । इस मनोहर गीति काव्यके रचयिता हैं अपने कुल रूपी नभको उद्योतित करनेवाले चन्द्र जिन्होंने सज्जनोंके मन और नेत्रोंको आनन्दित किया है, भव्यजनोंके कण्ठाभरण रूप मनोहर भाषामें यशोधर और नागकुमारके चरित्रोंको बाँचकर सुनानेवाले, विद्वानों और सज्जनोंका विनय करनेवाले तथा अतीव शीलवती देवती नामक भार्याके पति (श्री उदयचन्द्र जी) । वे प्रार्थना करते हैं कि हे सुपार्श्व जिनेश्वर, मेरे कर्मोंके क्षय करनेमें सहायक होवें और जहाँ न क्रोध है, न लोभ है, जहाँ न मित्र है और न शत्रु है, जहाँ जीव जरा और मरणसे रहित है, जहाँ हर्ष-विषाद तथा पुण्य व पाप कुछ भी नहीं है, वहाँ ही मुझे निवास अर्थात् मोक्ष प्रदान करें ।

इति सुगन्धदशमीकथा द्वितीय संधि ।

सुगन्धदशमीकथा

[संस्कृत]

सुगन्धदशमीकथा

पादाम्भोजान्यहं नत्वा श्रीपदं परमेष्ठिनाम् ।
शृण्वन्तु साधवो वक्ष्ये सुगन्धदशमी-कथाम् ॥ १ ॥
गुरूणामुपरोधेन श्रीविद्यानन्दिनामिदम् ।
सरस्वत्याः प्रसादेन रच्यते श्रुतसागरैः ॥ २ ॥
अथ प्रणम्य भूपालः श्रेणिकः सन्मतिं प्रभुम् ।
गोतमं पृच्छति स्मेदं भक्त्यावनत-मस्तकः ॥ ३ ॥
अकारण-जगद्बन्धो भव्याब्जवनभास्कर ।
श्रुताम्बुधि-महापोत विमुक्तिपदनायक ॥ ४ ॥
अहो आखण्डलैश्वर्यवर्य श्रीगोतम प्रभो ।
प्रज्ञापारमितानेनः केन व्रतमिदं कृतम् ॥ ५ ॥
कथं वा क्रियते किं वा फलमस्य महामते ।
भगवन् श्रोतुमिच्छामि कृपाजलनिधे वद ॥ ६ ॥
शृणु भो मगधाधीश सुगन्धदशमी-व्रतम् ।
साधु पृष्टं त्वया धीमन् कथयामि यथायथम् ॥ ७ ॥
इदं श्रवणमात्रेण अनन्तभवपातकम् ।
छिनत्ति च कृतं भक्त्या भुक्ति-मुक्तिफलप्रदम् ॥ ८ ॥

हिन्दी अनुवाद

पंच परमेष्ठीके चरण-कमल रूप लक्ष्मीके निवासको नमस्कार करके मैं सुगन्धदशमी कथाको कहता हूँ । साधुजन इसे सुनें । यह कथा श्री विद्यानन्दि गुरुके आदेशसे तथा सरस्वती-के प्रसादसे श्रुतसागर नामक आचार्य द्वारा रची जाती है ॥ १–२ ॥

अथ सन्मति प्रभु अर्थात् भगवान् महावीर स्वामीको प्रणाम करके राजा श्रेणिकने भक्ति-पूर्वक नतमस्तक होकर गोतम गणधरसे पूछा—हे अकारण जगद्बन्धु, भव्यजन रूपी कमलोंके वनको सूर्यके समान प्रफुल्लित करनेवाले, शास्त्र रूपी समुद्रको पार करनेके लिए महापोत, मोक्ष-पदको ले जानेवाले नायक, इन्द्रके समान उत्तम ऐश्वर्यके धारक, प्रज्ञाके पारगामी विद्वान् , पापहीन, श्री गोतम प्रभु ! मेरी यह सुननेकी इच्छा है कि इस सुगन्धदशमी व्रतको किसने पालन किया, यह व्रत कैसे किया जाता है और इस व्रतका फल क्या है ? हे महामति कृपासागर, यह सब मुझे बतलाइए ॥ ३–६ ॥

राजा श्रेणिकके इस प्रश्नको सुनकर गोतम स्वामी बोले—हे विद्वान् मगधनरेश, तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया । अतः मैं तुम्हें सुगन्धदशमी व्रतका समस्त विवरण सुनाता हूँ । तुम ध्यान पूर्वक सुनो ॥ ७ ॥

इस सुगन्धदशमी कथाके सुनने मात्रसे ही अनन्त भवोंके पाप कट जाते हैं और इस व्रतके भक्तिपूर्वक पालन करनेसे संसारके भोग तथा अनुक्रमसे मोक्ष फलकी प्राप्ति होती है ॥८॥

प्रशस्तवस्तुसङ्कीर्णे द्वीपे जम्बूद्रुमाङ्किते ।
जिनजन्मादिभिः क्षेत्रे पवित्रे भारताभिधे ॥ ९ ॥
निवेशे सम्पदां देशे काश्यां त्रिभुवनश्रुते ।
वरे वाराणसीनाम्नि पत्तने तु चिरन्तने ॥ १० ॥
बभूव भूपतिर्नाम पद्मनाभोऽमितप्रभः ।
श्रीमतीललनानेत्रनीलवाब्जैन्मचन्द्रमाः ॥ ११ ॥
आन्वीक्षिकीं त्रयी वार्ता दण्डनीतिसमाह्वयाः ।
चतस्रो वेत्ति यो विद्याः सम्यगाप्तसमन्वयाः ॥ १२ ॥
सन्धिं च विग्रहं यानमासनं संश्रयं तथा ।
द्वैधीभावं गुणानेष वेत्ति षट्पाटवं स्फुटम् ॥ १३ ॥
त्रिवर्गं च क्षयस्थानवृद्धिसंज्ञमनुत्तरम् ।
वाग्मनोदैवसिद्धीनां स जानीते समाश्रयम् ॥ १४ ॥
चयं चोपचयं मिश्रमितीदृगुदयत्रयम् ।
बिभर्ति विजितारातिः [illegible] ॥ १५ ॥
काम-क्रोध-महामान-लोभ-हर्षमदाह्वयान् ।
स जिगायारिषड्वर्गानन्तरङ्गसमुद्भवान् ॥ १६ ॥
प्रभुजा मन्त्रजोत्साहसम्भवाः शक्तयः प्रभोः ।
तस्य स्फुरन्ति तिस्रोऽपि श्रावकान्वयजन्मनः ॥ १७ ॥
स्वाम्यमात्य-सुहृत्कोश-देश-दुर्गबलाश्रितम् ।
राज्यमित्येव सप्ताङ्गमाप्तवान् जिनभाषितम् ॥ १८ ॥

समस्त उत्तम वस्तुओंसे परिपूर्ण जम्बू वृक्षसे अंकित इस जम्बू द्वीपमें भारत नामक क्षेत्र है जो कि तीर्थंङ्करोंके जन्म आदि कल्याणकोंसे पवित्र हुआ है । इस भारत क्षेत्रमें काशी नामका प्रदेश है जो सम्पत्तिका निधान और त्रिभुवनमें विख्यात है । इस काशी नामके उत्तम देशमें वाराणसी नामकी प्राचीन नगरी है । इस नगरीमें एक समय अपार प्रतिभावान् पद्मनाभ नामका राजा हुआ जो अपनी श्रीमती नामकी रानीके नेत्ररूपी नील कमलोंको चन्द्रके समान प्रसन्न करनेवाला था ॥ ९–११ ॥

यह राजा आन्वीक्षिकी (विज्ञान), त्रयी (वेद), वार्ता (अर्थशास्त्र) और दण्डनीति (राजनीति) इन चारों विद्याओंको भले प्रकार समन्वय रूपसे जानता था । वह सन्धि (मेल करना), विग्रह (लड़ाई करना), यान (आक्रमण करना), आसन (घेरा डाल बैठना), संश्रय (अन्य राजाका आश्रय लेना) तथा द्वैधीभाव (फूट डालना) इन राजनीतिके छह गुणोंको भी स्पष्ट रीतिसे जानता था । वह त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और कामरूप पुरुषार्थोंके स्वरूपको तथा क्षय, स्थान और वृद्धि नामक व्यवस्थाओंको असाधारण रीतिसे जानता था । वह यह भी जानता था कि वचन, मन और दैव रूप सिद्धियोंमें कैसे सामञ्जस्य बैठाया जाय । चय, उपचय और मिश्र अर्थात् चयोपचय इन तीनों अभ्युदयोंको वह अपने शत्रुओंपर विजय और लोक कल्याण द्वारा निरन्तर साधा करता था । उसने काम, क्रोध, मान, लोभ, हर्ष और मद नामक छह अन्तरंग शत्रुओंको जीत लिया था । श्रावक कुलमें उत्पन्न उस राजाके प्रभुशक्ति, मन्त्रशक्ति और उत्साहशक्ति ये तीनों राजशक्तियाँ स्फुरायमान थीं । जिन भगवान्ने जो स्वामी, अमात्य,

सहायं साधनोपायं देशं कोशं बलाबलम् ।
विपत्तेश्च प्रतीकारं पञ्चाङ्गं मन्त्रमाश्रयत् ॥ १९ ॥
सामदानं च भेदं च दण्डमुद्दण्डमण्डनम् ।
यथायोग्यं यथाकालं वैरयुपाय-चतुष्टयम् ॥ २० ॥
वाग्दण्डयोः स पारुष्यं त्यक्तवानर्थदूषणम् ।
पान-स्त्री-मृगया-द्यूतमिति व्यसनसप्तकम् ॥ २१ ॥
स एकदा तया सार्धं मधुक्रीडामना वनम् ।
यानपश्यत्पुरोद्वारे मुनिं मासोपवासिनम् ॥ २२ ॥
भोजयर्षिमिमं देवि भणित्वा श्रीमतीमिति ।
तद्भुक्त्यै प्रेषयामास स्वयं च गतवान् वनम् ॥ २३ ॥
भोगान्तरायकृत्पापः कुत एष समागतः ।
इति ध्यात्वा नृपाद् भीता तं नीत्वा सागता गृहम् ॥ २४ ॥
इक्ष्वाकुमिश्रिताहारं ददौ तस्य महामुनेः ।
स योग्यमिति सञ्चिन्त्य भुक्त्वा यावद्वनं व्रजेत् ॥ २५ ॥
वेदना महती तावदङ्गेऽभूदस्य चाध्वनि ।
निपपात जनैर्नीतः कृच्छ्रतो जिनसद्मनि ॥ २६ ॥
तत्र तैर्भाक्तिकैरुक्तं हा हा चित्रमेदिनीपतेः ।
यस्य वल्लभया दूनः कदन्नेन महामुनिः ॥ २७ ॥

सुहृत् , कोश, देश, दुर्ग और बल ये राज्यके सात अंग बतलाये हैं उन्हें भी इस राजाने प्राप्त कर लिया था । सहाय, साधनोपाय,देशकाल-विभाग,कोश एवं बलाबल (?) तथा विपत्ति-प्रतीकार, ये जो मन्त्रसिद्धिके पाँच अंग बतलाये हैं उनका वह सदैव आश्रय लिया करता था । उद्दण्ड पुरुषोंके दमनार्थ जो साम, दान, भेद और दण्ड ये चार उपाय कहे गये हैं उन्हें भी वह राजा खूब जानता था । वाक् पारुष्य, दण्ड पारुष्य, अर्थदूषण, मद्यपान, वेश्यागमन, मृगया और द्यूतक्रीड़ा इन सात व्यसनोंको भी राजाने छोड़ दिया था ॥ ११–२१ ॥

एक दिन राजा पद्मनाभ अपनी श्रीमती रानीको साथ लेकर वसन्त-क्रीड़ाकी इच्छासे वनको जा रहे थे कि उन्हें नगरके द्वारपर ही एक मासोपवासी मुनिराजके दर्शन हुए । तत्काल उन्होंने श्रीमती रानीको आदेश दिया कि हे देवि, तुम लौटकर राजभवनको जाओ और मुनिराजको विधिपूर्वक आहार कराओ । रानीको इस प्रकार आदेश देकर राजा स्वयं वनको चले गये ॥ २२–२३ ॥

वन क्रीड़ामें इस अकस्मात् उत्पन्न हुए विघ्नसे रानीको बहुत बुरा लगा । वह मनमें विचारने लगी—मेरे भोगोंमें अन्तराय करनेवाला यह पापी कहाँसे आ गया । तथापि राजाके भयसे वह बिना कुछ कहे मुनिराजको साथ लेकर घरको लौट आई । उसने उन महामुनिको इक्ष्वाकु (कड़वी तुम्बी) मिश्रित आहार दिया । मुनिराजने उसे ही योग्य समझकर ग्रहण कर लिया और आहार करके वे वनकी ओर चल पड़े ॥ २४–२५ ॥

किन्तु मार्गमें ही मुनिराजके शरीरमें महान् वेदना उत्पन्न हो उठी । यहाँ तक कि वे शिथिल होकर भूमिपर गिर पड़े । लोग बड़े कष्टसे उन्हें जिन-मन्दिरमें लाये । भक्तजनोंमें

आगतोऽथ वनाद् राजा जनकोलाहल-श्रुतेः ।
विवेद दुरनुष्ठानं महिष्याः स्वस्य दुर्मतेः ॥ २८ ॥
उद्दाल्य भूषणान्याशु वचोवज्रेण ताडिता ।
अवध्याऽसि दुराचारे तेनागाराद्विहारिता ॥ २९ ॥
पूजितान्तःपुरेणापि मानभङ्गेन दुःखिता ।
सद्योऽपि कुष्ठिनी जाता आर्त्तध्यानेन सा मृता ॥ ३० ॥
महिषी महिषी जाता पापेन मृतमातृका ।
पल्वले कर्दमे मग्ना नग्नाटं पश्यति स्म सा ॥ ३१ ॥
तमेव वैरभावेन क्रुद्धा शृङ्गे विधुन्वती ।
मारितुं प्रसभं मग्ना मृताभूदथ गर्दभी ॥ ३२ ॥
पाश्चात्यपादघातेन स मुनिः पुनराहतः ।
व्रजन् चर्यामनार्याणां दुर्लभोऽपि च सध्वनि ॥ ३३ ॥
भूयोऽपि पापिनी मृत्वा बभूव पुरशूकरी ।
भक्षयन्ती विशं विश्वकद्रुभिश्चाप्युपद्रुता ॥ ३४ ॥
क्षुत्पिपासार्दिता मातृवर्जिता च पुनर्मृता ।
शंबरीभूय चाण्डाल्या दुष्टगर्भे पुनः स्थिता ॥ ३५ ॥

हाहाकार मच गया । वे कहने लगे—धिक्कार है इस पृथिवीपतिको जिसकी वल्लभा रानीने ऐसे महामुनिको कुत्सित अन्नका भोजन कराकर इस प्रकार पीड़ित किया ॥ २६–२७ ॥

इसी बीच लोगोंका कोलाहल सुनकर राजा वनसे लौट आये और उन्होंने अपनी दुर्बुद्धि रानीके कुकृत्यकी कथा सुनी । राजाको रानीपर बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ । उन्होंने तत्काल रानीके सब आभूषण उतरवा लिये, वज्र समान कठोर शब्दोंसे उसकी ताड़ना की और उसे यह कहकर घरसे निकाल दिया कि हे दुराचारिणी, स्त्री होनेके कारण तू अवध्य है, नहीं तो मैं तुझे इस घोर अपराधके लिए प्राणदण्ड देता ॥ २८–२९ ॥

जो रानी समस्त अन्तःपुरमें पूजी जाती थी उसे स्वभावतः अपने इस मान-भंगसे बड़ा दुःख हुआ । वह शीघ्र ही कुष्ठ रोगसे पीड़ित हो उठी और बड़े आर्तध्यानसे उसका मरण हुआ ॥ ३० ॥

जो राजमहिषी थी वह अपने पापके कारण अगले भवमें महिषी अर्थात् भैंस हुई । उत्पन्न होते ही उसकी माताका मरण हो गया । एक दिन वह ज्योंही अपनी प्यास बुझानेके लिए तालाबमें प्रविष्ट हुई त्योंही कीचड़में फँस गई । उसी दशामें उसे एक नग्न मुनिके दर्शन हुए । किन्तु पूर्व वैर-भावके कारण उसे उनपर क्रोध आया और वह उन्हें मारनेकी इच्छासे अपने सींगोंको हिलाने लगी । इसका परिणाम यह हुआ कि वह और भी गहरी कीचड़में मग्न होकर मर गई ॥ ३१–३२ ॥

अपने दुर्भावके फलसे वह रानीका जीव इस बार मरकर गर्दभी हुआ । एक बार अनार्योंको दुर्लभ मुनिराज चर्याको जा रहे थे । उन्हें देखकर उस दुष्ट गर्दभीने रेंकते हुए अपनी पिछली लातोंसे उन्हें चोट पहुँचाई ॥ ३२–३३ ॥

वह पापिनी गर्दभी मरकर अबकी बार ग्राम-शूकरी हुई और विष्टा खाती फिरने लगी ।

तदैव तत्पिता जातमात्र्यां च जननी मृता ।
योजनैकमहापूतिगन्धा बन्धुभिरुज्झिता ॥ ३६ ॥
फलान्यौदुम्बरादीनि भक्षयन्ती वने स्थिता ।
सूरिणा सह शिष्येण दैवयोगाद्विलोकिता ॥ ३७ ॥
पूतिगन्धोऽयमत्यन्तं कुत एति महामुने ।
शिष्येण ऋषिराभाणि पुनरेतेन भण्यते ॥ ३८ ॥
कृतो यया पुरा साधो पूज्यपूजाव्यतिक्रमः ।
पापाद् भ्रान्त्वा भवे जाता सेयं चाण्डालबालिका ॥ ३९ ॥
संसारसागरं शास्त्रसागरैषा तरिष्यति ।
कथं कथय भो नाथ निर्ग्रन्थेनाथ कथ्यते ॥ ४० ॥
महापापावृतो जन्तुर्जैनधर्मेण शुद्ध्यति ।
किमत्र जानतोऽप्येतत्त्वया धीमन् प्रपृच्छ्यते ॥ ४१ ॥
श्रुत्वा परस्परप्रश्नोत्तरोपन्यासमञ्जसा ।
सा श्रद्धयोपशम्यात्त-पञ्चजं तु फलव्रता ॥ ४२ ॥
किञ्चिच्छुभाशया प्रेत्य पुरीमुज्जयिनीमिता ।
जातैककोशदुर्गन्धा दुर्विधब्राह्मणाङ्गजा ॥ ४३ ॥

उसके पीछे कुत्ते लगे रहते थे। वह भूख-प्याससे पीड़ित रहती थी। उसकी माता पहले ही मर चुकी थी। इस प्रकार दुःख भोगते हुए उसका मरण हुआ ॥ ३४–३५ ॥

शूकरीकी पर्यायसे निकलकर रानीका जीव साँभरी हुआ और पुनः मरकर एक चाण्डालीके दुष्ट गर्भमें आया। उत्पन्न होते मात्र ही तत्काल उसकी माताकी मृत्यु हो गई और उसका पिता भी उसी समय मर गया। उसके मुखसे एक योजन तक फैलनेवाली महा दुर्गन्ध निकलती थी। इस विपत्तिके कारण उसके बन्धुओंने उसका परित्याग कर दिया। अब वह ऊमर आदि फलोंका भक्षण करती हुई वनमें रहने लगी ॥ ३६–३७ ॥

दैवयोगसे एक दिन अपने शिष्य सहित एक मुनिराज वहाँसे निकले। मुनिराजने उसे देख लिया। शिष्यने उसकी दुर्गन्ध पाकर मुनिसे पूछा—हे महामुनि! यह अत्यन्त बुरी दुर्गन्ध कहाँसे आ रही है? तब मुनिराजने बतलाया—हे साधु! यह जो चाण्डाल बालिका दिखाई दे रही है, उसने अपने एक पूर्वजन्ममें पूज्य मुनिराजका निरादर किया है। उसी पापके फलसे संसारकी नाना नीच योनियोंमें परिभ्रमण करते हुए अब इसने यह चाण्डाल-बालिकाका जन्म पाया है और उसीकी यह दुर्गन्ध फैल रही है। इस बातको सुनकर शिष्यने अपने गुरुसे फिर पूछा—हे शास्त्रसमुद्रके पारगामी नाथ! मुझे यह भी बतलाइए कि अब यह चाण्डाल-बालिका किस प्रकार इस संसार रूपी सागरको तर सकेगी? अपने शिष्यके इस प्रश्नको सुनकर वे निर्ग्रंथ मुनि फिर बोले—

हे साधु! महाघोर पापसे युक्त जीव भी इस जैनधर्मके द्वारा ही शुद्ध होते हैं। हे विद्वन्, तुम इस बातको जानते हुए भी मुझसे क्यों पूछते हो? ॥ ३८–४१ ॥

इस प्रकार गुरु और शिष्यके बीच हुए प्रश्नोत्तरोंको उस दुर्गन्धा बालिकाने सुन लिया। उसने अपनी श्रद्धाके बलसे अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव सम्बन्धित उपार्जित कर्मोंका उपशम कर लिया था। इस उपशमके फलसे कुछ शुभ भावना सहित मरण करके उसने उज्जैनी

तथापि पितरौ तस्या मृतिमापतुरैनसा।
क्षुदिंगता समं कष्टैः पीडिता साशनायया ॥ ४४ ॥
अत्रान्तरे पुरोद्याने महामुनि-समागमम्।
यशःसेनमहाराजं वनपालो न्यवेदयत् ॥ ४५ ॥
तं सुदर्शननामानं महामुनिशतावृतम्।
नमस्कर्तुं महीभर्त्ता निर्गतो दुर्गतिच्छिदम् ॥ ४६ ॥
निर्जगामानु तं देवी महादेवीति विश्रुता।
वसन्ततिलकाद्यालिवृत्तान्तःपुरसंगता ॥ ४७ ॥
गजाद्विजादथोत्तीर्य वर्यात्तजनवेष्टितः।
त्रिः परीत्य नमस्कृत्य तं नृपः पुरतः स्थितः ॥ ४८ ॥
साऽपि मेलापकं दृष्ट्वा तृणाद्युत्तार्य मूर्द्धतः।
भवान्तरादि जल्पन्तं तं नतातिविदूरतः ॥ ४९ ॥
श्रावं श्रावं शुभध्याना धर्माधर्मफलश्रुतिम्।
जाता जातिस्मरा भूमौ पपात किल मूर्च्छिता ॥ ५० ॥
राज्ञा शीतोपचारेण सचेताः किल कारिता।
पृष्टा च किमिदं पुत्रि यत्त्वमप्यत्र मूर्च्छिता ॥ ५१ ॥

नगरीके एक गरीब ब्राह्मणके घरमें बालिकाका जन्म ग्रहण किया। उसके शेष कर्मोंके पापसे अभी भी उसकी दुर्गन्ध एक कोस तक जाती थी। जन्म होते ही उसके माता-पिताका मरण हो गया और वह भूख-प्यासके घोर कष्टोंसे पीड़ित होने लगी ॥ ४२-४४ ॥

इसी समय एक दिन उस नगरीके महाराज यशःसेनको वनपालने आकर खबर दी कि नगरके उद्यानमें महामुनि संघका आगमन हुआ है। सौ महा मुनियोंके संघ सहित विराजमान दुर्गतिका नाश करनेवाले सुदर्शन नामक उन मुनिराजको नमस्कार करनेके निमित्त राजा अपने महलसे निकले। उनके पीछे उनकी महादेवी पदकी धारक देवी वसन्ततिलका आदि प्रमुख सखियोंके साथ समस्त अन्तःपुर सहित चल पड़ीं ॥ ४५-४७ ॥

जब वे उद्यानके समीप पहुँचे तब राजा अपने हाथीपरसे नीचे उतर पड़े और अपने कुछ चुने हुए मात्र साथियोंको लेकर मुनिराजके समीप पहुँचे। राजाने मुनिराजकी तीन बार प्रदक्षिणा की और वे नमस्कार करके उनके सन्मुख बैठ गये ॥ ४८ ॥

उस समय वह दुर्गंधा बालिका घास लकड़ीका गट्ठा लिये हुए वहाँसे जा रही थी। उद्यानमें लोगोंका मेला देखकर उसने अपना वह घास आदिका गट्ठा सिरसे उतारकर भूमिपर रख दिया और भवान्तरादि रूप उपदेश देते हुए उन मुनिराजको बहुत दूरसे ही प्रणाम किया ॥ ४९ ॥

उसने मुनिराजके मुखसे धर्म और अधर्मके अच्छे और बुरे फलोंका उपदेश सुना। उस उपदेशको लगातार शुभ ध्यान पूर्वक सुनते-सुनते उसे जाति-स्मरण हो गया, जिससे उसने जान लिया कि किस पापके फलसे उसे रानीकी पर्यायसे च्युत होकर दुर्गंधा होनेके दुःख भोगने पड़े हैं। यह जानकर वह मूर्च्छित हो गई और भूमिपर गिर पड़ी। राजाने शीतोपचार कराकर उसे सचेत किया और उससे पूछा—हे पुत्रि, क्या कारण है जो तू यहाँ मूर्च्छित हो गई? ॥ ५०-५१ ॥

सा जगौ पूर्ववृत्तान्तं देवाहं राजवल्लभा ।
श्रीमती साधुसंतापकारिणी कुष्ठिनी मृता ॥ ५२ ॥
गर्वरी (?) गर्दभी जाता शूकरी संबरी तथा ।
पुनर्योजनदुर्गन्धा चाण्डाली विप्रजाधुना ॥ ५३ ॥
मुनेराकर्ण्य वाक्यानि स्मृत्वा दुःखानि मूर्च्छिता ।
मम ज्वरयते सेयं साधुगा कटुतुम्बिका ॥ ५४ ॥
वचः सत्यमिदं साधो परमं नृप नान्यथा ।
भूयोऽपि कुतकाद्राज्ञा विशेषात्तत्कथा श्रुता ॥ ५५ ॥
कथं तर्हि परे लोका भविष्यन्ति शुभावहाः ।
अमुष्या अथ स प्राह सुगन्धदशमीव्रतात् ॥ ५६ ॥
तत्कथं क्रियते तात भूपताविति जल्पिते ।
विमानस्खलनादेत्य धनञ्जय-वियच्चरे ॥ ५७ ॥
नमस्कृत्य समासीने सावधानेऽखिले जने ।
अवक् (?) प्रति नृपं कामकरिकण्ठीरवो मुनिः ॥ ५८ ॥
भद्रभाद्रपदे मासे शुक्लेऽस्मिन् पंचमी दिने ।
उपोष्यते यथाशक्ति क्रियते कुसुमाञ्जलिः ॥ ५९ ॥

राजाके उस प्रकार पूछनेपर दुर्गंधा अपने पूर्व भवका वृत्तान्त बतलाने लगी। वह बोली--हे देव ! मैं अपने पूर्व जन्ममें राजाकी प्यारी श्रीमती नामकी रानी थी। मैंने दुष्ट भावसे मुनिराजको कुत्सित अन्नका भोजन कराकर सन्ताप पहुँचाया। उसी पापके फलस्वरूप मैं कुष्ठिनी होकर मरी। तत्पश्चात् मैंने क्रमशः गर्वीली भैंस,गदही,शूकरी और साँभरीकी पर्याय धारण की। फिर मैं एक योजन दुर्गंध छोड़नेवाली चाण्डाल-पुत्री हुई। वहाँसे निकलकर अब इस भवमें मैं ब्राह्मण कन्या हुई हूँ। मुनिराजके वचनोंको सुनकर मुझे अपने वे सब पूर्व पर्यायोंके दुख स्मरण हो आये। इसी कारण मैं मूर्च्छित हो गई। साधुको दिया गया वह कड़वी तुम्बीका आहार अभी तक मुझे दुःख पहुँचा रहा है ॥ ५२–५४ ॥

दुर्गंधाकी बात सुनकर राजाने मुनिराजसे पूछा—हे साधु, क्या दुर्गंधाकी कही हुई बातें सत्य हैं ? मुनिराजने उत्तर दिया—राजन् , जो कुछ इस बालिकाने कहा है वह सब परम सत्य है, उसमें कुछ भी झूठ नहीं है। तब राजाने पुनः कौतुकवश दुर्गंधाकी कथा विशेष रूपमे विस्तार पूर्वक कहलवाकर सुनी। उस कथाको सुनकर राजाने फिर पूछा--हे मुनिराज, इस कन्याका परलोक कैसे सुधर सकेगा ? मुनिराजने कहा—सुगन्ध दशमी व्रतके द्वारा ही इस बालिकाका परलोक सुधरेगा। राजाने फिर पूछा—हे मुनिराज, सुगन्ध दशमी व्रत किस प्रकार किया जाता है ? राजाने जब यह प्रश्न किया, उसी समय वहाँ आकाश मार्गसे आते हुए धनंजय नामक विद्याधरका विमान स्खलित हुआ। वह विद्याधर अपने विमानसे उतरकर मुनिराजके दर्शनको आया और मुनिराजको नमस्कार करके यथास्थान बैठ गया। समस्त दर्शक जन भी सावधान हो गये। तब कामरूपी हस्तीको सिंहके समान दमन करनेवाले मुनिराज राजाके प्रश्नके उत्तरमें सुगन्धदशमी व्रतका पालन करनेकी विधि बतलाने लगे ॥ ५५–५८ ॥

मुनिराज बोले—उत्तम भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी पंचमी तिथिके दिन उपवास करना

तथा षष्ठ्यां च सप्तम्यामष्टम्यां नवमीदिने ।
जिनानामग्रतो भूयो दशम्यां जिनवेश्मनि ॥ ६० ॥
उपवासं समादाय विधिरेष विधीयते ।
चतुर्विंशति तीर्थेशां स्नपनं प्रपणीयते ॥ ६१ ॥
पूजनं स्तवनं जापं दशशः क्रियते बुधैः ।
मुखैर्दशभिराभासी घटस्तत्र निधीयते ॥ ६२ ॥
धूपो दशविधस्तत्र दह्यते मृदुनाग्निना ।
कृष्णागुर्वादिरत्रैव विशेषेण विधीयते ॥ ६३ ॥
कुङ्कुमागुरुकर्पूरचन्दनादिविलेपनम् ।
तत्प्रकारं च विज्ञेयं तद्वदेवाक्षतादिकम् ॥ ६४ ॥
संलिखेत्सप्तभिर्धान्यैः स्वस्तिकं तत्र दीपकान् ।
स्थापयेद्दश चैत्येवं दशाब्दान् परिकल्पयेत् ॥ ६५ ॥
पूर्णेऽथ दशमे वर्षे तदुद्यापनमाचरेत् ।
शान्तिकं वाभिषेकं वा महान्तं विधिमासृजेत् ॥ ६६ ॥
पुष्पाणां प्रकरं कुर्याज्जिनाग्रे च तदङ्गने ।
विचित्रं दशभिर्वर्णैर्वितानं च वितानयेत् ॥ ६७ ॥
ध्वजान् दशपताकांश्च नादिन्यस्तारिकास्तथा ।
चामराणां युगैर्धूपदहनानि दश क्रमात् ॥ ६८ ॥

चाहिए और भगवान्को कुसुमाञ्जलि चढ़ाना चाहिए । उसी प्रकार जैन मन्दिरमें षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी और फिर दशमीको भी भगवान्के आगे कुसुमाञ्जलि चढ़ाना चाहिए । दशमीको पुनः उपवास धारण करके निम्न विधिसे व्रत पालन करना चाहिए—

उस दिन चौबीसी भगवान्का अभिषेक कराकर दश पूजाएँ करना चाहिए । दश स्तुतियाँ पढ़ना चाहिए और दश बार जाप देना चाहिए । दशमुख वाले एक घटकी स्थापना करके उसमें मन्द अग्नि जलाकर दशांगी धूपका होम करना चाहिए । इस विधि काली अगरबत्ती आदि सुगन्धी द्रव्योंका उपयोग विशेष रूपसे करना चाहिए । केशर, अगर, कपूर और चन्दन आदिको घिसकर शरीरमें लेप करना चाहिए और अक्षतादि अष्ट द्रव्य तैयार कर पूजन करना चाहिए । जिस प्रकार यह विधान किया जाता है उसकी समस्त विधि शास्त्रसे जान लेना चाहिए । सात प्रकारका धान्य लेकर उससे स्वस्तिक लिखना चाहिए और उसमें दश दीपक रखकर जलाना चाहिए । इस प्रकार यह समस्त विधि दश वर्ष तक करना चाहिए ॥ ५९–६५ ॥

प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ला पंचमीसे लेकर दशमी तक उक्त प्रकार व्रत पालन करते हुए जब दश वर्ष पूर्ण हो जाँय तब उस व्रतका उद्यापन करना चाहिए । उस अवसरपर शान्ति विधान या महाभिषेक या इसी प्रकारकी कोई महान् विधि प्रारम्भ करना चाहिए । जिन भगवान्की वेदीके आगे मन्दिरके आँगनमें खूब फूलोंकी शोभा करना चाहिए । दश रंगोंका चित्र-विचित्र चँदेवा तानना चाहिए । दश ध्वजा, दश पताका, दश बजनेवाली तारिकाएँ (घण्टिका), दश जोड़ी चमर और दश धूप घट, ये सब दश दश सजाना चाहिए । इस अवसरपर आरातीय

आरातिकानि पुस्तानि सवस्त्राणि सहौषधैः ।
भवन्ति संघदानानि तथार्यांशुकानि च ॥ ६९ ॥
शौच-संयम-संज्ञानसाधनानि हि यानि च ।
यथायोग्यं प्रदेयानि मुनिभ्योऽन्यान्यपि ध्रुवम् ॥ ७० ॥
स्तोकोऽपि विधिरुद्योतो भक्त्या बहुफलप्रदः ।
फलं न सर्वथा चिन्त्यं स्तोकेन स्तोकमित्यपि ॥ ७१ ॥
शाकपिण्डप्रदानेन रत्नवृष्टिः प्रजायते ।
तद् भक्तिवैभवं कालापेक्षया च निदर्श्यते ॥ ७२ ॥
नरो वा वनिता वापि व्रतमेतत्समाचरेत् ।
इहैव सुखितामेत्य स्वर्गीभूत्वा शिवीभवेत् ॥ ७३ ॥
श्रुत्वेति सप्रजो राजा पूतिगन्धा द्विजाङ्गजा ।
गृह्णन्ति स्म व्रतं प्रायः सर्वेऽपि हितकांक्षया ॥ ७४ ॥
साहाय्यात्ता नृपादीनां समाराध्योत्तमं व्रतम् ।
समाधिना मृतार्यिकाणां समीपे जिनभावना ॥ ७५ ॥
अथास्ति विश्वविख्यातं पुरात्नं कनकं पुरम् ।
तस्मिन्कनकमालेशः कनकप्रभभूमिभृत् ॥ ७६ ॥

अर्थात् आधुनिक पुस्तकों, वस्त्रों और औषधोंका दान संघको देना चाहिए। अर्जिकाओंको भी वस्त्रादिक प्रदान करना चाहिए। मुनियोंको शौचके साधन कमण्डल, संयमके साधन पिच्छिका, ज्ञानके साधन शास्त्र तथा इसी प्रकारके अन्य धर्म व ज्ञानकी साधनामें उपयोगी वस्तुओंका यथायोग्य दान करना चाहिए ॥ ६९–७० ॥

ऊपर कही गई व्रत उद्यापनकी विधि यदि अल्प रूपमें भी भक्ति सहित की जाय तो वह बहुत फलदायक होती है। ऐसा कभी नहीं सोचना चाहिए कि सजावट व दान आदिकी विधि यदि थोड़ी की जायगी तो उसका फल भी थोड़ा होगा। साग मात्रका थोड़ा-सा भोजन सुपात्रको करानेसे भी रत्नोंकी वृष्टि रूप महान् फल प्राप्त होता है। यह सब मुख्यतासे भक्तिका ही प्रभाव है। उस भक्तिके प्रदर्शनका स्वरूप द्रव्य,क्षेत्र,काल और भावके अनुसार बतलाया जाता है। जो कोई नर अथवा नारी इस व्रतका पालन करता है, वह इस जन्ममें सुख पाता है, मरकर स्वर्गमें देव होता है और फिर अनुक्रमसे सुख भोगता हुआ मोक्षके सुखको भी पा लेता है ॥ ७१–७३ ॥

मुनि द्वारा बतलाई हुई सुगंध दशमी व्रतके पालन करनेकी विधिको सुनकर उस राजाने, उसकी समस्त प्रजाने, तथा उस दुर्गंधा द्विज-कन्याने एवं प्रायः सभीने अपने हितकी वांछासे उस व्रतको ग्रहण किया। राजा व अन्य धार्मिक जनोंकी सहायतासे दुर्गंधाने उस उत्तम व्रतकी भले प्रकार आराधना की। इस प्रकारके धर्माचरण सहित दुर्गंधाने इस बार आर्यिकाओंके समीप जिन भावना पूर्वक समाधि-मरण किया ॥ ७४–७५ ॥

अथ कनकपुर नामका एक विश्वविख्यात प्राचीन नगर है। वहाँ कनकप्रभ नामका राजा अपनी कनकमाला नामक रानी सहित राज्य करता था। इस राजाका जिनदत्त नामक

राज्ञः श्रेष्ठी बभूवास्य पुण्यधीर्जिनदत्तवाक् ।
तत्समासा प्रियैतस्य तनूजा साभवत्तयोः ॥ ७७ ॥
अदृष्टापत्यवक्त्रेण श्रेष्ठिना बहुमानिता ।
रूपलावण्यसद्दीप्ति भाग्यसौभाग्यराजिता ॥ ७८ ॥
सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वावयवसुन्दरा ।
सिताभ्राधिकसौरभ्यसुगन्धितदिगन्तरा ॥ ७९ ॥
योषितां तिलकीभूता तिलकादिमतिर्मता ।
नरनारीकराम्भोजकुचकुड्मललालिता ॥ ८० ॥
अथान्यस्मिन्दिने कन्या पापशेषेण वाञ्छिता ।
बभूव तत्प्रतापेन भूयोऽपि मृतमातृका ॥ ८१ ॥
अथास्ति वणिजां नाथो वरे गोवर्धने पुरे ।
सुधीः ऋषभदत्ताख्यो बन्धुमत्यङ्गजास्य च ॥ ८२ ॥
ऊढवान् मूढकन्दर्पस्तामसौ तामसौजसा ।
रजोदर्शं तया बुद्ध्या लेभे तेजोमतीं सुताम् ॥ ८३ ॥
स्नानैर्विलेपनैर्वस्त्रैर्भूषणैः शयनासनैः ।
लालयामास तामन्यां दुनोति स्म विटप्रभुः ॥ ८४ ॥
तद्विलोक्य वणिग्जायावशः संक्षुब्धमानसः ।
अशिक्षयद् द्वयं दास्योः समर्प्य तिलकामिति ॥ ८५ ॥
युवाभ्यां सर्वयत्नेन पालनीयेयमञ्जसा ।
ऋते मातुरपत्यानां दुष्करा जीवनक्रिया ॥ ८६ ॥

पुण्यवान् सेठ था। इसकी सेठानीका नाम था जिनदत्ता। इन्हींके वह दुर्गंधाका जीव पुत्री रूपसे उत्पन्न हुआ। सेठने अभी तक अपनी सन्तानका मुख नहीं देखा था। अतः उसने इस कन्याके जन्मको ही धन्य माना। कन्या भी रूप, लावण्य, कान्ति एवं भाग्य-सौभाग्यसे परिपूर्ण थी। वह समस्त लक्षणोंसे सम्पन्न व अपने सभी अंगोंसे सुन्दर थी। उसके शरीरसे निकलनेवाली सुगन्ध कर्पूरसे भी बढ़कर थी और सब दिशाओंको सुगन्धित करती थी। वह समस्त नारियोंमें तिलकके समान श्रेष्ठ थी जिससे उसका सार्थकनाम तिलकमती रखा गया। वह समस्त नर-नारियोंके हस्तकमलों व स्तनपान द्वारा लालित पालित होने लगी ॥ ७६–८० ॥

किन्तु इस कन्याका पूर्वोपार्जित पाप अभी भी शेष था जिसके प्रतापसे उसे मातृवियोग का दुःख भोगना पड़ा। तब उसके पिताने कामके वशीभूत हो गोवर्धनपुरके श्रीमान् वणिग्वर ऋषभदत्तकी पुत्री बन्धुमतीसे अपना विवाह कर लिया। उसके साथ तामसी वृत्तिसे भोग-विलास करते हुए उसके एक पुत्री हुई जिसका नाम रखा गया तेजमती ॥ ८१–८३ ॥

नीच प्रकृति सेठानी अपनी इस औरस पुत्रीको स्नान, विलेपन, वस्त्र, आभूषण, शयन, आसन आदि द्वारा खूब लाड़-प्यारसे पालने लगी और अपनी उस सौतेली कन्याको दुःख देने लगी। सेठ अपनी नयी सेठानीके वशमें था। तथापि सेठानीका वह व्यवहार देखकर उसके मनमें बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ। उसने अपनी तिलकमती नामक कन्याको दो दासियोंके सुपुर्द किया और उन्हें आदेश दिया कि तुम सब प्रकार यत्नपूर्वक इस कन्याका पालन-पोषण करो। सच है माताके बिना बाल-बच्चोंकी जीवन क्रिया बड़ी कठिन होती है ॥ ८४–८६ ॥

अथ द्वीपान्तरं राज्ञो निदेशाद्रत्नहेतुना ।
व्रजन् बन्धुमतीं प्रोचे गिरः सांयात्रिकोत्तमः ॥ ८७ ॥
विप्रकृष्टः प्रिये पंथा नृपस्तु दुरतिक्रमः ।
तनूजयोः क्रमात्कार्यो विवाहः संप्रदानया ॥ ८८ ॥
गतेऽथ वणिजां नाथे सुगन्धां याचितामपि ।
न दत्ते दर्शयन्ती सा निजां तेजोमतीं सुताम् ॥ ८९ ॥
कुलीनो गतरुग्विद्वान् वपुष्मान् शीलवान् युवा ।
पक्षलक्ष्मीपरीवारवरो हि भवतां सुतः ॥ ९० ॥
जन्मना भक्षिता माता पिता दूरं प्रवासितः ।
लक्ष्महीना गृहेऽस्माकं सपत्नीयसुता त्वियम् ॥ ९१ ॥
इयं तेजोमती साक्षाद्रती रम्भा तिलोत्तमा ।
याच्यते न कथं हृद्या मुक्तामालेव निस्तुला ॥ ९२ ॥
तथैवं जल्पिते तैस्तु सैव भूयोऽपि मार्गिता ।
प्रसह्य न भवेत्प्रीतिरिति दत्ते स्म तां सका ॥ ९३ ॥
दर्शिता तिलकोद्वोढुं मण्डिता दुहिता निजा ।
शाम्बरी सहजा स्त्रीणां किं पुनर्न कृतुद्भवा ॥ ९४ ॥
विवाहस्याथ सामग्र्यां कृतायां चारुसम्पदि ।
समागते शुभे लग्नदिवसे सुप्रतीक्षिते ॥ ९५ ॥

एक दिन सेठजीको राजाका आदेश मिला कि वे किसी दूसरे द्वीपको जाकर अच्छे-अच्छे रत्न खरीदकर लावें। सेठने विदा होते समय बन्धुमती सेठानीसे कहा—हे प्रिये, मैं बहुत दूर विदेशको जा रहा हूँ, क्योंकि राजाकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं किया जा सकता। किन्तु तुम यथासमय क्रमसे दोनों पुत्रियोंका विवाह कर देना ॥ ८७–८८ ॥

सेठके चले जानेपर सुगन्धाकी याचना करनेवाले वर आने लगे। किन्तु सेठानी उसका विवाह स्वीकार न कर अपनी औरस पुत्री तेजमतीको ही उन्हें दिखलाती थी। वह याचना करनेवाले माता-पिताको कहती—देखिए, आपका पुत्र कुलीन, निरोग, विद्वान्, चंगा, शीलवान्, युवा और कुल-परिवारसे सम्पन्न वर है, जब कि हमारे घरकी इस लड़कीने जन्म लेते ही अपनी माताका भक्षण कर लिया और बड़े होते ही पिताको दूर देश भिजवा दिया। यह कुलक्षणा मेरी सपत्नीकी पुत्री है। इसके विपरीत यह जो तेजमती कुमारी है वह साक्षात् रति, रम्भा व तिलोत्तमाके समान सुन्दरी है और मोतियोंकी मालाके समान अनुपम हृदयहारिणी है; उसे आप क्यों नहीं वरण करते? ॥ ८९–९२ ॥

किन्तु सेठानीके इस प्रकार तिलकमतीकी निन्दा और तेजमतीकी प्रशंसा करनेपर भी वरोंने तिलकमतीकी ही याचना की। सेठानीने जब यह जान लिया कि जबरदस्ती किसीकी किसीसे प्रीति नहीं कराई जा सकती, तब उसने तिलकमतीका ही कन्यादान करना स्वीकार कर लिया। किन्तु फिर भी सेठानीने छल करना नहीं छोड़ा। उसने विवाहके लिए दिखला तो दी तिलकमतीको, किन्तु मण्डन और शृङ्गार किया अपनी कन्या तेजमतीका ही। ठीक ही है, स्त्रियोंमें कुटिल चातुरी स्वाभाविक होती है, फिर कृत्रिम छलकी तो बात ही क्या है ॥९३–९४॥

अब विवाहकी सब सामग्री भले प्रकार बहुमूल्य रूपसे होने लगी। जब विवाहका

प्रदोषे मङ्गलस्नान-विलेपन-विभूषणैः
उपस्कृत्यानयत्प्रेतवनं सा तिलकावतीम् ॥ ९६ ॥
चतुर्दिक्षु चतुर्दीपमावारकसमन्वितम् ।
निवेश्य तामिति प्रोच्य विमाता तिलकावतीम् ॥ ९७ ॥
स्वयोग्यं वरमत्रस्था गवेषय शुभानने ।
चेटिकासहिता वेश्म दुरात्मा सा निजं गता ॥ ९८ ॥
तस्मिन्नेव शुभे लग्ने तेनैव सुवरेण च ।
कन्या तेजोमती व्यूढा जनन्यनुमतेन सा ॥ ९९ ॥
अत्रान्तरे महीपालः प्रासादात्प्रेक्षते स्म ताम् ।
चिन्तयामास हृद्येवं किमेषा सुरकन्यका ॥ १०० ॥
यक्षी वा किन्नरी किं वा योगिनी पूजनोद्यता ।
किं स्विद्विद्याधरी कापि नारी वा काप्युपस्थिता ॥ १०१ ॥
कौक्षेयकं करे कृत्वा भूपः कौतूहली गतः ।
श्मशानं पृच्छति स्मैवं का त्वमत्र व्यवस्थिता ॥ १०२ ॥
अस्मीमंजनको राज्ञा प्रेषितो रत्नहेतवे ।
विवाहे वञ्चिता मन्ये विमात्रा स्थापिताऽत्र मे ॥ १०३ ॥
एवं बभाण सा पुत्रि त्वद्वरोऽत्र समेष्यति ।
तेनात्मानं विधानेन सति त्वं परिणायये: ॥ १०४ ॥
पुनर्गता गृहं साहं वरं वीक्षे महामते ।
नूनं तेजोमतीस्तत्र परिणीता भविष्यति ॥ १०५ ॥

प्रतीक्षित शुभदिन आया तब सन्ध्या समय सेठानीने तिलकमतीको मंगल स्नान कराया और उसे विलेपन-भूषणोंसे सुसज्जित किया। पश्चात् सेठानी उसे श्मशान भूमिमें लिवा ले गई। उसके चारों ओर उसने चार दीपक आवारक सहित प्रज्वलित कर दिये और तिलकमतीसे कहा—हे शुभानने, यहाँ बैठकर तू अपने योग्य वरकी प्रतीक्षा कर। इतना कहकर वह दुष्ट विमाता अपनी दासियों सहित अपने घर वापस आ गई और उसी शुभ लग्नमें उसी वरके साथ अनुमति देकर अपनी कन्या तेजमतीका विवाह कर दिया ॥ ९५–९९ ॥

उसी रात्रि अपने महलकी छतपरसे राजा नगरकी शोभा देख रहा था। श्मशानमें तिलकमतीकी ओर दृष्टि पड़ते ही वह अपने मनमें सोचने लगा—यह हृदयहारिणी कोई सुरकन्या है। अथवा कोई यक्षिणी या किन्नरी या कोई योगिनी किसी पूजामें लगी हुई है, अथवा कोई विद्याधरी या नारी यहाँ जा बैठी है? कुतूहलवश राजाने अपने हाथमें तलवार ली और वह श्मशान भूमिपर जा पहुँचा। उसने कन्यासे पूछा—हे कन्ये, तू कौन है और किस कार्यके लिए यहाँ बैठी है? कन्या बोली—मेरे पिताको राजाने रत्न लानेके लिए बाहर भेज दिया है। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मेरी सौतेली माताने मुझे विवाहके सम्बन्धमें धोखा देकर यहाँ बिठला दिया है। उसने मुझसे कहा है—हे पुत्रि, तेरा वर यहीं आवेगा। उसीसे तू विधिवत् अपना विवाह कर लेना। हे महामति, अब मैं पुनः घर जाकर अपने वरको देखूँगी। यह तो निश्चित है कि वहाँपर तेजमतीका विवाह हो चुका होगा ॥ १००–१०५ ॥

यद्येवं सुन्दरि त्वं मां वृणीष्व मृगलोचने ।
धृता पाणौ नृपेणाशु तयोमित्युदिते सति ॥ १०६ ॥
प्रभाविकसने पूष्णः प्रातरुत्थाय स व्रजन् ।
दष्टुाहिवत्क्व यासि त्वं तया चेलाञ्चले धृतः ॥ १०७ ॥
नक्तं नक्तं समेष्यामि प्रियेऽहं वेश्म ते न्वहम् ।
गच्छौकः स्वकमित्युक्ते गोपोऽहमिदमब्रवीत् ॥ १०८ ॥
गते राज्ञि निजं सौधं बन्धुमत्यवदज्जनान् ।
मङ्गलावसरे पापा न जाने सा क्वचिद् गता ॥ १०९ ॥
तारिके धारिके चम्पुरङ्गि चङ्गि कुरङ्गिके ।
धर्म्ये कर्म्ये जिते धन्ये तिलका दृश्यते किमु ॥ ११० ॥
पृच्छन्ती स्त्रीजनानेवं दर्शयिष्यामि किं मुखम् ।
भर्तुर्गता गिरन्तीत्थं श्मशानं निकृतेर्गृहम् ॥ १११ ॥
समक्षं सर्वलोकानां दृष्ट्वा तामित्युवाच सा ।
दुःपुत्रि क्व गता रण्डेऽनुष्ठितं किमिह त्वया ॥ ११२ ॥
मातर्मतेन तेऽत्रस्था वल्लवेन विवाहिता ।
पश्यताकृत्यमेतस्यास्तच्छ्रुत्वा पूत्चकार सा ॥ ११३ ॥
आनीता सा गृहं धृत्वा तया रञ्जितलोकया ।
नूनं निष्पादिता धात्रा स्त्रियः केवलमायया ॥ ११४ ॥

तिलकमतीकी बात सुनकर राजाने उससे पूछा—हे मृगलोचने सुन्दरि, यदि ऐसी बात है, तो तू मुझसे ही अपना विवाह क्यों नहीं कर लेती ? इतना कहकर और उसके 'ओम्'का उच्चारण करनेपर राजाने उसका पाणिग्रहण कर लिया ॥ १०६ ॥

प्रातःकाल ज्योंही सूर्यकी किरण प्रकट हुई त्योंही राजा वहाँसे उठकर प्रस्थान करने लगा। तब तिलकमतीने उसका आँचल पकड़कर उसे रोक लिया और कहा—आप सर्पके समान मुझे दशकर कहाँ जाते हो ? तब राजा बोला—हे प्रिये, मैं प्रतिदिन रात्रिको तुम्हारे घर आया करूँगा। तुम भी अब अपने घर जाओ। इतना कहकर और 'मैं गोप हूँ' ऐसा अपना परिचय देकर राजा वहाँसे अपने महलको चला गया ॥ १०७-१०८ ॥

यहाँ श्मशानमें जब यह घटना हो रही थी तब सेठके घरपर क्या हो रहा था सो सुनिए। सेठानी बन्धुमतीने श्मशानसे लौटते ही लोगोंमें यह कहना प्रारम्भ किया––अरे, यह पापिनी कन्या इस विवाहके मंगलावसरपर न जाने कहाँ चली गई ? हे तारिके, हे धारिके, हे चंपुरंगि, हे चंगि, हे कुरंगिके, हे धर्म्ये, हे कर्म्ये, हे जिते, हे धन्ये, क्या तूने तिलकाको देखा है ? इस प्रकार स्त्रीजनोंको पूछती हुई और कहती हुई–'अब पतिके सम्मुख मैं किस प्रकार अपना मुँह दिखलाऊँगी' वह घरसे निकलकर अन्ततः उस छलके स्थान श्मशानमें जा पहुँची। वहाँ तिलकमतीको देखकर सब लोगोंके समक्ष सेठानी कहने लगी—अरी कुपुत्रि, तू यहाँ कहाँ चली आई ? अरी रण्डे, तूने यहाँ क्या किया ? सेठानीके ये वचन सुनकर तिलकमती बोली—हे माता, तुम्हारी ही इच्छासे तो मैं यहाँ आकर बैठी हूँ और एक गोपके साथ मेरा विवाह हुआ है। कन्याकी यह बात सुनकर सेठानीने उसे धुतकारा और कहा—देखो इस लड़कीकी करतूत। फिर सेठानी उसे

तथा गच्छति तत्पत्स्यं प्रशस्तं कनकप्रभे ।
तयोः प्रसर्पति स्वैरं प्रशाम्यति मनोभुवि ॥ ११५ ॥
बन्धुमत्योदितं मुग्धे त्वयासौ शोधनीद्वयम् ।
पिण्डारोऽगारमायातो याचितव्योऽतिशोभनम् ॥ ११६ ॥
तया तिलकमत्यैवं कृते सोऽन्येद्युरुत्तमम् ।
नानारत्नमयं हैममानिनायैतयोर्द्वयम् ॥ ११७ ॥
कञ्चुकं काञ्चनाद्यर्च्यं वस्त्रयुग्मं महाधनम् ।
षोडशाभरणोपेतं ददौ तस्यै मनोरमम् ॥ ११८ ॥
सा सती केशहस्तेन तस्य पादाम्बुजद्वयम् ।
प्रमृज्य क्षालयामास प्रश्रयः स्त्रीषु मण्डनम् ॥ ११९ ॥
अथ स्त्रीरत्नमाश्लिष्य सुप्त्वा प्रातर्गते नृपे ।
तत्सर्वं दर्शयामास सा तस्यै दाहवद्धृदि ॥ १२० ॥
राजनामाङ्कितं दृष्ट्वा तदित्याह दुरात्मिका ।
चौरस्त्वामोढवान्मूढे मुञ्च यावन्न वीक्षिता ॥ १२१ ॥
निर्वास्य दुकूलाद्यं तस्याः कल्प्य जरत्पटम् ।
दत्त्वा सुलूषिताकारां कृत्वा तस्थौ महासतीम् ॥ १२२ ॥
अथायातो वणिक् सत्यपरमेष्ठी निजं गृहम् ।
श्रेष्ठी साराणि रत्नानि गृहीत्वा पुण्यवानलम् ॥ १२३ ॥

पकड़कर अपने घर लिवा लाई और इस प्रकार उसने लोक-रंजनका ढोंग रचा । सचमुच ही विधाताने स्त्रियोंको केवल मायाचारके लिए ही बनाया है ॥ १०९–११४ ॥

फिर राजा कनकप्रभ प्रतिदिन तिलकमतीके घर जाने लगा, और उन दोनोंमें परस्पर प्रेमानुराग होने लगा । एक दिन बन्धुमती सेठानीने तिलकमतीसे कहा—अरी मूढ़, तू अपने पिंडार पतिसे जब वह तेरे घर आवे तब अच्छी दो शोधनी (बुहारी) तो माँग ? तिलकमतीने वैसा ही किया । तब उसके पतिने दूसरे दिन उन दोनोंके लिए नाना रत्नजटित सुवर्णमय दो उत्तम झाड़नी लाकर दीं । साथ ही उसने उसे सोनेकी जरीसे जड़ी हुई कंचुकी, बहुमूल्य एक जोड़ी वस्त्र तथा सोलह प्रकारके उत्तम आभरण भी दिये । इसपर उस सतीने अपने केश हाथमें लेकर अपने पतिके पैर मलकर धोये । विनय ही तो स्त्रियोंका भूषण है । पतिने अपनी सती स्त्रीका आलिंगन किया और उस रात्रि वे वहीं रहे ॥ ११५–१२० ॥

प्रातःकाल जब पति उसके पाससे चला गया तब तिलकमतीने वे सब वस्त्राभूषण अपनी माताको दिखाये । किन्तु सौतेली माँ होनेके कारण उसे वे हृदयमें दाहके समान लगे । आभूषणोंपर राजाका नाम अंकित देखकर वह दुरात्मा विमाता बोल उठी—अरी मूर्ख, किसी चोरने तेरा पाणिग्रहण किया है । उतार जल्दी इन भूषणों और वस्त्रोंको, जब तक कि कोई अन्य इन्हें देख नहीं पाया । इस प्रकार डाँट फटकार बतलाकर सेठानीने उसके वे सब भूषण-वसन उतरवा कर ले लिये और उस महासतीको फटे पुराने कपड़े पहनाकर व कुरूप बनाकर अपने निवास-स्थानको चली गई ॥ १२१–१२२ ॥

इसी बीच वह परम सत्यवान् और पुण्यवान् सेठ बहुतसे उत्तम रत्नोंको लेकर अपने घर

पश्य कान्तानया चौरः स्वीकृतस्ते तनूजया ।
राजैव मुषितस्तेन मया मम्रेऽतिभीतया ॥ १२४ ॥
अयं चूडामणिर्नाथ बाल पश्येयमद्भुता ।
पत्रपाश्या महार्घ्येयं कर्णिका कुण्डलद्वयम् ॥ १२५ ॥
इदं ग्रैवेयकं सारं निर्मलेयं ललन्तिका ।
प्रालम्बिकोत्तमस्वर्णा सुमुक्तावत्ससूत्रिका ॥ १२६ ॥
तरन्निव वियद्गङ्गाप्रवाहे बालभास्करः ।
देवच्छन्दे स्थितः सोऽयं तरलः प्रविराजते ॥ १२७ ॥
कटकाङ्गदकेयूरमूर्मिकाः कङ्कणादिकम् ।
सप्तकीयं तुलाकोटिद्वयं हंसकसंयुतम् ॥ १२८ ॥
रणन्तं श्रवणानन्दममन्दं किङ्किणीगणम् ।
पत्रोर्णं पश्य नाथेदं महाघनमनाहतम् ॥ १२९ ॥
अन्तरीयमतिश्रेष्ठं संव्यानमतिसुन्दरम् ।
रत्नोपरचितं कामनिधान निप्रभझम्पनम् ॥ १३० ॥
अस्मत्कुलक्षये कालरात्रिरेषा समुत्थिता ।
रजोवृष्टिः कुटुम्बस्य मूर्ध्नि तु दुहितुर्मिषात् ॥ १३१ ॥
निशम्य वनितावाक्यं समीक्ष्य समलङ्कृतीः ।
स्थिरप्रकृतिरप्येष मनाक् चकितवान्कृती ॥ १३२ ॥
वणिक् तत्सर्वमादाय नृपाग्रे न्यक्षिपत्सुधीः ।
तवेदं केनचिद्दत्तं दस्युना दुहितुर्मम ॥ १३३ ॥

लौट आया। उसके आते ही सेठानी उसे सुनाने लगी—देखो कान्त, तुम्हारी इस पुत्रीकी करतूत। इसने किसी चोरको अपना पति बना लिया है और उसने राजाकी चोरी करके इसे ये आभूषण दिये हैं। मैं तो डरकर मर गई। हे नाथ, यह वह चूड़ामणि है। इस अद्भुत बालाको देखिए। यह बहुमूल्य पत्रपाश्या है, यह कर्णफूल है और ये दो कुण्डल हैं। यह सुन्दर कण्ठा है और यह है-उज्ज्वल ललंतिका। यह उत्तम सोनेकी बनी, अच्छे मोतियोंसे जड़ी और सुन्दर सूत्रमें गुँथी लम्बी माला है। यह देवच्छंदपर स्थित तरल तो ऐसा विराज रहा है जैसे आकाश-गंगाके प्रवाहमें बाल सूर्य तैर रहा हो। ये कटक हैं, ये अंगद हैं, ये केयूर हैं, ये ऊर्मिकाएँ हैं, ये कंकणादिक हैं, यह सप्तकी है, यह तुलाकोटिकी जोड़ी है जिस पर हंस बने हुए हैं। ये किंकिणी हैं जो अपनी झुनझुन ध्वनि द्वारा निरन्तर कानोंको आनन्द देती हैं। और नाथ, इस पत्रोर्णको भी देखिए जो बड़ा बहुमूल्य है और बिल्कुल नया है। यह अति श्रेष्ठ अन्तरीय है, यह अत्यन्त सुन्दर संव्यान है और यह कलश-झंपन है जो, हे कान्त, रत्नोंसे जड़ा हुआ है। यह दुहिता क्या है, अपने कुटुम्बके सिरपर धूलकी वर्षा तथा कुलका नाश करनेवाली कालरात्रि ही आ गई है॥ १२३–१३१॥

अपनी पत्नीकी ये सब बातें सुनकर और उन अलंकारोंको देखकर वह धीर प्रकृति और अनुभवी सेठ भी कुछ चकित हो उठा। चतुर सेठने उन सब वस्तुओंको ले जाकर राजाके सम्मुख रख दिया और कहा—महाराज, आपकी इन सब वस्तुओंको किसी चोरने ले जाकर मेरी पुत्रीको

तद् गृहाण महाराज नृपद्रुग् न भवाम्यहम् ।
हासित्वा स भनागाह वस्तुवस्तु मम तस्करम् ॥ १३४ ॥
आगत्य स सुतामूचे कल्कमूर्ते निजं पतिम् ।
जानासि, तात जानामि पादयोः क्षालनादहम् ॥ १३५ ॥
स चाह नृपतेरग्रे तेनोक्तं त्वद्गृहे मया ।
तच्छोधनार्थमसच्यं परिवारजनैरमा ॥ १३६ ॥
एवमस्त्विति सामग्र्यं विधाय्याकार्य भूभुजम् ।
क्रमेण क्षालयामास तदंघ्रीनक्षिकंपितम् ॥ १३७ ॥
बहूनां धौतपादेषु नायं नायं न चाप्ययम् ।
भणन्तीत्थं विभोर्दूरमस्पृशत्पादपंकजम् ॥ १३८ ॥
पितर्मलिम्लुचः सोऽयं रतेर्मे मन्मथः स्वयम् ।
स्यादिदं सत्यमित्येवं बाहुजा जहसुर्नृपम् ॥ १३९ ॥
कार्षं भो मा वृथा हास्यमवश्यं दस्युरस्म्यहम् ।
कथं देवेदमित्याह नृपस्तत्पूर्ववृत्तकम् ॥ १४० ॥
तदा लोका जगुर्धन्या कन्येयं भूभुजं वरम् ।
प्राप भक्त्या पुरा किं वानया व्रतमनुष्ठितम् ॥ १४१ ॥
भुक्तेरनन्तरं श्रेष्ठी राजमान्यो महोत्सवम् ।
विवाहस्याकरोद् बन्धुमतेश्च मषिवन्मुखम् ॥ १४२ ॥

दिया है । आप इन्हें वापिस लीजिए । मैं राजद्रोही नहीं बनना चाहता । सेठकी बातें सुनकर राजा कुछ मुसकराये और बोले—अच्छा, इन वस्तुओंको तो रहने दो, पर तुम उस चोरको पकड़ो ॥ १३२–१३४ ॥

सेठ राजाके पाससे घर आया और अपनी उस कन्यासे कहने लगा—हे कल्कमूर्ति, क्या तू अपने पतिको जानती है ? पुत्रीने कहा—जानती हूँ, तात, किन्तु केवल उनके पैर पखारनेके द्वारा । सेठने जाकर यह बात राजासे कही । राजाने कहा—इस बातकी खोजबीन करनेके लिए मैं अपने समस्त परिवारके लोगों सहित शीघ्र तुम्हारे गृहमें भोजन करूँगा । 'अच्छी बात है महाराज' यह कहकर सेठ अपने घर लौट आया । उसने भोजनकी सब तैयारी की और राजाको निमन्त्रण भेज दिया । अभ्यागतोंके आनेपर तिलकमती अपनी आँखें बाँधकर उनके पैर धुलवाने लगी । उसने अनेकोंके पैर धुलवाये और कहती गई—यह नहीं है,यह नहीं है,यह भी नहीं है । जब राजाकी बारी आई,तब वह उनके चरण-कमलोंका स्पर्श करते ही बोल उठी—हे पिता, यही वह चोर है जो रतिका मन्मथके समान मेरा पति हुआ है । तिलकमतीकी यह बात सुनकर समस्त क्षत्रिय राजाकी ओर देखते हुए हँस पड़े और बोले—क्या यह बात भी सत्य हो सकती है ? अपने क्षत्रिय बन्धुओंको हँसते हुए देखकर राजा बोले—अरे, व्यर्थ हँसी मत करो । सचमुच मैं ही वह चोर हूँ । तब उन्होंने पूछा—हे देव, यह कैसी बात है ? इसके उत्तरमें राजाने अपना समस्त पूर्व वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १३५–१४० ॥

इस प्रकार जब राजाने तिलकमतीका पति होना स्वीकार कर लिया, तब सब लोग बोल उठे—धन्य है यह कन्या जिसने राजाको अपना वर पाया । इसने पूर्व जन्ममें कैसा भक्तिपूर्वक व्रत पालन किया होगा ? भोजनके उपरान्त उस राजमान्य सेठने विवाहका महोत्सव कराया और बन्धुमति सेठानीका काला मुँह । दुर्जन साधुको दुख पहुँचाता है, किन्तु उससे साधुको विशेष

दुःखयत्यसुहृत्साधुं स चैति पुरुसम्पदम् ।
तापमातनुते भानुः श्रियमेति सरोरुहम् ॥ १४३ ॥
अथ पट्टमहादेवीपदमाप्य महासती ।
अलालयत्पदौ राज्ञीसहस्रशिरसां ततौ ॥ १४४ ॥
समं पत्यैकदा जैनीं जगाम वसतिं जिनम् ।
पूजयित्वानमत्साध्वी मुनीन्द्रं श्रुतसागरम् ॥ १४५ ॥
नृपः प्राह समाकर्ण्य धर्मं कर्मान्तकारिणम् ।
मुने मम महादेव्या किं पुरा सुकृतं कृतम् ॥ १४६ ॥
जगौ योगीश्वरः सर्वं पूर्ववृत्तं शुभाशुभम् ।
प्रभावं तु विशेषेण सुगन्धदशमीभवम् ॥ १४७ ॥
प्रविश्य तत्सदः कोऽपि देवो देवं जिनं श्रुतम् ।
गुरुं प्रणम्य तद्देवीपादयोर्न्यपतद् भृशम् ॥ १४८ ॥
स्वामिनि त्वत्प्रसङ्गेन सुगन्धदशमीव्रतम् ।
मया विद्याधरेणेदं सता पूर्वमनुष्ठितम् ॥ १४९ ॥
तेनाहमभवं स्वर्गे महर्द्धिरमराधिपः ।
धर्महेतुरभूर्देवि ततस्त्वां द्रष्टुमागतः ॥ १५० ॥
एवमाभाष्य तां दिव्यैरर्चयद्वस्त्रभूषणैः ।
जनन्यसि ममेत्युक्त्वा प्रणम्य गतवान् दिवम् ॥ १५१ ॥
तत्प्रभावं समीक्ष्यैते सर्वे भूयोऽपि तद्व्रतम् ।
सञ्जातप्रत्ययं चक्रुः शक्रादिसुखसाधनम् ॥ १५२ ॥

समृद्धि ही प्राप्त होती है। सूर्य ताप देता है, किन्तु उससे कमल शोभा रूपी लक्ष्मीको ही प्राप्त होता है। अब तिलकमती पट्टमहारानीके पदको प्राप्त हो गई और अपने पैरोंको सहस्रों रानियोंके सिरोंकी पंक्तिपर शोभित करने लगी ॥ १४१-१४४ ॥

एक दिन रानी तिलकमती अपने पति महाराज कनकप्रभके साथ जिन-मन्दिरको गई। वहाँ उस साध्वीने जिनेन्द्र भगवानकी पूजा की और श्रुतसागर मुनीन्द्रको नमस्कार किया। राजाने कर्मक्षयकारी धर्मका उपदेश सुनकर मुनिराजसे पूछा—हे मुनीश्वर, मेरी इस महादेवीने अपने पूर्व जन्ममें कौन-सा सुकृत कमाया था ? राजाके इस प्रश्नके उत्तरमें योगीश्वरने तिलकमतीके पूर्वजन्म सम्बन्धी समस्त शुभ और अशुभ कर्मोंके फलका वृत्तान्त सुनाया। विशेष रूपसे मुनिराजने राजासे सुगन्धदशमी व्रतके प्रभावका वर्णन किया ॥ १४५-१४७ ॥

इसी अवसरपर उस सभामें किसी एक देवने प्रवेश किया। उसने जिनेन्द्र देव, जैन-शास्त्र और जैन गुरुको प्रणाम किया और फिर वह महादेवी तिलकमतीके चरणोंमें आ गिरा। वह बोला—हे स्वामिनि, अपने विद्याधर रूप पूर्वजन्ममें तुम्हारे ही प्रसंगसे मैंने सुगन्धदशमी व्रतका अनुष्ठान किया था। उसी व्रतानुष्ठानके प्रभावसे मैं स्वर्गमें महान् ऋद्धिवान् देवेन्द्र हुआ हूँ। हे देवि, तुम मेरे धर्म-साधनमें कारणीभूत हुई थीं,इसीसे तुम्हारे दर्शन करनेके लिए मैं यहाँ आया हूँ। इस प्रकार कहकर उसने दिव्य वस्त्र और भूषणोंसे रानीकी अर्चना की और बोला—हे देवि, तुम मेरी जननी हो। इतना कहकर और रानीको प्रणाम करके वह देव आकाशमें चला गया ॥ १४८-१५१ ॥

सुगन्धदशमी व्रतके इस प्रकार माहात्म्यको देखकर वहाँ उपस्थित समस्त लोगोंका और

तिलकादिमतिः सार्धं नृपोऽपि कनकप्रभः ।
प्रणम्य परमानन्दाज्जग्मतुर्निजमन्दिरम् ॥ १५३ ॥
पात्रेषु ददती दानं पूजयन्ती जिनेश्वरम् ।
पालयन्ती सुदृक् शीलं सोपवासं स्थिता सुखम् ॥ १५४ ॥
विधाय विधिना साध्वी सुगन्धदशमीव्रतम् ।
शुभध्यानेन च प्राप्य प्रायोपगमनान्मृतिम् ॥ १५५ ॥
द्विसागरायुरीशाने बभूव सुरसत्तमः ।
निन्द्यस्त्रैणच्युतो भाविभवनिर्वृतिरद्भुतः ॥ १५६ ॥
सुपर्वे वनिताकम्रकरसंवाहितक्रमः ।
पुराभवद्यतः शीलव्रतेषु सहितक्रमः ॥ १५७ ॥
शशाङ्ककरसङ्काशैश्चामरैरेष वीजितः ।
यतः कामोऽङ्गिनां तेन भवदुःखसखो जितः ॥ १५८ ॥
व्योमयानमथारुह्य स्म याति स मुदा वने ।
नमश्चकार येनायं जन्तुजातं सदा वने ॥ १५९ ॥
वन्दते स्म जिनाधीशपादपद्मानघेन सः ।
आराधितो मुदा येन पुरा विधिरनेन सः ॥ १६० ॥
कृतिरिति यतिविद्यानन्दिदेवोपदेशा-
ज्जिनविधुवरभक्तेर्वर्णिनस्तु श्रुताब्धेः ।
विबुधहृदयमुक्तामालिकेव प्रणीता
सुकृतधनसमर्घ्यां गृह्णतां तां विनीताः ॥ १६१ ॥

इति वर्णिना श्रुतसागरेण विरचिता सुगन्धदशमी कथा समाप्ता ।

भी दृढ़ विश्वास हो गया और वे सभी उस इन्द्रादि सुखोंके साधनभूत व्रतके पालनमें तत्पर हो गये। तिलकमती रानी और कनकप्रभ राजा साधुको प्रणाम करके आनन्द सहित अपने भवनको चले गये ॥ १५२-१५३ ॥

अब तिलकमती रानी पात्रोंको विधिपूर्वक दान देतीं, जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा करतीं, सम्यग्दर्शन और शीलका पालन करतीं व उपवास धारण करती हुई सुखपूर्वक रहने लगीं। उन्होंने विधिपूर्वक सुगन्धदशमी व्रत करके प्रायोपगमन धारण किया और शुभ ध्यान पूर्वक समाधि मरण किया। इस धर्म-साधनाके प्रभावसे उनका जीव अपनी निन्द्य स्त्री पर्यायको छोड़कर ईशान स्वर्गमें दो सागर कालकी आयुवाला देव हुआ और अगले भवमें उसे संसारसे मुक्तिरूप अद्भुत फल प्राप्त होगा। पूर्व जन्ममें उसने शील-व्रतोंमें अपनी हित-कामनासे आचरण किया, इसीके फलस्वरूप उसे सुन्दर वनिताओंके कोमल हाथों द्वारा अपने पैर दबानेको मिले। उसने पूर्वमें संसारके दुखोंको देनेवाले कामको जीता था, इसीलिए उसे अब चन्द्रकिरणोंके समान उज्ज्वल चामरों द्वारा पंखा झले जानेका सुख मिला। उसने सदा वनमें समस्त जीव-जन्तुओंको नमस्कार किया था, इसीलिए अब उसे विमानमें बैठकर हर्षपूर्वक वनमें क्रीड़ा निमित्त जानेका सुख मिलने लगा। पहले उसने मोदसे जिन भगवान्‌की विधिपूर्वक आराधना की थी, इसीलिए अब उसे जिनेन्द्रके पापहारी चरणारविन्दकी वन्दना करनेको मिली ॥ १५४-१६० ॥

इस सुगन्धदशमी कथाकी रचना यति विद्यानन्दि देवके उपदेशसे जिनचन्द्रमें श्रेष्ठ भक्ति रखनेवाले ब्रह्मचारी श्रुतसागरने विद्वानोंके हृदयकी मौक्तिकमालके समान की है। इसे धार्मिक जन सुकृत और धनके समान ग्रहण करें ॥ १६१ ॥

इति वर्णी श्रुतसागर द्वारा विरचित सुगन्धदशमी कथा समाप्त ।

सुगन्धदशमीकथा

[गुजराती]

सुगन्धदशमीकथा

[गुजराती]

[१]

पंच परम गुरु पंच परम गुरु प्रणमेसु[1] सरस्वति स्वामी वलि विनव्यु[2] ।
श्री सकलकीरति गुणसार भुवनकीरति गुरु उपदेस्यु[3] ।।
करस्यु रास निरभरं[4] सुगंधदशमि कथा रूवडी[5] ।
ब्रह्म जिनदास भणै सार भवियण जन संचोखवा[6] ।
जिम होइ पुण्य विस्तार जिम होइ पुण्य विस्तार ।।

[२] भास जसोधरनी

जंबुय दीप[7] मझारि सार भरत क्षेत्र वखाणो ।
कासिय देस छे रूवडो वानारसि नयर सुजाणो ।।१।।
पद्मनाभि तिनि नयरि राव गुणवंत अपार ।
जैन धरम करै निरमलो त्रिभुवन भवतार ।।२।।
श्रीमति राणी तेह तणी रूप तणो निधान ।
धर्म विवेक बहु रूवडा[8] मन माहि बहु मान ।।३।।
वसंत मास अति रूवडो आव्यो सविशाल ।
वनसपती अति गहगही फलफूल गुणमाल ।।४।।
पद्मनाभि राजा रूवडो[9] चाल्यो गुणवंत ।
क्रीडा करवा निरमलो ते छे जयवंत ।।५।।
सयल सजनस्यु निरभर्यो परिवार विशाल ।
गज वर[10] रथ बहु पालखी तुरंगम गुणमाल ।।६।।
साम्हे मुनिवर भेटिया स्वामी गुणवंत ।
सुदर्शन नाम रूवडा संजम जयवंत ।।७।।
त्रण ज्ञान करि लंकर्यो चारित्र चुडामनि ।
हुइ पाखडे[11] पारणौ करे सुखखानि ।।८।।
तिनि अवसर राजा हरषियो वंद्या गुरु[12] संग ।
रानिए परते इमि कहि राजा मनि रंग ।।९।।
तम्हे पाछा वलो सुंदरि मुनिवर गुणवंत ।
पारणौ कराव्यो निरमलो भाव धरि जयवंत ।।१०।।

---

१. स प्रनमिणं, २. स स्तक, ३. अ उपस्यु, ४. स हूं निरमलो, ५. स निरमली, ६. अ ब जं तस छोषवा, ७. अ ब जंबुद्वीप, ८. अ पाडा ८. स विहु नदी ९. अ आव्यो से रूवडो तक का पाठ छूट गया है, १०. ब स गोवर । ११. ब स पखवाडे, १२. स जग गुरु ।

दिगंबर गुरु परम पात्र जो दीजै दान ।
मनवांछित फल पामियइ वलि उपजै ज्ञान ॥११॥
ते रानि[1] मिथ्यातनि मान्यो नहि बात[2] ।
भयथकि पाछि वली सुख कियौ निज कालौ ॥१२॥
मुनि पडगाह्या निरमला आवी निज गेह ।
सुभ्क रमती[3] विघन कियौ ते बलें[4] मुझ देह ॥१३॥
इम[5] मन माहि चिंतवि कोप कियौ तिनि थोर ।
सद्गुरु काजै विरुध दान दियौ तिने घोर ॥१४॥
पाणि पात्र जव्ही पडियौ दान तव्ही लियौ मुनिस्वामि ।
राग द्वेष थका वेगला समता[6] गुणमाल ॥१५॥
कटुक आहार तौ अति अपार ते चटो मुनि काजे ।
विह्वल शरीर हवौ गुरु तणो[7] शरीर तब धूजै ॥१६॥
तिहा थका सद गुरु आविया जिन भुवने उत्तंग ।
श्रावक श्राविका रूवडी आवि तिहा चंग ॥१७॥
हाहाकार तव उपनौ[8] भवियण[9] दुख धरै ।
सार[10] करि अति रूवडो भगति बहु करे ॥१८॥
ओषध[11] दान दिये निरमलौ वैयावृत्य करे चंग ।
दूहा—विनय सहित गुरु राखिया आपणे मनि रंग ॥१९॥
दुष्ट आहार तिहा जिरव्यौ मुनिवर हुआ निरोग ।
स्वामी वनमाही गया ध्यान धरो आरोग ॥२०॥
ए कथा हवे इहा रही अवर[12] सुणो सुजान ।
ब्रह्म जिनदास इणि परि भणे जिम जाण्यौ गुण ज्ञान ॥२१॥

[३] भास विनतिनी

विरुध आहार देइ थोर रानि आवि उतावलिए ।
राजा कन्हे वनमाहि पाप जोडि करी कसमलिए ॥१॥
तव राजानै मोह तेहना उपरि ठलि[13] गयौए ।
ततक्षणि लागु पाय राजा कोप धरि रह्यौए ॥२॥
सौभाग गयौ तेह थोर दोभाग आवियो अतिघणोए ।
अपजस उपनौ अतिथोर जस गयौ बहु तेह तणोए ॥३॥
दुरगंध हवौ शरीर कोढिनि होइते पापिनिए ।
पछताप करै ते जान मे बुरो कियौ मिथ्यातणिए ॥४॥

१. स रानी घनी, २. स तेह गमे नहि बोल, ३. स मूढमती, ४. ब स तिणे बले, ५. स इणि परि, ६. स संत, ७. अ 'शरीर हवौ गुरु तणौ' छूट गया है, ८. स निपणौ, ९. अ भविय, १०. अ नार, ११. स ओखद, १२. स हवे अवर कथा, १३. स गली ।

सदगुरु आव्या मुझ घरि चंग ते पापिनि कोप कर्‍यौए[1] ।
छति सामग्री होति मुझ गेह विरुद्ध आहार स्वामिनइ दियोए ॥५॥
ते पाप लागौ मुझ थोर तिन पापइ[2] रोगिनिहु रहिए[3] ।
महत गयौ मुझ सार कीरति सदगुरु[4] अति घणीए ॥६॥
इम जाणि कीजै बहु सेव देव गुरु तिनि निरमलाए ।
जिम मन वांछित फल बहु होइ मति उपजै वलि उजलिए ॥७॥
राजाइ जाण्यौ सयल वृत्तांत ते उपसर्ग राणिय कियौए ।
तव राजा मनि कोप अपार राणि उपरि घणो कियोए[5] ॥८॥
उदास मुकी राणी गुणहीन राय मनि दुःख उपनौए ।
मे पापी दियो उपदेश ए पाप मुझ निपर्‍णौए[6] ॥९॥
इम कहि सदगुरु कन्हे जाइ प्रायश्चित लियौ अतिघणोए ।
निंदा गर्हि कीधी आपनि थोर पाप निगमौ राजा आपणोए ॥१०॥
राणि आरतध्यान मरेवि भैंस हुई ते पापिनिए ।
दुःख भोगवै तिहा अपार माय विहुनि दया मणिए ॥११॥
पाणी पीवा गई एक वार सरोवर माहि दुबलिए ।
कादव माहि खुती जाण दुख दिगंति[7] हावलिए ॥१२॥
मरण पामी वलि तिहां[8] थोर सुहरि[9] हुई ते पापिनिए ।
माय पाखै दुःख दिठो थोर वलि मरण पामिय ते[10] ॥१३॥
सांवरि[11] जोनी गइ वलि तिहा दुःख दीठा थोर ।
वलि मरन पापिनि दिन फल भोगवै पाप तणोए ॥१४॥
अंतधरि वलि उपनि धीह दुरगंध पापे जडिए ।
माय मरण पामी वलि जाणि जाणौ दुःख तणी घडिए ॥१५॥
जिम जिम मोठी होइ ते बाल तिमि तिम दुरगंध वाधे घणोए ।
गंध सहि सके नहि कोइ सयल सजन तेह[12] तणोए ॥१६॥
पछे नाखि ते वनह मझार ते एकलि दुःखे भरिए ।
कुंबर[13] फल खायै जानि पट वरिस लै ते जीवोए[14] ॥१७॥
पछे आव्या मुनिवर भवतार श्रुतसागर मुनि निरमलाए ।
गुणसागर सरिसो छइ शिष्य तप संजम करै उजलाए ॥१८॥
ते चंडालि दिठी तिणे ठामे गुणसागर तव बोलियाए ।
कवन पाप किया अनै थोर तेह कहो गुण तोलियाए[15] ॥१९॥

---

१. ब स कियोए, २. स पापे ते, ३. स हुइए, ४. स गई मझ, ५. अ यह पंक्ति छूट गया है। ६. स लागियोए, ७. स देख्या तिणे, ८. स ते वेलि, ९. स सूसरि, १०. स मुई मिथ्यातणिए, ११. ब साठरि, १२. स एह, १३. स उंबर, १४. स सेवियाए, १५. स ते कहो स्वामी गुणनिलए ।

दूहा—सदगुरु स्वामी बोलिया मधुरिय सुललित वानि।
सुणो वच्छ तम्हे रूवडा भवांतर कहु दुःखखानि ॥२०॥
श्रीमति राणी आदि करि कही सयल अवतार।
तब दुरगंधा मनउल्हसू[1] वांद्या सदगुरु पाय ॥२१॥
आठ मूलगुण तिनि लिया वार वरत वलि चंग।
पाप सयल निवारिया धर्म लिधो[2] उत्तंग ॥२२॥

[४] भास चौपईनी

तिहा थकि मरन पामि वलि जान। उजेनी उपनी दुखखान ॥
ब्राम्हननै घरि बेटी थोर। वलि दुरगंधा हुई घोर ॥१॥
बाप मरण पामी[3] तिनि वार। पाम्या दुःख तेनि अपार[4] ॥
हलु हलु मोठी हुइ ते जाणि। माता मुई वली दुखखाणि ॥२॥
काष्ट भार आनै ते घोर। पुण्य विन कष्ट करइ घनघोर ॥
इनि परि पेट भरै आपनौ। दुःख सहै तिहा अतिघणौ ॥३॥
तिनि अवसरि मुनिवर भवतार। सुदर्शन आव्या गुणधार ॥
समकितज्ञानचरितगुणवंत। तप करै स्वामी जयवंत ॥४॥
अश्वसेन राजा तिहा अतिचंग। वाँदवा[5] आव्या निज मनि रंग ॥
पूज्या चरण कमल सार। पूछौ धर्म तणौ विचार ॥५॥
भवियण आव्या तिहा वलि जाणि। सांभलवा गुरु निरमल वानि ॥
ते लोक दीठा अतिचंग। दुरगंधा हरषी मनरंग[6] ॥६॥
काष्टभार नाख्यौ तिनि वार। ते आवी तिहा सविचार।
संघसहित दीठा मुनिँराय। जाति स्मरन उपनौ तिनि ठाय ॥७॥
मुरछा[7] आवि पडी तिनि ठाम। राजा पूछै तब सिर नाम ॥
कहौ स्वामि त्रिभुवनभवतार। कवन गुणे गुण पडिय नार ॥८॥
सदगुरु कहे तब मधुरिय वानि। भवांतर कह्या सवे जानि ॥
तब विस्मय पाम्या ते राय। वलि पूज्या[8] स्वामी मुनिराय ॥९॥
धरम वरत दियो एह सार। जिम ए छूटै पाप अपार ॥
सुगंध दशमि वरत अति चंग। ए वरत करौ उत्तंग ॥१०॥
तिनि अवसरि विद्याधर सार। जयकुमार तेह नाम विचार ॥
ते आव्यौ तिनि अवसरि जान। सुनवा सदगुरु सुललित वान ॥११॥
भाद्रव मास उजालो पाख। दशमी के दिन करौ उपास ॥
पाछै जिनवर भवन उत्तंग। जाउ भवियण मनि रंग ॥१२॥

---

१. स उपसम्यु, २. स लियो, ३. स पाम्यो, ४. स वारोवार, ५. स वांदन, ६. ब मनमाहि, ७. अ ब प्रति, ८. अ ब दुरछा, ९. स पूछे।

पंच वरण[1] स्वस्तिक मांडियौ । दश कमल करौ अति सविचार ॥
(तेह उपरि कलस मुकौ एक चंग । जिनवर बिंब थाप्यो मन रंग)[2] ॥१३॥
अष्ट प्रकारी पूज्या सार । पूज्या जिनवर त्रिभुवन सार[3] ॥
दश अष्टक दीजे गुणवंत । स्तवन दश पढिजे[4] जयवंत ॥१४॥
छंद छप्पय[5] जयमाला सार । विनति पढिजे भवतार ॥
रास भास गीत सविशाल । धवल मंगल गीत गुणमाल ॥१५॥
अष्टोत्तर सौ जपौ वलि जाप । पुष्पगंध लेइ गुणमाल[6] ॥
इनि परि महोछव कीजे चंग । राति जागरण मनि रंग ॥१६॥
पछै निजघरि आवौ गुणवंत । जिनवर स्वामि पूजौ जयवंत ॥
सुपात्रह दीजै वलि दान । विनय भाव सहित गुण आण ॥१७॥
इनि परि दश वरस लागै सार । ए वरत कीजै भवतार ॥
वरत पुरे उजवनौ चंग । दश दश वाना चढावो मनिरंग ॥१८॥
पकवान फल फूल अपार । उपकरण आनो ते अपार[7] ॥
चंद्रोपक आदि अति चंग । विस्तारौ जिनभवने उत्तंग ॥१९॥
उजवनौ जो सकत नहि होइ । तो व्रत बिमनौ करौ सहु कोइ ॥
सदगुरु वानी सांभलि चित्त । भवियण आनंदा जयवंत ॥२०॥

दूहा—वरत लियौ सदगुरु[8] कन्है श्रावक भवियण चंग ।
राय विद्याधर रूवडा राणिय सहित अभंग ॥२१॥
दुरगंधा वलि व्रत लियौ सुगंधदशमि भवतार ।
नमोस्तु कियौ अतिरूवडौ निपनौ[9] जयजयकार ॥२२॥

[५] भास रासनी

पछै निजघरि आवियाए सयल श्रावक गुणवंत तो ।
दशमि वरत कियौ रूवडोए जिनभुवने जयवंत तो ॥१॥
दश वरस लगौ रूवडोए पछै उजवनौ सार तो ।
सयल संघ मिलइ निरमलोए महोछव जय जयकारतो ॥२॥
पूज्या श्रावकै दियौए ते ब्राह्मणिते सार तो ।
दान मान पाम्या घणुए धर्मफलै सविचारतो ॥३॥
दुरगंध फिटि गयौए सरीर हुवौ निरोग तो ।
संजम श्री आर्जका कन्हेए अनुव्रत लियो गुणजान तो ॥४॥
पछै आयु थोडौ हवोए कनक राजा जयवंत तो ।
कनकमाला राणि तेह तणिए रूपसौभाग अपार तो ॥५॥

---

१. अ दिवस, २. अ छुट गया है। ३. अ सार, ४. स पढिजो, ५. स वस्तु स्तवन, ६. स गुण ग्याग, ७. स सविशाल ८. स ते वरत लियौ गुरु ९. अ निपनं ।

धरम करम करै जिनवर ताणौ समकित पालै भवतार तो ।
जिनदास साह तिहा बसिए जिनदत्ता तेह नारि तो ॥६॥
..................................[1] ।
तेह बेहु कुखे उपनाए सुगंध कुवरि सविचार तो ॥७॥
रूप सौभागे आगलिए शरीर सुगंध हुवौ चंग तो ।
माय बाप सुख उपनोए महोछव कियौ मनि रंग तो ॥८॥
असुभ करम फलै माता मुइए दुख उपनौ तव घोर तो ।
हा हा सुंदरि रूवडीए धर्मवंती गुण थोर तो ॥९॥
सजन सयल मनि दुख धरेए जिनदत्त विन सविशाल तो ।
जिनदास साह संबोधियोए[2] क्षणि दुख धरौ गुणमाल तो ॥१०॥
वलि परनि राणि[3] सुंदरिए जिम घर वसइ तम्ह सार तो ।
बेटिय तम्ह तणी उछरेए वंस वाधइ अपार तो ॥११॥
तव साह बोलि मानियोए परनि नारि सविशाल तो ।
रूपिनि नारि नाम छे तेह तणोए सागरसाहनी बाल तो ॥१२॥
तेनिए बेटि जाइ रूवडिए शामा तेह तनो नाम तो ।
रूपिणि मोह करे अति घणोए तेह उपरि बहु मान तो ॥१३॥
सावकि पुत्री देखि करीए द्वेष करै अति घोर तो ।
वतुं[4] करावे अति घणुए कोप करै घन घोर तो ॥१४॥
बेटिए तणौ दुःख दियौए[5] साह कहै तव बात तो ।
सुगंध कुवरि दुरबलि[6] हुइए मलिण दिसइ तेह गात्र तो ॥१५॥
रूपिनि तव कोप चढोए बोली करकस वानि तो ।
बांदिए अनाचौ तम्ह एहनीए जिम होइ सुख खानि तो ॥१६॥
तव साह बांदि ल्यावोए आनि निज घर सार तो ।
ते बांदि तिने वस करिए रूपिनि कठिन अधीर[7] तो ॥१७॥
तव साह जुवौ रखौए बेटि सयरिसौ जानिजो ।
रंघन करइ बीजि[8] रूवडिए जिमे बापे गुणवंत तो ॥१८॥
तव सुख पामियोए बाप पुत्रि गुणवंत तो ।
देखी न सकै ते पापिनिए कपट करै वलि चंग[9] तो ॥१९॥
वेलु घालि धान माहे घनिए मीठु घालि वलि थोर तो ।
साह जिमवा बैसै निरमलोए दुख उपजै तव घोर तो ॥२०॥

---

१. यह पंक्ति तीनों प्रतियोंमें नहीं है । स प्रतिमें ११ वें पद्यको तीन पंक्तियोंका मानकर श्लोकोंका अनुक्रम ठीक कर लिया है ।

२. तव बोधियोए, ३. ब स नारि, ४. अ ब वतु, ५. स देखियोए, ६. स दूबलि, ७. स काढो अपार, ८. स बेटि, ९. स बलिवंत ।

कपट जाण्यौ तव नारि तणौए साह भाख्यौ[1] मन माहि तो ।
त्रियाचरित्र कले नहिए ज्ञान दृष्टि इम चाहि तो ॥२१॥
इम जाणि साह बोलियौए मधुरिय सुललित वानि तो ।
ए बेटि छइ तम्ह[2] तणौए तम्ह खोलि घालि जानि तो ॥२२॥

दूहा—इम कहि साह निरमलौ धर्मध्यान करै सार ।
समकित पालै रूवडौ व्रत सहित भवतार ॥२३॥
साह बोलाव्यौ निरमलौ राजाइ गुणवंत[3] ।
रत्न कारनि ते मोकल्यौ दिपांतरै जयवंत ॥२४॥
तव साह घरि आवियो सिख दिइ तव सार ।
निज नारीते रूवडी सुखे रहिजो सविचार ॥२५॥
दुहिं[4] कन्या छै रूवडी परनावोजो तम्हे चंग ।
घर वर रूडा देखि करि[5] सजन सहित उत्तंग ॥२६॥
इम कहि साह निसरयो रत्नदीप भणि सार ।
नमोकार मनमाहि धरि सनी सनी तेनि वार ॥२७॥
ए कथा हवे इहा रही अवर[6] सुनो सुज्ञान ।
ब्रह्म जिनदास भणे रूवडौ जिम जाणौ गुणज्ञान ॥२८॥

[६] भास सुणो सुंदरिनी

तिने अवसरि साह आवियोए-सुणो सुंदरि-चांगदत्त तेह नाम ।
चांगवती नारी तेह तणीए-सुणो सुंदरि-रूपसौभागनो ठाम ॥१॥
तेह बेहु कुखे उपनिए[7]-सुणो सुंदरि-गुणपाल गुणवंत ।
रूप सौभागै आगलौए-सुणो सुंदरि-सुललित छै जयवंत ॥२॥
तेहनै मागवा कारणौए-सुणो सुंदरि-कलिंग[8] गाम थका जानि ।
आव्या सरस सुहावनाए-सुणो सुंदरि-रत्नपुर सुख खानि ॥३॥
सुगंधा तणौ रूप देखियोए-सुन सुंदरि-रीझौ[9] ते अपार ।
मागनौ करै अति रूवडोए-सुन सुंदरि-विनय सहित सविचार ॥४॥
अवगुण बोली अति घणाए-सुन सुंदरि-रूपिनि अतिहि सविशाल ।
बडी बेटीकौ अति घणोए-सुन सुंदरि-वखाणौ[10] निज बाल ॥५॥
चांगदत्त साह बोलियोए-सुन सुंदरि-ते कन्या तम्ह देउ ।
अवगुण सयल मे पतगरया-सुन सुंदरि-इम जाण्यो तम्हे भेउ[11] ॥६॥
तव विवाह तिणे मेल्योए-सुन सुंदरि-सुगंध कुवरिनौ[12] रंग ।
लगन धर्यो तव रूवडोए-सुन सुंदरि-महोछव होइ तिहा रंग ॥७॥

---

१. स चितवे २. स सुभ, ३. स अति जयवंत, ४. स तुहि, ५. स देखो रूवडि, ६. स अवर कथा, ७. स उपनोए, ८. स कलंक, ९. स रीझ्या, १०. स वखाण्या, ११. स भाव, १२. स सुगंधिनौ तव ।

लगन दिवस आव्यो रूवडाए-सुन सुंदरि-रूपिनि बोली तव वानि ।
सुगंधकुवरि तम्हे सुणोए-सुन सुंदरि-जिम होइ सुख खानि ॥८॥
विवाह करू हवे तम्ह तणौए-सुन सुंदरि-आव्यौ तम्ह अम्ह साथ ।
इम कहि लेई निसरिए-सुन सुंदरि-साहिय जमणे हाथ[1] ॥९॥
मसान माहि लेइ करिए-सुन-सुंदरि-मूकिए ते सुणो बाल ।
चहु गमा दिप बलै घणाए-सुन सुंदरि-सुगंधा बेटि गुणमाल ॥१०॥
चहु गमा च्यारि ध्वजा रोपियोए-सुन सुंदरि-लहलहै[2] अतिहि अपार ।
इहा आवे कुवर रूवडोए-सुन सुंदरि-ते परणीजो सविचार ॥११॥
इम कहि पाछि वलिए-सुन सुंदरि-आविए निज घरि चंग ।
कोलाहल करइ अति घणोए-सुन सुंदरि-जन जन आगलि रंग[3] ॥१२॥
जो जो सजन सुहावणाए-सुन सुंदरि-जो जो बाल गोपाल ।
विवाह मेलव्यो[4] मे रूवडिए-सुन सुंदरि-कुवरि नहि सविचार[5] ॥१३॥
विवाही[6] ते आवियाए-सुन सुंदरि-किहा गइ सुगंधि कुवार ।
हा हा घरि हुवौ घणौए-सुन सुंदरि-जोवै घर-घर बाल ॥१४॥
मे कहियौ होतो आग लिए-सुन सुंदरि-ए बेटी नहि संत ।
विवाह दिन नासी गइए-सुन सुंदरि-तम्हे न जाणौ[7] जयवंत ॥१५॥
तम्हारि पोतै पुण्य घणाए-सुन सुंदरि-भाग्यवंत एह वर ।
पासे न पडिया एह तणाए-सुन सुंदरि-इम जाण्यौ पुण्यधार ॥१६॥
हवे गला किम जाइ-सुन सुंदरि-तम्हे सजन गुणवंत ।
मुझ बेटि गुण आगलिए-सुन सुंदरि-ते दियु जयवंत ॥१७॥
तव तिणे बोले मानियौए-सुन सुंदरि-परणि स्यामा सविचार ।
ते गया निज स्थानकेए-सुन सुंदरि-धर्म करइ भवतार ॥१८॥
ए कथा हवे इहा रहिए-सुणो सुंदरि-अवर सुणो गुणवंत ।
तम्ह जिनदास भणे रूवडोए-सुन सुंदरि-जिम सुख होई[8] महंत ॥१९॥

दूहा—सुगंध कुवरि रूवडी मसान माहि बेठी जाण ।
एकलडी गुणे आगली रूप सियल[9] गुणखान ॥२०॥
ते नयरकौ राजियौ कनकप्रभ तेह नाम ।
मध्यराति ते उठियो गोख बैठो गुण जाने[10] ॥२१॥
दिपमाला दिठि रूवडी मसान माहि सविसाल ।
कुवरि दीठि वलि निरमलि विस्मय पाम्यौ गुणमाल ॥२२॥
कौतुक जोवा कारणेइ एकलडोए जयवंत ।
खडग हाती धरि करी आव्यौ तेह गुणवंत[11] ॥२३॥

---

१. स घरिय जिम नइ हाथ, २. स लहकंती, ३. स जन आगलि रडे मनि रंग, ४. स दीठो वर, ५. स सविघाल, ६. स विहाई, ७. स मानौ, ८. स कहइ, ९. स शील, १०. स गोष्टी करइ सुजान, ११. स आव्या तिहा जयवंत ।

[७] भास हेलकी

उभौ रह्यौ तिहा सार बोल्यौ वानि सुहावनी-हेलि ।
कहो सुंदरि तम्हे कोण एकलडी गुण आगली-हेलि ॥१॥
की सग्गतणी देवि की अपसरा[1] सोहजलो-हेलि ।
काइ नागिनि गुणवंत की विद्याधरि निरमली-हेलि ॥२॥
केह तणि कुवरि सुजान मसान माहि काइ एकली-हेलि ।
रौद्र दिसे[2] ए ठाम कवन पापइ तू मोकली-हेलि ॥३॥
ते तव बोलि सार मधुरिय वानि सोहावनी-हेलि ।
जिनदत्त साह मुझतणौ बाप जिनमति माता मुझ तणी-हेलि ॥४॥
मुझ जनम्या पुठे चंग माय मुई मुझ रूवडी-हेलि ।
मुझ तणौ पिता जान अवर नारी कीधी पापे जडी-हेलि ॥५॥
मुझ पिता गुणवंत राजाइ मोकल्यो दिपांतर-हेलि ।
मुझ तणी सावकि माय तिणि इहा धरी-हेलि ॥६॥
इहा वर आवजे चंग ते परणौ तम्हे रूवडो-हेलि ।
ते परणीजे चंग सुललित कुवरि रूपे जड्यो-हेलि ॥७॥
तव जाण्यो ते भाव राजा कहै सुणौ सुंदरि-हेलि ।
हूँ आव्यो[3] ते वर मुझ परणो तम्हे सुंदरी-हेलि ॥८॥
इम कहि तिणि वार बैठो तिहा गुण आगलो-हेलि ।
हरषवदन गुणवंत परनि करी मोहे[4] सोहजलो-हेलि ॥९॥
पारनि करि तिहा सार पछि निसर्यो घरी भणी-हेलि ।
पालव धरियो जाण कुवरि तिहा बोलियो[5]-हेलि ॥१०॥
मुझ परनिनइ आज इनि जाऊ तम्हे रूवडी-हेलि ।
हु तुम विन केथि[6] जाउ मझ मन तम्ह गुणे जड्यो-हेलि ॥११॥
राजा कहै सुणो देवि रयणि तम्हे घरि आविसु-हेलि ।
तव लीधी तिणे भाप दिसै निज काम करु-हेलि ॥१२॥
कुवरि कहि सुजाण दिसे कैसु काम करुं[7]-हेलि ।
तव बोले ते राव बात हुं गोवाल तम्हे मणि धरो[8] ॥१३॥
इम कहि गुणवंत आव्यौ निज घरि निरमलि-हेलि ।
कही नही ते बात केह आगले ते सोहजलौ-हेलि ॥१४॥
दिनकर उग्यो सार वलि रूपिनि कलकल करै-हेलि ।
सहज[9] सुणौ तम्हे बात बेटि जोवा जाउ रूवडी[10]-हेलि ॥१५॥
आव्यौ तम्ह अम्ह साथ वनमाहि जोवा जाउ रूवडी-हेलि ।
एणि बेटि अम्ह थोर संताव्या दुःख जड्यो-हेलि ॥१६॥

---

१. ब स अपसरा रूप, २. स दिठाइ, ३. स आव्यो तम्ह, ४. स महोछव, ५. स बोली सुजाण, ६. स कंत किहा, ७. स दिसै निज घरि जाइसु, ८. अ ब में यह चरण छूट गया है, ९. ब स सजन, १०. स जोव मनि भाव धरी ।

सजन जाण्यौ तेह भाव रूपिनि दृष्टि छेह आपनि[1]-हेलि ।
मौन करि रह्या सार नावै सरसा आपनि-हेलि ॥१७॥
ते एकली वन माहि जोवा जाइ[2] परपंच करि-हेलि ।
आनि सुगंध कुवरि बडबड करइ निज करि-हेलि ॥१८॥
मे जोड्यो एको[3] विवाह तु कहा गइअ चांगली-हेलि ।
तब बोली ते बानि सरल चित्त[4] अति निरमलो-हेलि ॥१९॥
दूहा—तम्हे मोकलि हू निरमली[5] रहिजो वनमाहि चंग ।
गोवाल एक आवियो तिणेए परणी हुं चाहि[6] ॥२०॥
तब रूपिनि कहि कसमली झूठी तू गवार ।
आपनि सालइ जाइ करि गोवाल परणौ अविचार[7] ॥२१॥
इम कहिते साची हुई लोक न जाणे भेद ।
जिम कुशास्त्र सुनि करि मन आने बहु खेद ॥२२॥
वलि पूछे कुवरी कन्हे कहि आवसे तम्हे वार ।
राति आवसै रूवडौ सुणौ मा सिघार ॥२३॥
इम कहि अति रूवडौ निज घर रहि गुणवंत ।
सुगंधकुवरि रूवडी पुण्य फल जयवंत ॥२४॥

[८] भास गुणराज भास[8] की

रातिए आयौए[9] राय सुगंधकुवरि रूवडोए ।
पान फुलए बहु भोग विशाल ते राजा मोहे जड्योए ॥१॥
पाछलि रयनि चंग राजा निज घर गयौए ।
रुपिणिए पुछि भाव कहो बेटि ते आवियोए ॥२॥
तेह कन्हे मागइजो आज हार गुंजतणौ रूवडौए ।
गवततणाए आभरणए विशाल गोवाल वर रंगे जड्योए ॥३॥
सयल वाणाए माग्याए तिण जाणी राय आनि दिया निरमलिए ।
मोतिय हार विशाल रत्नजडित आनि कंचुकिए ॥४॥
पट[10] कुल तनु आनियौ चुरवलि नवरंग घाटडिए ।
सोलाए आभरण आण्या अतिचंग हिरा मानिक मोति जड्याए ॥५॥
निज राणि तणाए आणि आविया सार नाम अंकित अति रूवडौए[11]।
अतिहरा रुवडा अपारए मन मानिक मोति जड्याए ॥६॥
प्रभात हवो सार राजा राजभवनि गयोए ।
उठियो सुगंधकुवारि सामायिक रुवडो कियौए ॥७॥
पहैए भूषण सार रुपिनि आगल दाखव्याए ।
दिसइए अतिही सुरंग देखि दुःख व्यापियौए ॥८॥

---

१. स दुष्ट छे पापिनि, २. स गई, ३. स ईको, ४. स बात, ५. स मुकी हू एकली, ६. स जाणि, ७. प्र ब सविचार, ८. ब स ब्रह्म, ९. ब आवियो, ९. स आव्या, १०. भ कप, ११. स नाम कीरति स्थाडिए ।

राय राणि तणाए चंग तम्हे कारण कोण दियाए ।
चोरेए परणी जाण इम कहिउ दालियाए ॥९॥
तिणे अवसरि आवियो साह नारि दिय दुख भरए ।
पुछेए कारण बात साह मनि विस्मय करिए ॥१०॥
ते दासत्र्या भूषण सार राय तणा अति रूवडाए ।
परणिए धीह तिणे दिया रते ते लक्षाए[1] ॥११॥
मे कुल घर जोइ सार वर आण्यौ अति निरमलौए ।
उलंघिए[2] मुझ तणु बोल चोर[3] वच्यौ इणे कसमलिए ॥१२॥
देव न हिए इह तणोए चंग कुलक्षनि बेटि तम्ह तणिए ।
सांभलिए तेह तनि वानि साह चिंता करि घणिए ॥१३॥
विस्मयए पामियो सोर एह बात कहु किम घटइए ।
तब दासवाए भूषण सार राय तणौ[4] नाम दिठोए[5] ॥१४॥
झाषा हवौए तब साह मन माहि छिहि[6] घणोए ।
ते आभरण अति सुविशाल ते कलिया रायतणोए ॥१५॥
चाल्यौए राजमंदिर राय भेटौ तिन गुणवंतोए ।
रत्न आण्याए स्वामि अति चंग दिपांतर थकाए जयवंतए ॥१६॥
रत्न दिठाए राजाए तिणे जगा ज्योति[7] अति रुवडाए ।
पुर लोकैए दिठा वलि चंग राय बोल्यौ तब भात्र जडचौए ॥१७॥
कवउण वस्त छै एमाहि सार ते कहो तम्हे निरमलाए ।
जिनदत्तए कहे सुणो स्वामि मुझ वयण अति सोहजलाए ॥१८॥
हु गयौ होतो ए देशाउर सार रत्न आनवा स्वामि तम्ह तणाए ।
रत्नदिप छै अति सुविशाल तिहा दिन लागा अति घणाए ॥१९॥
दूहा—तिणि अवसरि बेटि मुझ तनि परनी वनह मझार ।
मध्यम रयन रूवडी वर आवियो सविचार ॥१॥
जाति कुल नवि जानिवइ नवि दिठो तेह रूप ।
तिणै आभरणए तम्ह तणा आण्या जाणसु[8] भूप ॥२॥

[६] भास चौपईनी

सुगंध कुवरी दीधी चंग । आण्या आभरण अतिहि सुरंग ॥
ए आभरण तम्हे तणा सार । तम्हणे लेउ स्वामि सविचार ॥१॥
तब राजा कहे सुणो तम्हे साह । अवर अम्ह तणौ बहु काज[9] ॥
ते वस्त तम्ह आनो आज । तो सरे तम्ह तनो बहु काज[10] ॥२॥

---

१. स बहु रतनजडयाए, २. स उलट्या, ३. स गोवाल वर, ४. स तणा, ५. स दिठाए, ६. स बिहे, ७. स जगमगता, ८. ब णिसुणो, ९. स अवर वस्तु जोऊ गुण सार, १०. क ब में यह चरण छूट गया है ।

नहि बर चोर अनो बलिवंत । मो छोड तम्हणे गुणवंत ॥
कुवरी पूछो तम्हे आपनी । चोर ओलखाओ गुणधनी ॥३॥
राय वयण सुण्या सविशाल । साह आण्यौ निज घरि सविचार ॥
कुवरी बोलिवि तिणि आपनी । बात पूछै चोर तणी ॥४॥
कैसो बर सै तम्ह तणो चंग । ते मुझ आगलि कहो मन रंग ॥
तब कुवरी बोली गुणवंत । पाय धोविय[1] ओलखु जयवंत ॥५॥
साह कही सुणौ महाराज । चरन कमल ओलखि पुत्रि आज ॥
तब राजा कहै सुणौ साह । मुझ तणी बुद्धि करो सविचार ॥६॥
जमवा तेरौ सयल परिवार । घर बोलाव्यौ गुणधार ॥
चरण कमल ओलखउ[2] तेह तणा । मान दिन[3] दिऊ अति घणा ॥७॥
साहै बोल माण्यौ गुणवंत । अनेक कुवरनहु तन्या[4] जयवंत ॥
निज घर बोलाव्या देइ मान । आव्या कुवर सयल सुजान ॥८॥
पडदौ बाँधि तिहा अति चंग । एक एक कुवर बेठ्या उत्तंग ॥
चरण कमल काढि कर जोड । सुगंध कुवरि कहि ए नवि होइ ॥९॥
कमल सरखारतो फल[5] पाय । पद्म चिह्न ते वलि तेह काय ॥
ए माहि नहि मुझ तणो कंत । इम जाण्यौ सजन जयवंत ॥१०॥
तव भूपै देखाडौ निज पाय । वस्त्र करि ढाकि वलि काय ॥
हाथे लेइ जोया सविचार । ओलख्या हरिणी तिणे वार ॥११॥
एह वर मुझ तणौ गुणवंत । मे लाधौ स्वामी गुणवंत ॥
तब राजा हसै सुजान । प्रगट हवौ जिम दिनकर भान ॥१२॥
सजन आनंद्या तिहा जयवंत । जिनदास साह हुवो जयवंत ॥
विवाह महोछव कियौ तिहा चंग । राजा[6] परणी तिहा उत्तंग ॥१३॥
परनि कुवरि आव्यौ सविचार । हरष वदन हुवौ गुणधार ॥
पटरानी थापी निज चंग । धर्म फलै तिहा उत्तंग ॥१४॥
तब राजा कोप्यो अति घोर । रूपिणि उपरि सुनो घनघोर ॥
इणि ए कपट कीयौ गुणहीन । हवे दंड दियू करू दीन ॥१५॥
तब सुगंध कुवरि सविचार । बोलि सुललित सुणौ गुणमाल ॥
ए मुझ माता सुणौ तम्हे धीर । एहनि[7] दंड म्हनि देउ गंभीर ॥१६॥
तब राजा रीझो मन माहि । क्षमा तणी गुण निर्मल चाहि ॥
धन धन ए तणौ मत चंग । राजा सौख्य भोगवइ उत्तंग ॥१७॥
धन धन ए नारि अवतार । एह कन्हे समकित होसै सार ॥
परसंसा करइ तेह तणी । सजन श्रावक भवियण अति घणी ॥१८॥

---

१. स दिठे, २. स देखाडो, ३. स दान, ४. स निवरया, ५. स सरिखा छे कोमल, ६. स राय, ७. स एहने ।

जस विस्तर्‍यौ हुवौ आनन्द । बाध्यौ धर्म तणौ तिहा कंद ॥
पटरानी थापी निज सार । प्रीती बाधी[1] तिहा अपार ॥१९॥
धर्म करी जिनवरतणौ चंग । राज सौख्य भोगवै उत्तंग ॥
जिनवर भुवन कराव्या सार । बिंब भराव्या भवतार ॥२०॥
(.................................... ।[2])
प्रतिष्ठा महोछव वलि सविसाल । सिद्धक्षेत्र यात्रा[3] गुणमाल ॥२१॥
दानपूजा[4] निरंतर करै । सामाइक नित मन माहि धरै ॥
महामंत्र गुणै नवकार । वरत नेम पालै भवतार ॥२२॥
इनि परि राज भोगवे सविशाल । पर उपगार करै गुणमाल ॥
एक वार जिन भवन उत्तंग । गयौ राज आपने मनि रंग ॥२३॥
सुगंध राणि सहित सुजान । वलि श्रावक आव्या गुणमाल ॥
पूजा जिनवर त्रिभुवन तार । वांधा सदगुरु धर्मह काज ॥२४॥
तिणि अवसरि आव्यौ एक देव । सरग थकौ भाव सहित सहेव[5] ॥
पूजा जिनवर सदगुरु पाय । सफल कीधी जिम निज काय ॥२५॥
सुगंधा राणि[6] दिठि गुण जयवन्त । हरष वदन हुवौ जयवंत ॥
धन धन राणी तम्ह अवतार । तम्ह परसादे देव हुवौ सार ॥२६॥
पहिले भवि निरमलियौ[7] उत्तंग । सुगंध दशमि व्रत लियौ उत्तंग ॥
हुं विद्याधर होतो राय । तम्ह सरिसौ व्रत कियौ भवतार[8] ॥२७॥
ते भणि साधर्मि मुझ सार । तुम हो वरि बहिनि विचार ॥
इम कही पूजी ते बाल । वस्त्राभरण करी गुणमाल ॥२८॥
महोछव कियौ वलि तिहा आनि । बोलया सुललित मधुरिय वानि ॥
धन धन जिनशासन अति चंग । इम कहि आपने मनि रंग ॥२९॥
पछै गयौ आपने निज ठाम । जिनवर चरण कमल सिर नाम ॥
राजा आव्यौ निज घरि सार । जिनवर धर्म करै भवतार ॥३०॥
काल घणौ भोगव्यौ राज सार । करता बहु पर उपकार ॥
पछै मरन साधौ गुणवंत । महामंत्र गुणै जयवंत ॥३१॥
ईशान सर्गि[9] लाधो अवतार । ते देव हुवौ अवधार[10] ॥
नारी लिंग परिहरियो आनि । इंद्र पद लाभौ सुगंधी सुजान ॥३२॥
अवधिज्ञान उपज्यो तिहा सार । व्रत फलै जाणौ सविशाल ॥
जिनशासन उपरी मोह चंग । समकित धर्म पालै उत्तंग ॥३३॥
विमान बैसि करि अति गुणवंत । जिनवर यात्रा करै उत्तंग ॥
पंच कल्यानिक करै चंग । जिनवर धर्म करै उत्तंग ॥३४॥

---

१. अ साधी, २. यह पंक्ति तीनों प्रतियोंमें नहीं है, ३. स जात्रा, ४. स देव, ५. स सुणो हेव, ६. स कुवरि, ७. स निर्नामिक, ८. स थिरभाव, ९. स सरग, १०. ब गुणधार ।

सुपार्श्व जिनवर अवतार । समोसरण स्वामिको सविचार ॥
ते देव तिहा जाइ आनंद । पूजे चरण कमल गुणकंद ॥३५॥
केवल[1] वानि सुणे गुणवंत । तत्त्व पदारथ चलि जयवंत ॥
जिनशासन उपरि दृढ चित्त । समकित वरत पाले सुललित ॥३६॥

दूहा—स्वर्ग तणू सुख भोगवी दुइ सागर अति चंग ।
देवि सहित सुहावणो धर्म फले उत्तंग ॥३७॥
तिहा थको चवि करि रूवडो उत्तम कुल अवतार ।
संजम लेसै निरमलो दिगंबर गुरु[2] धार ॥३८॥
ध्यान बले कर्म क्षय करी केवल ज्ञान विशाल ।
अनेक जीव भवियण संबोध्या[3] गुणमाल ॥३९॥
पछै मुगति रमनी वरइ सिद्ध हुआ गुणमाल ।
आठ कर्म रहित नमूं[4] आठ गुण जयवंत ॥४०॥
ते स्वामी हु ध्याइसु मनि धरइ अविचल भाव ।
अविचल ठाम हु मागसु उपमा रहित पसाउ ॥४१॥
श्रीसकलकीरति प्रणमिणइ मुनि भुवनकीरति भवतार ।
रास कियौ मे निरमलौ सुगंधदशमि सविचार ॥४२॥
पढै गुणै जे सांभलै[5] मनि धरइ अति भाव ।
ब्रह्म जिनदास भणे रूवडो[6] ते पामै सुख ठाम ॥४३॥

॥ इति ॥

१. स जिन, २. स गुण, ३. स संबोधि करी भवियण, ४. ब में चरणका इतना अंश छूट गया है, ५. स साम्हलै, ६. स निरमलो ।

सुगन्धदशमीकथा

[मराठी]

सुगन्धदशमीकथा

[मराठी]

शार्दूल०

श्रीमन्मंगल देवमूर्ति जिन हा सिंहासनी बैसला ।
छत्रे तीन विशालकाय शशि हा सेवा करू पातला ।
पाहा दक्षिनवामभाग चमरे गंगाबने ढाळिला ।
सूर्याचे नभि तेज कोटि लपले ऐसा विभू देखिला ॥१॥

भुजंग०

मी बोलिलो प्रार्थुनि[1] शारदेसी । माते जरी तूँ वरदान देसी ॥
वाणी रसाला वदवीस काही । जे ऐकता साकर गोड नाही ॥२॥
आधीच या जैन कथेसि गोडी । चाखोनि पाहा मग घ्या निवाडी ॥
घेता बहू रोग तुटोनि जाती । होईल पुण्याश्रव थोर कीर्ती ॥३॥
जंबू महाद्वीप विशाल पाहे । त्यामाजि हे भारत क्षेत्र आहे ॥
काशी बरा देश विशिष्ट जेथे । वाराणसी नग्र पवित्र तेथे ॥४॥
तेथे वसे भूपति पद्मनाभी । पुण्याश्रयी पूर्ण विशालनाभी ॥
त्या श्रीमती नाम कुभाव राणी । पुण्याविना केवल पापखाणी ॥५॥

वसंत०

आला वसंत फुलले तरु मोगऱ्याचे । जाई जुई बकुल चंपक पाडलीचे[2] ॥
पुष्पे फले लवति पादप अंबराई । छाया सुशीतल वनी जनि सौख्यदायी ॥६॥

उपेन्द्र०

आरूढ होउनि रथावरि हो कसा । राजा निघाला रवि भास हो जसा ॥
पुढे बरे बोलति भाट वाणी । मार्गी जना वारिति दंडपाणी ॥७॥
सूर्यासवे जाइ सुदीप्ति जैसी । राणी नृपासंनिध होय तैसी ॥
मार्गी जवे देखियले मुनीला । मासोपवासी दृढ हेत ज्याला ॥८॥
त्रिज्ञानधारी सुपवित्रदेही । सुदर्शन ख्यात जनात पाही ॥
राजा तदा टाकुनि वाहनाला । भावे मुनीला प्रणिपात केला ॥९॥

---

१. ग वंदुनि, २. ग मालतीचे ।

राणीस सांगे सदनासि जाई । मुनीश्वरा भोजनदान देई ॥
रानी मनी कूड[1] धरोनि राहे । मिथ्यातिनी पाप विचारिताहे ॥१०॥
जाईल राजा वर काननासी । मी काय जाऊ सदनासि कैसी ।
आनंद माझा घडि एक गेला । पापी मुनी काम्हुनि आजि आला ॥११॥
बोलेच ना ते सदनासि आली । मुनीस ते भोजन काय घाली ॥
कडू दुध्या रांधुनि पाक केला । कुभाव चित्ती मुनि जेवचीला ॥१२॥
गेला मुनी घेउनि आहरासी । जैनालई ध्यान धरी सुखेसी ॥
त्या आहरे विव्हल देह जाले । हा हा करी लोक समस्त आले ॥१३॥
तो श्राविका श्रावक दुःख भारी । हे विघ्न कैस्यापरि कोण वारी ॥
ऐसी कसी पापिणि कोण आहे । मुनीस हा आहर दोषलाहे ॥१४॥
केले तदा औषध शुद्ध पाही । गेला स्वभावे मग रोग काही ॥
जाला मुनी देह निरोग जेव्हा । सुखी[2] मुनी जाय वनासि तेव्हा ॥१५॥
हे तो कथा या स्थलि राहियेली । नृपा घरी सांगण काय जाली ॥
तो भाव लोकी श्रुत त्यासि केला । भूपासही कोप[3] चढोनि आला ॥१६॥
माझ्या घरी काय पदार्थ नाही । हे बाइको पापिन काय पाही ॥
जलो इचे तोंड दिसोच ना की । कुसंगती पाप घडे जना की ॥१७॥
त्यानंतरे भूपति एक दीसी । गेला पहा सद्गुरुवंदनेसी ॥
निंदूनिया आपुल्या भवासी । करोनि प्रायश्चित ये घरासी ॥१८॥
राजा तिला पाहुनि कोप आणी । शृंगार हारादिक घे हिरोनी ॥
सौभाग्य गेले मग दीन जाली । हे कर्कसा बोलति लोक बोली ॥१९॥
दुर्गंध तो आमय व्यस्त[4] जाला । देहावरी कोड चढोनि आला ॥
तो वास साहू न सकेचि कोन्ही । जलो जलो बोलति लोक वाणी ॥२०॥

शालिनी

राणी तेव्हा दुःख आणी मनासी । हा हा देवा पाप[5] जाले जिवासी ॥
कैसी बुद्धी आठवे पापिणीसी । कैसी गोष्टी सांगणे हे जनासी ॥२१॥
राणी तेथे आर्तध्याने मरोनी । म्हैसी जाली पापिणी दुःखखाणी ॥
माता गेली जन्मता कालगेही । चारापाणी ते मिलेनाचि काही[6] ॥२२॥
जाली देही दुर्बली चालवेना । काही केल्या दुःख तीचे सरेना ॥
पानी घ्याव्या ते तटाकी निघाली[7] । तेथे कैसी कर्दमी मग्न जाली ॥२३॥
गेली प्राणे सूसरी काय जाली । माता नाही ते पडे पाप जाली ॥
तेथोनीया साँवरी पापयोनी । तेथेही ते दुःख भोगी निदानी ॥२४॥

---

१. ग क्रोध, २. ग. सुखे, ३. ग क्रोध, ४. क ग व्याप्त, ५. ग दुःख, ६. क ग पाही, ७. ग रिघाली ।

उपेन्द्र०

अनुक्रमे जन्म भरोनि गेला । चांडाल गेही मग जन्म जाला ॥
दुर्गंध आंगी बहु दुःख दाटी । कोन्ही तिला बैसविनाचि पाटी ॥२५॥
माता मरे दुःख विशाल दीसे । सर्वत्रही देखुनि लोक हासे ॥
ते एकली टाकियली वनांत । रडे पडे दुःख भरी मनांत ॥२६॥
ते उंबराची फल खात राहे । गेले ऋतू वत्सल कर्मले हे ॥
तेथे वना एक मुनींद्र आला । नामे श्रुताब्धी शुभ भाव ज्याला ॥२७॥
असे गुणाब्धी वर शिष्य त्याचा । तो बोलिला सद्गुरुसी सुवाचा ॥
संदेह हा दूर करावयासी । आता पुसावे बरवे गुरूसी ॥२८॥
अहो अहो श्रीगुरुराज देवा । हे कोण चांडालिणि पापठेवा ॥
वदे गुरू आइक बालका रे । इच्या भवाची कथनी कथा रे ॥२९॥
हे श्रीमती पूर्विल राजकांता । मुनीस दे आहर दुष्टचिंता ।
तुंबीफलाचे कडु दान केले । त्याचे असे पाप फलासि आले ॥३०॥
गेली कथा पूर्विल व्यक्त केली । चांडालिणीसी श्रुत सर्व जाली ॥
हा हा वदे निंदुनि पाप बाला । तेह्वा स्वभावे गुरु वंदियेला ॥३१॥
कुभाव गेला शुभ भाव झाला । पुनःपुन्हा वंदियले गुरूला ॥
घेवोनिया मूलगुणासि आठा । बारा व्रते पालिति पुण्यपाठा ॥३२॥
तेथोनिया ते मरणासि पावे । पुढे कथा सांगण ऐक भावे ॥
श्रृंगारिला मालव देश शोभा । तेथे पुरी उज्जनि रत्नगाभा ॥३३॥
ते ब्राह्मणाचे घरि हो कुमारी । होताचि बापावरि होय मारी ।
काहीक वाढे मग माय मेली । उच्छिष्ट खाता मग वृद्धि जाली ॥३४॥
आणीतसे काष्ट विशेष भारा । पुण्याविना केवि सुखासि थारा ॥
ऐसी भरी ते उदरासि बाला । तेथे मुनी तो तव येक आला ॥३५॥
सुदर्शना काम विकार नाही । सम्यक्त्वधारी व्रत पूर्ण पाही ॥
राजा पहा तेथिल अश्वसेन । वंदावया चालियला सुजाण ॥३६॥
घेऊनिया अष्टक द्रव्य पूजा । त्या गावचा लोकहि जाय बोजा ॥
गुरूसि केला प्रणिपात तेही । सम्यक्त्व भावाविण हेत नाही ॥३७॥
सुमार्ग तो ऐकुनि लोक धाला । बहूत धर्मावरि हेत जाला ॥
सांगे सुधर्मा गुरु तो म्हणावा । या वेगला तो कुगुरू गणावा ॥३८॥
मोली सिरी घेउनि दुष्टगंधा । आली अकस्मात करीत धंदा ॥
पुढे बरे देखियले मुनीसी । ते आठवे पूर्विलिया[1] भवासी ॥३९॥

शालिनी

मूर्छा आली ते पडे भूमिकेला । राजा पाहे लोक विस्मीत जाला ॥
काहो स्वामी पातली ईसि मूर्छा । ऐसे[2] सांगा आमुची भव्य पृच्छा ॥४०॥

१. ग पूर्विलच्या, २. क ग ऐसी ।

रथोद्धता

वदे मुनी केवल दिव्य वाणी । भवांतराची क्रमली कहानी ॥
ऐकोनिया विस्मित भूप जाला । म्हणे विभू सांग उपाय याला ॥४१॥
करील हे एक बऱ्या व्रतासी । तो सर्व हा जाइल पापरासी ॥
इन्हे सुगंधा दशमी करावी । जाईल पापासि महा स्वभावी ॥४२॥
पुढे मुनी सांगतसे नृपाला । तो स्थानकी तो खग एक आला ॥
जयादि हो नाम कुमार रासी । तो बैसला वंदुनिया गुरूसी[1] ॥४३॥
मासामधी[2] भाद्रपदासि मानी । ते शुक्लपक्षी दशमी पुराणी ॥
करोनिया पाँचहि रंग गाढा । कोठे दहा त्यात विचित्र काढा ॥४४॥
त्या मध्यभागी कलसासि ठेवा । त्याहीवरी चौविस जैन देवा ॥
वसु प्रकारे मग भक्ति पूजा । ऐसे करा साधन आत्म काजा ॥४५॥

मालिनी

दँशविध[3] जिनपूजा या परी ते करावी । दृढतर जिनभक्ती अंतरी आठवावी[4] ॥
दशविध जयमाला पाठ भावे पढावा । त्यजुनि सकल धंदा हेतु तेथे जडावा ॥४६॥

सवैया

जय जय मोहनरूपधरा शिवमार्गकरा भवदुःखहरा ।
जय जय केवलबोधभरा रविकोटितिरस्कृतकांतितरा ॥
जय जय हे हरिविष्टरभूषण मन्मथदूषण मुक्तिवरा ।
जय जय कामकुतूहलवारण पापविदारण पुण्यपरा ॥४७॥

द्रुत०

जिनकथा करिता क्रमल्या निशा । निरसिला तम उज्ज्वलिल्या[5] दिशा ॥
उगवला रवि तो दुसऱ्या दिशी । पुनरपी करि पूजन सौरसी ॥४८॥

उपेंद्र०

ऐसे दहा वर्ष करा व्रतासी । उद्यापनाला करणे विधीसी ॥
दहाच चंद्रोपक तारकाही । लाडू करावे शत एक पाही ॥४९॥
उपास आधी सुकरोनि चोजा । पंचामृताची अभिषेक पूजा ॥
उद्यापनाची जरि शक्ति नाही । करी दुणे हे व्रत पूर्ण पाही ॥५०॥
समस्तही हा विधि ऐकुनीया । भावे करीती व्रत घेउनीया ॥
देती तिला श्रावक द्रव्यपूजा । ते आचरी ब्राम्हणि धर्म काजा ॥५१॥
भावे असे हे व्रत पूर्ण केले । तिला व्रताचे फल इष्ट[6] जाले ॥
दुर्गंध जावोनि सुगंध आला । हे तो सुगंधा जन बोलियेला ॥५२॥
ऐसा[7] करी जो बरव्या व्रतासी । तो निश्चये पावल जो सुखासी ॥
आयुष्य थोडे मग काल केला । तिचा पुढे सांगण जन्म जाला ॥५३॥

---

१. क ग मुनीसी, २. ग मधे, ३. क वसु ४. क ते भरावी, ५. क ग उज्जलिल्या, ६. ग पूर्ण, ७. क ग ऐसे ।

भुजंग०

असे आर्यखंडात सुभारताते । पुरी कंचनी ते असे शुद्ध त्याते ॥
सदा तेथिचा लोक भोगीसुखासी । बहू धर्मकार्यी असे लोभ त्यासी ॥५४॥

कळहंसा

कनक नाम नृपती बलवंत । कनकमाल वधू जयवंत ॥
जैनधर्म रुचि फार जयाला । धर्महेत धरिता दिन गेला ॥५५॥

उपजाति

तेथे वसे तो जिनदास वाणी । जिनादिदत्ता वधु त्यासि मानी ॥
तिच्या कुशी पूर्विल ब्राम्हणी ते । जाली कुमारी बहु पावनी ते ॥५६॥
सुगंध देहावरि तीस दीसे । लोकासि आश्चर्य विशेष भासे ॥
लोकी सुगंधा म्हुनि[1] नाम केले । सर्वासि ते वर्त कलोनि गेले ॥५७॥
तो मायबापा बहु लोभ दाटे । आनंद संपूर्ण मनात वाटे ॥
काहीक पापास्तव माय मेली । पूर्वील दुःखावलि व्यक्त[2] जाली ॥५८॥
हा हा करी तो मग बाप जीवा । म्हणे कसा पूर्विल पाप ठेवा ॥
विवाह दूजा करि लोक बोले । संतोष मानी स्थिर चित्त केले ॥५९॥
ते कर्कसा रूपिनि नाम नारी । क्रोधानना केवल पापधारी ॥
सकाल उठोनिच खाय दाना । ऐसी महा पापिनि पूर्ण जाणा ॥६०॥
तिच्या कुसी एकचि होय कन्या । ते नाम श्यामा निज रूप धन्या ॥
माता करी स्नेह विशेष तीचा । सुगंधकन्येवरि द्वेष साचा ॥६१॥

शालिनी

श्यामा माझी काय बाहीर गेली । खाऊ जेऊ तीजला शीघ्र घाली ॥
श्यामा बाला आनुनी तेल रोला । घाली जेऊ तीजला तूपगोला ॥६२॥

भुजंग०

सुगंधा बहू रोड जाली सरीरी । नसे अन्न पाणी करे दुःख भारी ॥
पित्याने असा पाहिला भाव पाही । म्हणे वेगले राहिजे सर्वथा ही ॥६३॥
जुदा राहिला वाणिया तो शहाणा । तरी द्वेष तीचा कदापि चुकेना ॥
सुगंधा करी अन्न पाकासि भावे । पिता देखुनी अंतरी तो सुखावे ॥६४॥
असे देखुनी अंतरी लोभ आणी । म्हणे बाल माझी कसी हो शहाणी ॥
दिसे पूतली रेखिली सोनियाची । गुरू देव वंदी करी भक्ति त्याची ॥६५॥
दुकानूनि आनी नवीसी नव्हाली । सुगंधा बलाऊनि ओटीत[3] घाली ॥
तदा रूपिणी कस्मली काय बोले । म्हणे गे पित्यालागिही वश्य केले ॥६६॥
तदा एक दीसी पहा त्या नृपाने । बोलाऊनि सांगीतले काय त्याने ॥
तुवा जाइजे शीघ्र दीपांतराला । खरीदी करा रत्न आणी घराला ॥६७॥

---

१. ग म्हणुनि, २. ग व्याप्त, ३. ग वोटीसि ।

नृपालागि वंदूनि आला घरासी । वदे गुह्य गोष्टी पहा रूपिणीसी ॥
म्हणे गे प्रिये कन्यका दोनि जोडी । तुझी आणि माझी असी गोष्टि सोडी ॥६८॥
वरू पाहने सोडणे आलसाला । दहा वर्ष गेली अती काल झाला ॥
मला जाहने दीपदीपांतरासी । कलेना किती लागती वर्षरासी ॥६९॥
असे बोलुनी वंदुनी त्याचि भूपा । पहा चालिला तो कसा रत्नदीपा ॥
नमोकार मंत्रावरी भाव भारी । म्हणे मंत्र हा सर्व पापा निवारी ॥७०॥

स्वागता

चांगदत्त वरवा शुभ वाणी । त्यासि चंपकवती वधु मानी ॥
तीस एक गुणपाल कुमार । श्यामसुंदर जिसे जितमार[1] ॥७१॥
तो कलंकनगराहुनि आला । देखता मग सुगंधिनि बाला ॥
रीझला म्हनत देवि कुमारी । रूपिणी तव मनात विचारी ॥७२॥
दाखवी चतुर ते मग श्यामा । चांगदत्त म्हणतो नये कामा ॥
कोप फार चढला मग तीला । म्हणत यास कसा भ्रम जाला ॥७३॥
मानली मग सुगंध कुमारी । हेचि सुंदर गुणाधिक नारी ॥
लग्न निश्चय बरा मग केला । चांगदत्त नगराप्रति गेला ॥७४॥
सोयरी मिळविली मग आला । तोष फार नवरी मिरवीला ॥
दो घरीं त्वरित मंडप घाली । रूपिणी तव मनात विराली ॥७५॥

भुजंग०

कसी रूपिणी तीसि वेढोनि हाती । निघाली कसी पापिणी मध्यरात्री ॥
स्मशानासि नेऊनिया तीसि ठेवी । चहू दिग्विभागी दिवे चारि लावी ॥७६॥
तसी चौ दिसी ते धरी हो निशाने । असे नोवरा या स्थली तूसि जाने ॥
म्हनोनी असी ते घरालागि आली । कपालासि ठोकी करी लोकचाली ॥७७॥

उपेंद्र०

रडे पडे विह्वल वाक्य बोले । पाहावया लोक समस्त आले ॥
सेजारिनी त्या मिळल्या समस्ता । त्या बोलती आपरिती प्रशस्ता ॥७८॥
कोन्ही म्हने घेउनि भूत गेला । झोटिंग कोन्ही म्हनताति बोला ॥
कोन्ही कुलीचा कुलदेव बोले । कोन्ही म्हने हे विपरीत जाले ॥७९॥

मालिनी

अगइ अगइ बाई काय गे म्यां करावे । अहह कटकटा गे कोन रानी फिरावे ॥
अहह कसि सुगंधा कोन रानी पहावी । बहुत अवगुणाची काय कैसी धरावी ॥८०॥

उपेंद्र०

आला इव्हाई मग काय बोले । म्हणे अहा काय विपर्य झाले ।
बाला सुगंधा बहु रूपशाली । तिच्या रुपाची पहाता नव्हाली ॥८१॥

---

१. ग सुकुमार ।

भुजंग०

वदे रूपिणी ते विव्हायासि बोली । सुगंधा पहा देश सोडोनि गेली ॥
असे हे कुमारी मला एक जोडी । कुमारासि देतो तुज्या प्रीति जोडी ॥८२॥
बरे बोल बोलोनिया बोल तेन्हे । तसे लाविले लग्न सन्मान दाने ।
विव्हाई सुखे शीघ्र गावासि गेला । पुढे आइका हे कथा हो रसाळा ॥८३॥
सुगंधा कसी राहियेली स्मशानी । दिसे देवकन्या तसी रूपखानी ॥
पहा त्याच हो गाविचा भूप गेला । अकस्मात माडीवरी काय आला ॥८४॥
दिशा पाहता हो कसी[1] दृष्ट गेली । स्मशानी सुगंधा बरी देखियेली ॥
निघाला तवे शस्त्र घेवोनि हाती । पुढे ठाकला बोलला प्रीति भाती ॥८५॥
अगे काय तू व्यंतरीकी पिशाची । खगाधीपकन्या वदे गोष्टि साची ॥
वदे कोन तू सांग वृत्तान्त तूझा । तुला देखता मोहला प्रान माझा ॥८६॥

रथोद्धता

मज पिता जिनदत्त कृपाला । जिनमती जननी गुणमाला ॥
जन्मताचि जननी मृत जाली । म्हनुनि माय दुजी मग[2] आली ॥८७॥

कलहंसा

कनक नाम नृपती जनकाला । करि म्हणे द्विपदिपांतर त्याला ॥
मानुनी नृपतिशासन भाली । स्वगृहासि मग ये गुणशाली ॥८८॥

स्वागता

रूपिणी मज सपत्नि सुमाता । बाप सर्व सिकवी तिस जाता ॥
कन्यका उपवरा[3] सुवरासी । देइजे घट मुहूर्त सुमासी ॥८९॥
आज लग्न दिवसी वर आला । रूपिणी करि कुवृत्ति कुचाला ॥
आनुनी बसविले मज येथे । या स्थलीच वरि तू सुवराते ॥९०॥
कठिन बोलुनिया मज गेली । सर्व गोष्टि तुज म्या श्रुत केली ॥
नृपति घालि म्हणे मज माला । या स्थलासि वर मी तुज आला ॥९१॥

भुजंग०

विधीनेच हो लाविले लग्न जेथे । करी अन्यथा त्यासि पै कोण तेथे ॥
सुगंधा मनी हर्षली तोष दाटे । गला माल घाली महा हर्ष वाटे ॥९२॥
सुगंधा म्हणे नोवरा तूचि माजा । खरे सांग तू कोनता ठाव तूझा ॥
नृपाले तदा कौतुके गोष्टि केली । म्हणे राहतो याच गावात गोली ॥९३॥
गुरे पालितो वीकितो ताकपाणी । इला दोर घेवोनि मी भार आणी ॥
असे बोलुनी भूपती तो निघाला । घरी पल्लवी तो सुगंधा तयाला ॥९४॥

---

१. ग वरी, २. क ग मज दुजी, ३. क नृपवरा ।

पुन्हा भेटि होईल केव्हा वदावे । मला टाकुनी एकले काय जावे ।
कसी आपुली वस्तु टाकोनि जाने । बरे हे नव्हे सर्वथा दीनवाणे ॥९५॥
वदे भूप येईन तुझ्या ठिकाणी । निशा मध्यभागी खरा बोल मानी ॥
खरे गे खरे सत्य हे भाष घेई । प्रिये ऊठ तू शीघ्र गृहासि जाई ॥९६॥
नृपाळे घरालागि[1] गंतव्य केले । कळेनाचि कोन्हासि ते गुप्त जाले ॥
सुगंधा कुमारी त्वरे ये घरासी । वदे रूपिणी पातकी पापरासी ॥९७॥
सुगंधा वदे सर्वही गोष्टि केली । बरे ऐकिले रूपिणी हासियेली ।
म्हणे गे कसी गौळिया माल घाली । कसी भाग्यमंदा करी आपचाली ॥९८॥
निशा मध्य भागी तिच्या मंदिरासी । पहा भूप ये नित्य तो आदरेसी ॥
अलंकार दीलया[2] बहू द्रव्य रासी । सुगंधा वदे गोष्टि ते माउलीसी ॥९९॥
असे वर्तले पितृ गावासि आला । अलंकार देखोनिया व्यग्र जाला ॥
दिसे सर्व वस्तू नृपाची निशानी । म्हणे कोन तो चोर चोरोनि आणी ॥१००॥
मनामाजि भ्याला नृपालागि सांगे । म्हणे चोरटा तुझिया गावि जागे ॥
कसा माल घालोनिया कन्यकेसी । प्रती वासरे येत माझ्या घरासी ॥१०१॥
अलंकार राजा तुझा सर्व घेई । वदोनि असा लागला शीघ्र पाई ॥
कळेनाचि तो कोन ठाई निवासी । कसा तो वरू लाधला कन्यकेसी ॥१०२॥
वदे भूप तो चोर दावूनि देई । बहू वित्त गेले न लागे सुठाई[3] ॥
कसा कोन येतो तुझ्या मंदिरासी । सुगंधा कसी रातली काय त्यासी ॥१०३॥
अलंकार माझ्या घरातील गेला । कसा चोर आला कसा काय नेला ॥
दिसे ना तु आणीक तो आणि दावी । न आणीस तेव्हा तुला सीख लावी ॥१०४॥
अहो साहजी सांगतो बोल माना । समस्ता जना भोजनालागि आना ॥
वरी भोजने सारिल्या आदरेसी । बहू आदरे बैसवावे जनासी ॥१०५॥

उपेंद्र०

अंतःपटा बांधुनि येके ठाई । चौरंग मांडा वरल्या उपायी ।
जो पाय धूता वरु ओळखीला । तो नोवरा होय कुमारिकेला ॥१०६॥
सांगीतली रीत तसीच केली । बापे सुगंधा बहु वीनवीली ॥
श्रेष्ठी घरी लोक समस्त आला । भूपालही हासत चालियेला ॥१०७॥

भुजंग०

बहू पाय धूता न ये ओळखीसी । म्हणे हे नव्हे हे नव्हे पीतियासी ॥
बहु साजिरे पाय माझ्या वराचे । अति कोमळे काय सांगू गुणाचे ॥१०८॥
अहो पद्म पायी जयाचे झळाळी । दिसे चक्र अंकुश रेखा विशाळी ॥
असे ऐकुनी भूप सन्मूख आला । सुगंधा म्हणे तो वरू ओळखीला ॥१०९॥

---

१. क ग गृहालागि, २. क ग दील्हा, ३. क ग चि ठाई ।

मालिनी

खदखद नृप हासे तोष सर्वा जनाला । मग नृपवरु बोले मी वरू कन्यकेला ॥
म्हणत सकल नारी काय हो भाग्यलीळा । स्वजन जन मिळाला तोष सर्वत्र जाला ॥११०॥
त्वरित मग सुगंधा आनिली पुण्यशाळी । मल्वट पट रेखा रेखियेली कपाळी ॥
लखलखित कुंकाचे लाविले बोट दीसे । धवधवित विळासे काय लक्ष्मीच भासे ॥१११॥

शिखरिणी

विरोद्या पोल्हारे अनवट झणत्कार चरणी ।
कस्या वाक्या ही त्या चपल गुजऱ्या सूर्यकिरणी ॥
पदी घागूऱ्याचा रुणझुणित वाजे स्वर बरा ।
अनंगाचा कैचा त्रिभुवनि जयी घोष दुसरा ॥११२॥

शार्दूल०

पाटाऊ बहुलाल जोरकसिचा त्यामाजि बुट्टा किती ।
मध्ये सारस हंस थोर रचना मोराचिये पंगती ॥
त्याली ते कटिसुत्रही कटितटी बाला बहू शाहणी[1] ।
हाती कंकण घातले घडलिया रत्नाचिया जोडणी ॥११३॥
कंठी दुल्हड दाटली मणि महा तैसी सरी लाखिली ।
घाली मोहनमाळ ते गरसुली चित्रांग चापेकेली ॥
भांगी मुक्तिक पद्धती सहित ते सिंदूर रेखा भली ।
तैसी मूद सुराखडी लखलखी वेणी पहा लाँबली ॥११४॥
कर्णी तानवडे सुरत्न जडली ते चंद्रसूर्यापरी ।
भाली चंद्रक सीस फुल्ल झलकी जाळी फुलाची बरी ॥
नेत्री अंजन घातले झलकती पंचांगुली मुद्रिका ।
त्याली दाटित कंचुकी मग दिसे जैसी शरच्चंद्रिका ॥११५॥
बाजूबंद विशेष बांधुनि असा शृंगार पां दीधला ।
अंगी चंदन चर्चिला दशदिशा सौगंध्र तो व्यापला ॥
दंताची बरवी सुपंक्ति रचना डाळिंब बीजापरी ।
वक्त्री तांबुल चर्चिला घवघवी आरक्त होटावरी ॥११६॥

रथोद्धता

लग्न लावियले शुभ[2] वेळा । सर्व एक मिळला जनमेळा ॥
वधुवरे मग वरे मिरवीली । जेवणावळ सुखे करवीली ॥११७॥
एक दिवस धरी नृप कोपा । रूपिणीसि म्हणतो दृढ पापा ॥
आनिली धरुनि दंड करावा । पापिणी कपट टाकि कुभावा ॥११८॥

---

१. ब साजिरी, २. ग सुख ।

पातली तव सुगंधकुमारी । बोलली नृपवराप्रति भारी ॥
माझिया जननिला जरि दंडा । लोक बोलति तरी मज लंडा ॥११९॥
हा विचार नव्हे बुझ राया । म्हणुनि आडनि धरी दृढ पाया ॥
सोडिनाच मग ते क्षण राहे । लोळियांत भरले जळ वाहे ॥१२०॥
ऐक ऐक म्हणे नृप सारा । व्यर्थ भाव दिसते जन थारा ॥
राख राख विभु माहेर माझे । दान फार घडले जरि तूझे ॥१२१॥
म्हणुनि काकुलती जब आली । भूप अंतरि दया तव जाली ॥
सोडिली मग कृपाळ नृपाळे । सज्जनासि सुख अंतरि जाले ॥१२२॥
पट्टराणि पद ते मग पावे । राज्यवैभव सुखात सुखावे ॥
करविले मग जिनालय तीने । त्यात बिंब धरिले सुविधीने ॥१२३॥
नित्य पूजन करी जिनदेवा । मूलमंत्र जप सुकृत ठेवा ॥
कोन्हि येक सुदिनी सुख वेला । जिनगृही मिळला जन मेळा ॥१२४॥
जिनगृही वर सुगंध कुमारी । सावचित्त बसली सुख भारी ॥
देव एक तव त्या स्थळि आला । देवदेव जिन तो नमियेला ॥१२५॥
देखिली तव सुगंधकुमारी । हासिला खदखदा तव भारी ॥
धन्य धन्य अवतार सुगंधा । बोलिला मग भवांतर धंदा ॥१२६॥
तुझिया व्रतबळे फल जाले । म्हणुनि देवपद हे मज आले ॥
खग भवांतर जई मज वोजा । व्रत विधी धरिला शुभ[1] काजा ॥१२७॥
या स्थळी उपजलीस सुगंधा । राज्यवैभव महा सुखकंदा ॥
धर्महेतु बहिनी मज तूची । साच गोष्टि बुझ पूर्व भवाची ॥१२८॥
बहुत फार[2] वदू तुज काथी । वीसरू मज नको सखे बाई ॥
नित्य नित्य जिनदेव पुजावा । काळ हा जगि असाचि खपावा ॥१२९॥
वस्त्रभूषण दिल्हे मग तीला । स्वस्थलासहि सुखे सुर गेला ॥
सर्वलोक वदती यश तीचे । दानपुण्य करि ती यश साचे ॥१३०॥

भुजंग०

सुगंधा पुन्हा त्या व्रतालागि साधी । पुरे सर्व आयुष्य पावे समाधी ॥
घरी अंतकाली णमोकार मंत्रा । पुढे प्राण गेले सुखे ते स्वतंत्रा ॥१३१॥
वधूलिंग छेदूनि ईशान स्वर्गी । महा इन्द्र जाला पहा पुण्यमार्गी ॥
विमानी बसूनी करी तो प्रयाणा । विभू श्रीसुपार्श्वासि वंदू सुजाना ॥१३२॥

उपेंद्र०

वंदूनिया ते समवसृतीसी । गेला पुन्हा आपुलिया स्थलासी ॥
सम्यक्त संपूर्ण मनांत भावी । म्हणे कवी तेचि कथा वदावी ॥१३३॥

---

१. ग निज, २. ग काय ।

रथोद्धता

दोन सागर गमी स्थिति ऐसी । जन्म पाउनि पुढे शुभवंशी ।।
घेउनी मग दिगंबर दीक्षा । सिद्धदेव हृदयी शुभ शिक्षा ।।१३४।।

उपेंद्र०

पाऊनिया केवलबोधदीवा । संबोधिले भव्यजनासि जीवा ।।
त्यानंतरे साधुनि सिद्धवासा । सुखे वसे मोक्षपदी सुवासा ।।१३५।।
देवेन्द्रकीर्ति गुरु पुण्यरासी । जैनादि हो सागर शिष्य त्यासी ।।
ऐसी कथा हे परिपूर्ण सांगे । श्रोत्यासि द्या चित्त म्हणोनि मागे ।।१३६।।

।। इति ।।

सुगन्धदशमीकथा

[हिन्दी पद्य]

पं० खुशालचन्द्र कृत

सुगन्धदशमीकथा

[हिन्दी]

चौपई—पंच परम गुरु वंदन करूँ। ताकरि मम अघ-बंधन हरूँ।
सार सुगंध - दशैं व्रत-कथा। भाषहुँ भाषा शिवपद यथा ॥१॥
अरु गुरु सारद के परसादि। कहस्यूँ भेद सार पूजादि।
जिन भवि इह व्रत कीन्हो सही। तिन स्वर्गादिक पदवी लही ॥२॥
सन्मति जिन गोतम मुनिराय। तिनके क्रमि नमि श्रेणिकराय।
करत भयो इम श्रुति सुखकार। विनि कारण जगबंधु करार ॥३॥
भव्य - कमल प्रतिबोधन सूर्य। मुक्ति-पंथ निरवाहन धुर्य।
श्रुत - वारिधिकों पोत समान। इन्द्रादिक तुम सेवक जान ॥४॥
बुद्धिमान गोतम मुनिराय। मैं विनती करहूँ मन लाय।
व्रत सुगन्ध दशमी इह सार। किन्ह कीनो किनि विधि विस्तार ॥५॥
अरु याको फल कैसो होय। मोकों उपदेशो मुनि सोय।
यह सुनि गोतम गणधर राय। बोले मधुर वचन सुखदाय ॥६॥
मगध देशके तुम भूपार। सुणि व्रतकी सुकथा सुखकार।
इहै प्रश्न तुम उत्तम करयो। मैं भाषूँ जो जिन उच्चरयो ॥७॥
सुणत मात्र व्रतको विस्तार। पाप अनन्त हरै ततकार।
जे कर्ता क्रम तैं शिव जाय। और कहा कहिए अधिकाय ॥८॥

दोहा—जंबू द्वीप विषै इहाँ भारत क्षेत्र सुजान।
तहाँ देश काशी लसै पुर बाणारसि मान ॥९॥

चौपई—पद्मनाभ जाको भूपार। कीन्हो वसु मदको परिहार।
सप्त बिसन तजि गुण उपजाय। ऐसे राज करै सुखदाय ॥१०॥
श्रीमतीय जाकै वर नारि। निज पति कूँ अति ही सुखकारि।
एक समय वन - क्रीड़ा हेत। वन जावै व्योभूति समेत ॥११॥
पुर नजीकसे ही जब गये। निज मनमाहीं आनद लये।
तब ही एक मुनीश्वर सार। मासुवास करिकैं भवतार ॥१२॥
अशन काजि आते मुनि जोय। राणी सौं भाखै नृप सोय।
तुम जावो द्यो भोजन सार। कीजो मुनिकी भक्ति अपार ॥१३॥
इम सुणि राणी मन इम धरयो। भोगा में मुनि अन्तर करयो।
दुःखकारी पापी मुनि आय। मेरो सुख इन दियो गमाय ॥१४॥

मन ही में दूखी अति घणी । आज्ञा मानि चली पतितणी ।
जाय कियो भोजन ततकार । आगै और सुणों भूपार ॥१५॥
मुनि भूपतिके ही घर गयो । राणी अशन महानिंद दयौ ।
कडी तूंबडीको जु अहार । दियो मुनीश्वर कूँ दुःखकार ॥१६॥
भोजन करि चाले मुनिराय । मारग माँहिं गहल अति आय ।
पर्यो भूमिपर तब मुनिराज । कियो श्रावकाँ देखि इलाज ॥१७॥
तैठे एक जिनालय सार । तहाँ लइ गये करि उपचार ।
फेरि सकल ऐसे वच चयो । राणी खोटो भोजन दयो ॥१८॥
तातैं मुणी महा दुःख पाय । सून्य हो गये हैं अधिकाय ।
धिक-धिक है ताकों अति घणो । दुष्ट स्वभाव अधिक जा तणो ॥१९॥
तब ही वन सों आयो राय । सुनी बात राजा दुःख पाय ।
राणी सों खोटे वच कहे । वस्त्राभरण खोसि कर लये ॥२०॥
काढि दई घर बाहरि जबै । दुःखी भई अति ही सो तबै ।
कुष्टातुर है आरत कियो । प्राण छोरि महिषी तन लियो ॥२१॥
याकी मात भैंसि मर गई । तब यह अति दुर्बलता लई ।
एक समय कर्दम मधि जाय । मग्न भई नाना दुःख पाय ॥२२॥
तहाँ थकी देख्यो मुनि कोय । सींग हलाये क्रोधित होय ।
तब ही पंक विषें गडि गई । प्राण छोडि खरणी उपजई ॥२३॥
भई पंगुरी पिछले पाय । तब ही एक मुनीश्वर आय ।
पूरब वैर सु मन में ठयो । तहाँ कलुष परिणाम जु भयो ॥२४॥

दोहा—कियो क्रोध मनमें घणूं दई दुलाती जाय ।
प्राण छोरि निज पाप तैं लई शूकरी काय ॥२५॥

श्वानादिकके दुःख तैं भूखी प्यासी होय ।
मरि चंडालीके सुता उपजी निंदित सोय ॥२६॥

चौपई—गर्भ आवताँ विनस्यो तात । ऊपजताँ तन त्यागो मात ॥
पालै सुजन मरै फुनि सोय । अरु आवत तनमें बदवोय ॥२७॥
इक जोजन लौं आवे वास । ताहि थकी आवै नहिं स्वास ॥
पंच अभख फल खायो करै । ऐसी विधि वनमें सो फिरै ॥२८॥
तहाँ एक मुनि सिख जुत देख । राग द्वेष तजि शुद्ध विशेष ॥
ता वनमें आये गुण भरे । लघु मुनि गुरु सों परशन करे ॥२९॥
वास निंद्य आवै अधिकाय । स्वामी कारण मोहि बताय ॥
मुनि भाषैं सुणि मन वच काय । जो प्राणी ऋषिकौं दुखदाय ॥३०॥
सो नाना दुख पावै सही । मुनि-निन्दा सम अघ कोइ नहीं ॥
कन्या इनि पूरब भव माहिं । मुनी दुखायो थो अधिकाहिं ॥३१॥

ता करि तिरजगमें दुख पाय । भई बधिक कैं कन्या आय ॥
सो इह देखि फिरत है बाल । सुणि संसय भाग्यो तत्काल ॥३२॥

दोहा—फुनि गुरुसे इम शिष कहै अब किम इमि अघ जाय ।
मुनि बोले जिन धर्मको धारे पाप पलाय ॥३३॥

चौपई—गुरु शिष वचन सुता इन सुण्यो । उपशम भाव सुखाकर मुण्यो ।
पंच अभख फल त्यागे जबै । अशन मिलन लाग्यो शुभ तबै ॥३४॥
शुद्ध भाव सों छोरे प्राण । नगर उज्जैनी श्रेणिक जाण ॥
तहाँ दरिद्री द्विज इक रहै । पाप उदय करि बहु दुख लहै ॥३५॥
ता द्विज कै यह पुत्री भई । पिता मात जम के बसि थई ॥
तब यह दुःखवती अति होय । पाप समान न वैरी कोय ॥३६॥
कष्ट कष्ट करि वृद्ध जु भई । एक समै सा वनमें गई ॥
तहाँ सुदर्शन थे मुनिराय । अस्ससेन राजा तिहिं जाय ॥३७॥
धर्म सुण्यो भूपति सुखकार । इह फुनि गई तहाँ तिहि बार ॥
अधिक लोक कन्या कूँ जोय । पाप थकी ऐसो पद होय ॥३८॥

दोहा—जास समै इह कन्यका घास-पुंज सिर धारि ।
खड़ी मुनी-वच सुणत थी फुनि निज भार उतारि ॥३९॥

चौपई—मुनि-मुख तैं सुणि कन्या भाय । पूरब भव सुमरण जब थाय ।
यादि करी पिछली वेदना । मूर्छा खाय परी दुख घना ॥४०॥
तब राजा उपचार कराय । चेत करी फुनि पूछि बुलाय ॥
पुत्री तूँ ऐसी क्यूँ भई । सुणि कंन्या तब यूँ बरणई ॥४१॥
पूरब भव विरतंत बताय । मैं जु दुखायो थो मुनिराय ॥
कड़ी तूँबिड़ी को जु अहार । दियो मुनी कूँ अति दुखकार ॥४२॥
सो अघ अबलों तणि मुझ दहै । इम सुणि नृप मुनिवर सों कहै ॥
इह किनि विधि सुख पावै अबै । तब मुनिराज बखान्यूँ सबै ॥४३॥
जब सुगंध दशमी व्रत धरै । तब कन्या अघ-संचय हरै ॥
कैसी विधि याकी मुनिराय । तब ऋषि भादव मास बताय ॥४४॥
शुक्ल पक्ष दशमी दिन सार । दश पूजा करि वसु परकार ॥
दश स्तुति पढ़िये मन लाय । दशमुखको घट सार बनाय ॥४५॥
तामैं पावक उत्तम धरै । धूप दशांग खेय अघ हरै ॥
सप्त धान्य को साथ्यो सार । करि तापरि दश दीपक धार ॥४६॥
ऐसे पूज करै मन लाय । सुखकारी जिनराज बताय ॥
तातैं इह विधि पूजा करै । सो भवि जीव भवोदधि तरै ॥४७॥

दोहा—जिनकी पूज समान फल हुवो न ह्वैसी कोय ।
स्वर्गादिक पदको करै फुनि देहै सिव लोय ॥४८॥

चौपई—दश संवत्सर लौं जो करै। ताही कै जिन गुण अवतरै ॥
करै बहुरि उद्यापन राय। सुणहु सुविधि तुम मन वच काय ॥४९॥
महशांतिक अभिषेक करेय। जिन आगे बहु पुहुप धरेय ॥
इह उपकरण धरै जिन थान। ताको भेद सुणहु चित आन ॥५०॥
दश वरणोंको चंदवो लाय। सो जिन-बिंब उपरि तनवाय ॥
और पताका दश ध्वज सार। बाजै घण्टा नाद अपार ॥५१॥
मुकतमाल की शोभा करै। चामर युगल अनुपम धरै ॥
और सुणहु आगे मन लाय। प्रभुकी भक्ति किये सुख थाय ॥५२॥
धूप दहन दश आरति आन। सिंहपीठ आदिक पहिचान ॥
इत्यादिक उपकरण मँगाय। भक्ति भाव जुत भव्य चढ़ाय ॥५३॥
दान अहार आदि चउ देय। ता करि भवि अधिको फल लेय ॥
आर्याको अंबर दीजिए। कुंडी श्रुतनिजरै कीजिए ॥५४॥
यथायोग्य मुनिको दे दान। इत्यादिक उद्यापन जान ॥
जो न इती हु शक्ति लगार। थोरो ही कीजे हित धार ॥५५॥
जो न सर्वथा घरमें होय। तो दूनो कीजे व्रत सोय ॥
पणि व्रत तो करिये मन लाय। जो सुर मोक्ष सुथानक दाय ॥५६॥

दोहा—शाक-पिंडके दान तैं रत्न-वृष्टि है राय।
इहाँ द्रव्य लागो कहा भावनि को अधिकाय ॥५७॥
ता तैं भक्ति उपाय कै स्वातम हित मन लाय।
व्रत कीजे जिनवर कह्यो इम सुणि कर तब राय ॥५८॥

चौपई—द्विज-कन्याको भूप बुलाय। व्रत सुगंध दशमी बतलाय ॥
राय-सहाय थकी व्रत करयो। पूरब पाप-बंध तब हरयो ॥५९॥
उद्यापन करि मन वच काय। और सुणहु आगे मन लाय ॥
एक कनकपुर जाणों सार। नाम कनकप्रभ तसु भूपार ॥६०॥
नारि कनकमाला अभिराम। राज-सेठ इक जिनदत्त नाम।
ताकै जिनदत्ता वर नार। तिहिं ताकै लीन्हू अवतार ॥६१॥
तिलकमती नामा गुणभरी। रूप सुगंध महा सुन्दरी।
कछुइक पाप उदय फुनि आय। प्राण तजे ताकी तब माय ॥६२॥
जननी बिन दुख पावै बाल। और सुणों श्रेणिक भूपाल।
जिनदत्त जोवनमय थो जबै। अपनो व्याह विचारयो तबै ॥६३॥
इक गोधनपुर नगर सुजान। वृषभदत्त वाणिज तिहि थान।
ताकै एक सुता शुभ भई। बंधुमती तसु संज्ञा दई ॥६४॥
तासों कीन्हों सेठ विवाह। बाजा बाजै अधिक उछाह।
परणि सु घर लायो सुखसार। आगे और सुणो विस्तार ॥६५॥

दोहा—भोग शर्म करती भई कन्या इक लखि माय ।
नाम धरयो तब मोह तैं तेजोमती सुभाय ॥६६॥

छन्द—प्यारी माता कूँ लागै । नहि तिलकमती सूँ रागै ॥
नाना विध करि दुख द्यावै । ताके मनसा न विभावै ॥६७॥
तब तात सुतासु निहारी । कन्या इह दुखित विचारी ॥
दासी आदिक जे नारी । तिनसौं इम सेठ उचारी ॥६८॥
याकी सेवा सुखकारी । कीज्यो तुम भक्ति विथारी ॥
ऐसे सुणि ते सुख पावै । तब नीकी भाँति खिलावै ॥६९॥

चौपई—एक समय कंचन प्रभ राय । दीपांतर जिनदत्त पठाय ॥
नारीसौं तब भाखै जाय । हमकूँ राजा दीपि खिवाय ॥७०॥
तातैं एक सुनो तुम बात । इन दो कन्याको इकसाथ ॥
अष्ट गुणा जुत जो वर होय । इनकौं करि दीज्यो अवलोय ॥७१॥
इम कहि दीपि चल्यो तत्काल । और सुणों श्रेणिक भूपाल ॥
आवै करन सगाई कोय । तिलकमती जाचै तब सोय ॥७२॥
बंधुमती भाखै तब आय । यामें औगुण हैं अधिकाय ॥
मम पुत्री गुणवंती घणी । रूप आदि शुभ लक्षण भरी ॥७३॥
तातैं मो कन्या शुभ जान । वर नक्षत्र ब्याहौ तुम आन ॥
इनकी मानै नाहीं बात । तिलकमती जाचै शुभगात ॥७४॥
कही फेरि यूँही मम सही । मनमें कपटाई धरि लई ॥
ब्याह समै कन्या मम सार । करदेस्यूँ ब्याहित तिहिं बार ॥७५॥
करी सगाई आनन्द होय । ब्याह समै आये तब सोय ॥
बंधुमती फेरयाँकी बार । तिलकमती बहु भाँति सिंगार ॥७६॥
घड़ी दोय रजनी जब गई । तिलकमती कूँ निज संगि लई ॥
तबहिं मसाण भूमि मधि जाय । पुत्री कूँ तिहिं ठाणि बिठाय ॥७७॥
तहाँ दीप जोये शुभ चार । पूरे तेल उद्योत अपार ॥
चौगिरदा दीपक चउ धरे । मध्य तिलकमति थिरता करे ॥७८॥
तिलकमती सूँ भाखी तहाँ । तो भरता आवैगो इहाँ ॥
ताहि विवाहि आवजे बाल । इम कहिकरि चाली ततकाल ॥७९॥
आधी रात गये तब राय । महल थके लखि वितरक लाय ।
देवसुता जखिनी वा कोय । ना जानै वा किन्नरि होय ॥८०॥
कै इह नरी यहाँ क्यूँ आय । ऐसी विधि चितवन करि राय ॥
हस्त खड्ग ले चाल्यो तहाँ । तिलकमती तिष्ठ थी जहाँ ॥८१॥

दोहा—जाय पूछियो रायजी तूँ कुण है इनि थानि ।
तिलकमती सुणिकै तबै ऐसी भाँति बखानि ॥८२॥

भूपति मेरे तात कूँ रतन सु दीपि पठाय ।
मोकूँ मम माता इहाँ थापि गई अब आय ॥८३॥

चौपई—भाखि गई इनि थानक कोय । आवेगो तो भरता सोय ॥
यातैं तुम आये अब धीर । मैं नारी तुम नाथ गहीर ॥८४॥
सुणि राजा तब ब्याह सु करयो । रैनि रह्यो तैठें सुख धरयो ॥
राजा प्रात समै अवलोय । निज मन्दिर कूँ जावनि होय ॥८५॥
तिलकमती ऐसे तब कही । अब तौ तुम मेरे पति सही ॥
सर्प जेम डसि जाओ कहाँ । सुणि इम भाषै भूपति तहाँ ॥८६॥
निशिकी निशि आस्यूँ तुझ पासि । तूँ तो महा शर्मकी रासि ॥
तिलकमती पूछै सिर नाय । कहा नाम तुम मोहि बताय ॥८७॥
राजा गोप कह्यो निज नाम । इम सुणि तिय पायो सुख धाम ॥
यूँ कहि अपने थानक गयो । तब तेही परभात सु भयो ॥८८॥
बंधुमती कहि कपट विचार । तिलकमती है अति दुखकार ॥
ब्याह समै उठिगी किनि थान । जन जन सौं पूछै दुख मान ॥८९॥

दोहा—देखो ऐसी पापिनी गई कहाँ दुख दाय ।
ढूँढत ढूँढत कन्यका लखी मसाणां जाय ॥९०॥

जाय कहै दुखदा सुता इनि थानकि किमि आय ।
भूत प्रेत लाग्यो कहा ऐसी विधि बतराय ॥९१॥

चौपई—तिलकमती भाषै उमगाय । तैं भाष्यो सो कीन्हो माय ॥
बंधुमती कहि तुंग पुकार । देखो एह असत्य उचार ॥९२॥
जाणैं कहाँ कबै इह आय । ब्याह समै दुःखदाय अघाय ॥
तेजोमती विवाहित करी । साहाकी समया नहिं टरी ॥९३॥
खिजि भाषी उठि चल घर अबै । ले आई अपने थल तबै ॥
तिलकमती सूँ पूछै मात । तैं कैसो वर पायो रात ॥९४॥
सुता कह्यो वरियो हम गोप । रैनि परणि परभात अलोप ॥
बंधुमती भाखी ततकाल । री तैं वर पायो गोपाल ॥९५॥

दोहा—घर इक गेह समीप थो सो दीन्हू दुःख पाय ।
दिन प्रति रजनीके विषै आवै तहाँ सु राय ॥९६॥

दीप निमित नहिं तेल दे तबहि अँधेरे माहिं ।
राजा तैठे ही रहै सुख पावै अधिकाहिं ॥९७॥

चौपई—केते इक दिन ऐसे गये । बंधुमती तब यूँ बच दये ॥
तूँ ग्वाल्या तैं कहि इम जाय । दोय बुहारी तो दे लाय ॥९८॥
तिलकमती आरे करि लई । राति भये निज पति पै गई ॥
करि क्रीडा सुख वचन उचार । नाथ सुणूँ अर दास तिसार ॥९९॥

जुगल बुहारी मेरी मात । जाचीं है तुम पै हरषात ॥
यातैं ला दीज्यो तुम देव । अंगी कीन्ह भूप स्वमेव ॥१००॥
राजा तहाँ बैठ्यो अब आय । स्वर्णकार तब सार बुलाय ॥
तिन तैं कही बुहारी दोय । अब हीं करयो देर मत होय ॥१०१॥
इम सुणि तबहीं कंचनकार । लागि गये घडने अधिकार ॥
स्वर्णसींक सबके मनमोहि । रत्न जड़ित मूठ्यो अति सोहि ॥१०२॥
षोडस भूषण और मँगाय । डाबा में धरि चाल्यो राय ॥
एक वेष उत्तम करि ल्यो । रजनी समय नारि ढिग गयो ॥१०३॥
रतन जडितकी कौर जु सार । सोभै सारीके अधिकार ॥
भूषण वेष दये नृप जाय । दोय बुहारी लखत सुहाय ॥१०४॥
नारि चरण नृपके तब धोय । सिर केशनि सैं पूछिव होय ॥
क्रीड़ा करि बहुते सुख पाय । प्रात भये नृप तौ घरि जाय ॥१०५॥
तिलकमती अति हर्षित होय । जाय दई सु बुहारी दोय ॥
और दिखाये भूषण वेष । माता देख्यो सार जु भेष ॥१०६॥
मनमैं दुखित वचन इम कह्यो । तेरो भरता तस्कर भयो ॥
राजाके भूषण अरु वेष । लाय दये तो कूँ जु अशेष ॥१०७॥
हम सब कूँ दुःख दायी सोय । इम कहि खोसि लये दुखि होय ॥
इह दिलगीर भई अधिकाय । साँझ समै राजा जब आय ॥१०८॥
राय तबै संबोधी जोय । मन चिंता राखौ मति कोय ॥
और घणे ही देहूं लाय । इम सुणि तिलकमती सुख पाय ॥१०९॥
दीप थकी जिनदत्त जु आय । बंधुमती पति सौं बतराय ॥
तिलकमतीके अवगुण घणां । कहा कहूँ पति अब वा तणा ॥११०॥
ब्याह समै उठिगी किन थान । परण्यो चोर तहाँ सुख ठान ।
सो तस्कर भूपति कै जाय । भूषण वेष चोरि कर लाय ॥१११॥
याकूँ इह दीने तब आय । खोसि रखे मो ढिगमैं लाय ॥
यह कहि वे सब भूषण सार । लाय धरे आगे भरतार ॥११२॥
सेठ देखि कंपित मन माहिं । तबहीं राज सुथानकि जाहिं ॥
धरे जाय राजाके पाय । सब बिरतंत कह्यो सुणि राय ॥११३॥
कह्यो वेष भूषण तो आय । परि वह चोर आनियो लाय ॥
इहि विधि सेठ सुणी नृप बात । चाल्यो निज घरि कंपित गात ॥११४॥
साह सुतासूँ इह वच कियो । तैं हमकूँ यह कुण दुख दियो ॥
पति कूँ जाणे है अकि नाहि । कह्यो दीप बिनु जाण्यूँ कांहि ॥११५॥
कबहूँ दीपक हेति सनेह । मोकूँ मम माता नहिं देह ॥
सेठ कहै किस ही विधि जान । तिलकमती तब बहुरि बखान ॥११६॥
इक विधि करि मैं जानूँ तात । सो इह सुणो हमारी बात ।

जब पति आये मो ढिग यहाँ । तब उन पद धोवत थी तहाँ ॥११७॥
धोवत चरण पिछानूँ सही । और उपाय इहाँ अब नहीं ॥
सेठ कही भूपति सों जाय । कन्या तो इस भाँति बताय ॥११८॥
ऐसे सुणि तब बोल्यो भूप । इह तो विधि तुम जाणि अनूप ॥
तस्कर ठीक करणके काज । तुम घर आवेंगे हम आज ॥११९॥
सेठ तबै प्रसन्न अति भयो । जाय तयारी करतो थयो ॥
राजा सब परिवार मिलाय । तबहीं सेठ तणें घर जाय ॥१२०॥
प्रजा जु सकल इकट्ठी भई । तिलकमती बुलवाय सु लई ॥
नेत्र मूँदि पद धोवत जाय । यह भी नही नही पति आय ॥१२१॥
जब नृपके चरणांबुज धोय । कहती भई यही पति होय ॥
राजा हँसि इम कहतो भयो । इनि हमको तस्कर कर दयो ॥१२२॥
तिलकमती फुनि ऐसे कही । नृप हो वा अनि होऊ सही ॥
लोक हँसन लागे जिहिं बार । भूप मने कीन्हें ततकार ॥१२३॥
वृथा हास्य लोका मति करो । मैं ही पति निश्चय मन धरो ॥
लोक कहै कैसे इह बणी । आदि अंतलों भूपति भणी ॥१२४॥
तबही लोक सकल इम कह्यो । कन्या धन्य भूप पति लह्यो ॥
पूरब इन व्रत कीन्ह्यो सार । ताको फल इह फल्यो अपार ॥१२५॥
भोजन नन्तर करि उत्साह । सेठ कियो सब देखत ब्याह ॥
ताकूँ पटराणी नृप करी । भूपति मनमें साता धरी ॥१२६॥
एक समैं पति-युत सो नारि । गई सु जिनके गेह मँझारि ॥
वीतराग मुख देख्यो सार । पुण्य उपायो सुख दातार ॥१२७॥
सभा विषैं श्रुतसागर मुनी । बैठे ज्ञाननिधी बहु गुनी ।
तिनको प्रणमि परम सुख पाय । पूछै मुनिवर सों इम राय ॥१२८॥
पूरब भव मेरी पटनार । कहा सुव्रत कीन्ह्यो विधि धार ॥
जाकर रूपवती इह भई । अधिक संपदा शुभ करि लई ॥१२९॥
योगी पूरब सब विरतंत । मुनि निंदादिक सर्व कहंत ॥
अरु सुगंध दशमी व्रत सार । सो इनि कीन्ह्यो सुख दातार ॥१३०॥
ताको फल इह जाणूं सही । ऐसे मुनि श्रुतसागर कही ॥
तब ही आयो एक विमान । जिन श्रुत गुरु बंदे तजि मान ॥१३१॥
मुनि कूँ नमस्कार करि सार । फेर तहाँ नृप-देवि निहार ॥
तिलकमतीके पावाँ परयो । अरु ऐसे सुवचन उच्चरयो ॥१३२॥

दोहा—स्वामिनि तो परसाद तैं मैं पायो फल सार ।
व्रत सुगन्ध दशमी कियो पूरब बिद्या धार ॥१३३॥
ता व्रतके परभाव तैं देव भयो मैं जाय ।
तुम मेरी साधर्मिणी जुग क्रम देखनि आय ॥१३४॥

इमि कहि वस्त्राभरण तैं पूज करी मन लाय
अरु सुर पुन ऐसे कही तुम मेरी वर माय ॥१३५॥

चौपाई—थुति कर सुर निज थानकि गयो । लोकां इह निश्चय लखि लियो ॥
धन्य सुगंधदशमि व्रतसार । ताको फल है अनन्त अपार ॥१३६॥
तब सबही जन यह व्रत धरयो । अपनूं कर्म महाफल हरयो ॥
तिलकमती कंचनप्रभ राय । मुनिकूं नमि अपने घरि जाय ॥१३७॥
देती पात्रनिको शुभदान । करती जिनकी पूज अमान ॥
पालै दर्शन शील सुभाय । अरु उपवास करै मन लाय ॥१३८॥
पतिव्रत गुणकी पालनहार । पुनि सुगंधदशमीव्रत धार ॥
अन्त समाधि थकी तजि प्रान । जाय लयो ईशान सुथान ॥१३९॥
सागर दोय जहाँ तिथि लई । शुभ नैं भयो सुरोत्तम सही ॥
नारीलिंग निद्य छेदियो । चय शिव पासी जिनवर्णयो ॥१४०॥
जहाँ देव सेवा बहु करै । निरमल चरम तहाँ शिर ढरैं ॥
और विभव अधिकौ जिहिं जान । पूरव पुन्य भये तित आन ॥१४१
इह लखि सुगंध दशैं व्रतसार । कीजे हो ! भवि शर्म विचार ॥
जे भवि नरनारी व्रत करैं । ते संसार समुद्रसौं तरैं ॥१४२॥

दोहा—श्रुतसागर ब्रह्मचारि को लै पूरव अनुसार ।
भाषा सार बनायके सुखित खुस्याल अपार ॥१४३॥

परिशिष्ट १

मत्स्यगन्धा-गन्धवतीकथा

(महाभारत १,५७,४७--४९;५४–६८ तथा १,९६ से संकलित)

तत्राद्रिकेति विख्याता ब्रह्मशापाद् वराप्सराः ।
मीनभावमनुप्राप्ता बभूव यमुनाचरी ॥ १ ॥

श्येनपादपरिभ्रष्टं तद्वीर्यमथ वासवम् ।
जग्राह तरसोपेत्य साद्रिका मत्स्यरूपिणी ॥ २ ॥

मासे दशमे प्राप्ते तदा भरतसत्तम ।
उज्जह्रुरुदरात्तस्याः स्त्री-पुमांसं च मानुषम् ॥ ३ ॥

या कन्या दुहिता तस्या मत्स्या मत्स्य-सगन्धिनी ।
राज्ञा दत्ताथ दाशाय इयं तव भवत्विति ।
रूपसत्त्वसमायुक्ता सर्वैः समुदिता गुणैः ॥ ४ ॥

सा तु सत्यवती नाम मत्स्यघात्यभिसंश्रयात् ।
आसीन्मत्स्यगन्धैव कंचित्कालं शुचिस्मिता ॥ ५ ॥

शुश्रूषार्थं पितुर्नावं तां तु वाहयतीं जले ।
तीर्थयात्रां परिक्रामन्नपश्यद्वै पराशरः ॥ ६ ॥

अतीवरूपसंपन्नां सिद्धानामपि काङ्क्षिताम् ।
दृष्ट्वैव च स तां धीमांश्चकमे चारुदर्शनाम् ।
विद्वांस्तां वासवीं कन्यां कार्यवान्मुनिपुंगवः ॥ ७ ॥

साब्रवीत्पश्य भगवन्पारावारे ऋषीन् स्थितान् ।
आवयोर्दृश्यतोरेभिः कथं नु स्यात्समागमः ॥ ८ ॥

एवं तयोक्तो भगवान्नीहारमसृजत्प्रभुः ।
येन देशः स सर्वस्तु तमोभूत इवाभवत् ॥ ९ ॥

दृष्ट्वा सृष्टं तु नीहारं ततस्तं परमर्षिणा ।
विस्मिता चाब्रवीत्कन्या व्रीडिता च मनस्विनी ॥ १० ॥

विद्धि मां भगवन्कन्यां सदा पितृवशानुगाम् ।
त्वत्संयोगाच्च दुष्येत कन्याभावो ममानघ ॥ ११ ॥

कन्यात्वे दूषिते चापि कथं शक्ष्ये द्विजोत्तम ।
गन्तुं गृहं गृहे चाहं धीमन्न स्थातुमुत्सहे ।
एतत्संचिन्त्य भगवान् विधत्स्व यदनन्तरम् ॥ १२ ॥

एवमुक्तवतीं तां तु प्रीतिमानृषिसत्तमः ।
उवाच मत्प्रियं कृत्वा कन्यैव त्वं भविष्यसि ॥ १३ ॥

वृणीष्व च वरं भीरु यं त्वमिच्छसि भामिनि ।
वृथा हि न प्रसादो मे भूतपूर्वः शुचिस्मिते ॥ १४ ॥

एवमुक्ता वरं वव्रे गात्रसौगन्ध्यमुत्तमम् ।
स चास्यै भगवान्प्रादान्मनसः काङ्क्षितं प्रभुः ॥ १५ ॥

ततो लब्धवरा प्रीता स्त्रीभावगुणभूषिता ।
जगाम सह संसर्गमृषिणाद्भुतकर्मणा ॥१६॥

तेन गन्धवतीत्येव नामास्याः प्रथितं भुवि ।
तस्यास्तु योजनाद्गन्धमाजिघ्रन्ति नरा भुवि ॥१७॥

ततो योजनगन्धेति तस्या नाम परिश्रुतम् ।
पराशरोऽपि भगवाञ्जगाम स्वं निवेशनम् ॥१८॥

× × × ×

स (शन्तनुः) कदाचिद्वनं यातो यमुनामभितो नदीम् ।
महीपतिरनिर्देश्यमाजिघ्रद् गन्धमुत्तमम् ॥१९॥

तस्य प्रभवमन्विच्छन्विचचार समन्ततः ।
स ददर्श तदा कन्यां दाशानां देवरूपिणीम् ।

समीक्ष्य राजा दाशेयीं कामयामास शंतनुः ॥२०॥

स गत्वा पितरं तस्या वरयामास तां तदा ।
स च तं प्रत्युवाचेदं दाशराजो महीपतिम् ॥२१॥

यदीमां धर्मपत्नीं त्वं मत्तः प्रार्थयसेऽनघ ।
सत्यवागसि सत्येन समयं कुरु मे ततः ॥२२॥

अस्यां जायेत यः पुत्रः स राजा पृथिवीपतिः ।
त्वदूर्ध्वमभिषेक्तव्यो नान्यः कश्चन पार्थिव ॥२३॥

नाकामयत तं दातुं वरं दाशाय शंतनुः ।
शरीरजेन तीव्रेण दह्यमानोऽपि भारत ॥२४॥

स चिन्तयन्नेव तदा दाशकन्यां महीपतिः ।
प्रत्ययाद् हास्तिनपुरं शोकोपहतचेतनः ॥२५॥

ततस्तत्कारणं ज्ञात्वा कृत्स्नं चैवमशेषतः ।
देवव्रतो महाबुद्धिः प्रययावनुचिन्तयन् ।
अभिगम्य दाशराजानं कन्यां वव्रे पितुः स्वयम् ।।२६।।

एवमेतत्करिष्यामि यथा त्वमनुभाषसे ।
योऽस्यां जनिष्यते पुत्रः स नो राजा भविष्यति ।।२७।।

इत्युक्तः पुनरेवाथ तं दाशः प्रत्यभाषत ।
राजमध्ये प्रतिज्ञातमनुरूपं तवैव तत् ।।२८।।

नान्यथा तन्महाबाहो संशयोऽत्र न कश्चन ।
तवापत्यं भवेद्यत्तु तत्र नः संशयो महान् ।।२९।।

तस्य तन्मतमाज्ञाय सत्यधर्मपरायणः ।
प्रत्यजानात्तदा राजन् पितुः प्रियचिकीर्षया ।।३०।।

दाशराज निबोधेदं वचनं मे नृपोत्तम ।
अद्यप्रभृति मे दाश ब्रह्मचर्यं भविष्यति ।।३१।।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा संप्रहृष्टतनूरुहः ।
ददानीत्येव तं दाशो धर्मात्मा प्रत्यभाषत ।।३२।।

ततोऽन्तरिक्षेऽप्सरसो देवाः सर्षिगणास्तथा ।
अभ्यवर्षन्त कुसुमैर्भीष्मोऽयमिति चाब्रुवन् ।।३३।।

ततः स पितुरर्थाय तामुवाच यशस्विनीम् ।
अधिरोह रथं मातर्गच्छावः स्वगृहानिति ।।३४।।

एवमुक्त्वा तु भीष्मस्तां रथमारोप्य भामिनीम् ।
आगम्य हास्तिनपुरं शंतनोः संन्यवेदयत् ।।३५।।

ततो विवाहे निवृत्ते स राजा शंतनुर्नृपः ।
तां कन्यां रूपसंपन्नां स्वगृहे संन्यवेशयत् ।।३६।।

●

परिशिष्ट २

नागश्री-सुकुमालिका-द्रौपदी कथानक

(नायाधम्मकहाओ—अध्ययन १६ से संकलित)

तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था। तीसे णं चंपाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए सुभूमिभागे नामं उज्जाणे होत्था। तत्थ णं चंपाए नयरीए तओ माहणा भायरो परिवसंति। तं जहा—सोमे सोमदत्ते सोमभूई रिउव्वेय-जउव्वेय-सामवेय-अथव्वणवेय सुपरिनिट्ठिया। तेसिं माहणाणं तओ भारियाओ होत्था। तं जहा—नागसिरी भूयसिरी जक्खसिरी तेसिं णं माहणाणं इट्ठाओ विउले माणुस्सए कामभोए भुंजमाणा विहरंति। तए णं तेसिं माहणाणं अन्नया कयाइ एगयओ समुवागयाणं इमेयारूवे मिहोकहा-समुल्लावे समुप्पज्जित्था—एवं खलु देवाणुप्पिया अम्हं इमे विउले धणे सावएज्जे अलाहि असत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं पकामं भोत्तुं पकामं परिभाएउं। तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया अन्नमन्नस्स गिहेसु कल्लाकल्लिं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडेउं परिभुंजेमाणाणं विहरित्तए। अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति। अन्नमन्नस्स गिहेसु विपुलं असणं उवक्खडावेंति परिभुंजेमाणा विहरंति।

तए णं तीसे नागसिरीए माहणीए अन्नया कयाइ भोयणवारए जाए यावि होत्था। तए णं सा नागसिरी माहणी विपुलं असणं उवक्खडावेइ एगं महं सालइयं तित्तलाउयं बहुसंभारसंजुत्तं नेहावगाढं उवक्खडावेइ एगं बिंदुयं करयलंसि आसाएइ। तं खारं कडुयं अखज्जं विसभूयं जाणित्ता एवं वयासी—धिरत्थु णं मम नागसिरीए अधन्नाए अपुण्णाए दूभगाए जाए णं मए सालइए बहुसंभारसंभिए नेहावगाढे उवक्खडिए सुबहुदव्वक्खए नेहक्खए य कए। तं जइ णं ममं जाउयाओ जाणिस्संति तो णं मम खिंसिस्संति। तं जावताव ममं जाउयाओ ण जाणंति ताव मम सेयं एयं सालइयं तित्तलाउयं बहुसंभारनेहकयं एगंते गोवित्तए अन्नं सालइयं महुरलाउयं नेहावगाढं उवक्खडित्तए। एवं संपेहेइ तं सालइयं गोवेइ अन्नं सालइयं उवक्खडेइ तेसिं माहणाणं ण्हायाणं सुहासणवरगयाणं तं विपुलं असणं परिवेसेइ। तए णं ते माहणा जिमियभुत्तुत्तरागया समाणा आयंता चोक्खा परमसुइभूया सकम्मसंपउत्ता जाया यावि होत्था। तए णं ताओ माहणीओ ण्हायाओ विभूसियाओ तं विपुलं असणं आहारेंति जेणेव सयाइं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति सकम्मसंपउत्ताओ जायाओ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं धम्मघोसा नामं थेरा बहुपरिवारा जेणेव चंपा नयरी जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे तेणेव उवागच्छंति अहापडिरूवं विहरंति। परिसा निग्गया धम्मो कहिओ परिसा पडिगया। तए णं तेसिं धम्मघोसाणं थेराणं अंतेवासी धम्मरुई नामं अणगारे उराले तेयलेस्से मासंमासेणं खममाणे विहरइ। तए णं से धम्मरुई अणगारे मासखमण-पारणंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ बीयाए पोरिसीए उग्गाहेइ धम्मघोसं थेरं आपुच्छइ चंपाए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमकुलाइं अडमाणे जेणेव नागसिरीए माहणीए गिहे तेणेव अणुपविट्ठे। तए णं सा नागसिरी माहणी धम्मरुइं एज्जमाणं पासइ तस्स सालइयस्स तित्त-

कडुयस्स बहुनेहावगाढस्स एडणट्ठयाए हट्ठतुट्ठा उट्ठाए उट्ठेइ जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ तं सालइयं तित्तकडुयं च बहुनेहावगाढं धम्मरुइस्स अणगारस्स पडिग्गहंसि सव्वमेव निस्सिरइ। तए णं से धम्मरुई अणगारे अहापज्जत्तमिति कट्टु नागसिरीए माहणीए गिहाओ पडिनिक्खमइ चंपाए नयरीए मज्झंमज्झेणं पडिनिक्खमइ जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे जेणेव धम्मघोसा थेरा तेणेव उवागच्छइ धम्मघोसस्स अदूरसामंते अन्नपाणं पडिलेहेइ करयलंसि पडिदंसेइ। तए णं धम्मघोसा थेरा तस्स सालइयस्स नेहावगाढस्स गंधेणं अभिभूया समाणा तओ सालइयाओ एगं बिंदुयं गहाय करयलंसि आसादिंति तित्तं खारं कडुयं अखज्जं अभोज्जं विसभूयं जाणित्ता धम्मरुइं अणगारं एवं वयासी—जइ णं तुमं देवाणुप्पिया एयं सालइयं आहारेसि तो णं तुमं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि तं मा णं तुमं देवाणुप्पिया इमं आहारेसि। तं गच्छह इमं एगंतमणावाए अचित्ते थंडिल्ले परिट्ठवेहि अन्नं फासुयं एसणिज्जं असणं पडिगाहेत्ता आहारं आहारेहि।

तए णं से धम्मरुई अणगारे धम्मघोसेणं थेरेणं एवं वुत्ते समाणे धम्मघोसस्स थेरस्स अंतियाओ पडिनिक्खमइ सुभूमिभागाओ उज्जाणाओ अदूरसामंते थंडिल्लं पडिलेहेइ ताओ सालइयाओ एगं बिंदुगं गहाय थंडिल्लंसि निसिरइ। तए णं तस्स सालइयस्स तित्तकडुयस्स बहुनेहावगाढस्स गंधेणं बहूणि पिपीलिगासहस्साणि पाउब्भूया जा जहा य णं पिपीलिगा आहारेइ सा णं तहा अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जइ। तए णं तस्स धम्मरुइस्स अणगारस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए—जइ ताव इमस्स सालइयस्स एगम्मि बिंदुयम्मि पक्खित्तंमि अणेगाइं पिपीलिगासहस्साइं ववरोविज्जंति तं जइ णं अहं एयं सालइयं थंडिल्लंसि सव्वं निसिरामि तो णं बहूणं पाणाणं वहकरणं भविस्सति। तं सेयं खलु मम एयं सालइयं सयमेव आहारित्तए। मम चेव एएणं सरीरएणं निज्जाउ त्ति कट्टु एवं संपेहेइ तं सालइयं तित्तकडुयं बिलमिव पन्नगभूएणं अप्पाणएणं सव्वं सरीरकोट्ठगंसि पक्खिवइ। तए णं तस्स धम्मरुइस्स तं सालइयं आहारियस्स समाणस्स मुहुत्तंतरेणं परिणममाणंसि सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला दुरहियासा। तए णं से धम्मरुई अणगारे अथामे अबले अवीरिए अपुरिसकारपरक्कमे आधारणिज्जमित्ति कट्टु आयारभंडगं एगंते ठावेइ थंडिल्लं पडिलेहेइ दब्भसंथारगं संथारेइ दुरूहइ पुरत्थाभिमुहे संपलियंकनिसण्णे करयलपरिग्गहियं एवं वयासी—नमोत्थु णं अरहंताणं नमोत्थु णं धम्मघोसाणं थेराणं मम धम्मायरियाणं। पुव्विं पि णं मए धम्मघोसाणं थेराणं अंते सव्वे पाणाइवाए सव्वे परिग्गहे जावज्जीवाए पच्चक्खाए। इयाणिं पि णं पच्चक्खामि त्ति कट्टु आलोइय पडिक्कंते समाहिपत्ते कालगए। तए णं ते धम्मघोसा थेरा पुव्वगए उवओगं गच्छंति समणे निग्गंथे निग्गंथीओ य सद्दावेंति एवं वयासी एवं खलु अज्जो मम अंतेवासी धम्मरुई नामं अणगारे कालमासे कालं किच्चा उड्ढं सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे उववन्ने। तं धिरत्थु णं अज्जो नागसिरीए माहणीए अधन्नाए अपुण्णाए जाए णं तहारूवे साहू जीवियाओ ववरोविए। तए णं ते समणा निग्गंथा चंपाए सिंघाडग पहेसु बहुजणस्स एवमाइक्खंति—धिरत्थु णं देवाणुप्पिया नागसिरीए जाए णं तहारूवे साहू जीवियाओ ववरोविए।

तए णं तेसिं समणाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ—धिरत्थु नागसिरीए माहणीए। तए णं ते माहणा चंपाए नयरीए बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ता मिसिमिसेमाणा जेणेव नागसिरी माहणी तेणेव उवागच्छंति नागसिरिं माहणिं एवं वयासी—हं भो नागसिरी अपत्थियपत्थिए दुरंतपंतलक्खणे हीणपुण्णचाउद्दसे धिरत्थु णं तव अधन्नाए अपुण्णाए निंबोलियाए

जाए णं तहारूवे साहू ववरोविए उच्चावयाहिं अक्कोसणाहिं अक्कोसंति उद्धंसेंति निब्भच्छेंति निच्छोडेंति तज्जेंति तालेंति सयाओ गिहाओ निच्छुभंति।

तए णं सा नागसिरी सयाओ गिहाओ निच्छूढा समाणी चंपाए नयरीए सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु बहुजणेणं हीलिज्जमाणी खिंसिज्जमाणी निंदिज्ज-माणी गरहिज्जमाणी तिज्जिज्जमाणी पव्वहिज्जमाणी धिक्कारिज्जमाणी थुक्कारिज्जमाणी कत्थइ ठाणं वा निलयं वा अलभमाणी दंडीखंडनिवसणा खंडमल्लय-खंडघडग-हत्थगया फुट्टहडाहड सीसा मच्छियचडगरेणं अन्निज्जमाणमग्गा गिहंगिहेणं देहंबलियाए वित्ति कप्पेमाणा विहरइ। तए णं तीसे नागसिरीए तब्भवंसि चेव सोलस रोयायंका पाउब्भूया। तं जहा—सासे कासे जोणिसूले जरे दाहे कुच्छिसूले भगंदरे अरिसए अजीरए दिट्ठिसूले मुद्धसूले अकारिए अच्छिवेयणा कण्णवेयणा कण्डुए कोढे य।

तए णं सा नागसिरी सोलसहिं रोगायंकेहिं अभिभूया समाणी अट्टदुहट्टवसट्टा कालमासे कालं किच्चा छट्ठीए पुढवीए नेरइएसु उववन्ना। तओ अणंतरं उवट्टित्ता मच्छेसु उववन्ना। तत्थ णं सत्थवज्झा दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा अहेसत्तमाए पुढवीए उववन्ना। तओणंतरं उव्वट्टित्ता दोच्चं पि मच्छेसु उववज्जइ। दोच्चं पि अहे सत्तमाए पुढवीए तओहिंतो तच्चं पि मच्छेसु दोच्चं पि छट्ठीए पुढवीए तओ उरगेसु तओ जाई इमाई खहयरविहाणाई अदुत्तरं च णं खर-बायर-पुढविकाइयत्ताए तेसु अणेगसय-सहस्सखुत्तो।

सा णं तओणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे चंपाए नयरीए सागर-दत्तस्स सत्थवाहस्स भद्दाए भारियाए कुच्छिंसि दारियत्ताए पच्चायाया। अम्मापियरो नामधेज्जं करेंति सूमालिय त्ति। सा उम्मुक्कबालभावा रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा होत्था।

तए णं से जिणदत्ते सत्थवाहे अन्नया कयाइ सागरदत्तस्स सत्थवाहस्स अदूरसामंतेणं वीईवयइ सूमालियं दारियं पासइ दारियाए रूवे य जायविम्हए जेणेव सागरदत्तस्स गिहे तेणेव उवागए सागरदत्तं एवं वयासी-एवं खलु अहं देवाणुप्पिया तव धूयं सूमालियं मम पुत्तस्स सागरस्स भारियत्ताए वरेमि। तए णं से सागरदत्ते जिणदत्तं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया सूमालिया दारिया एगजाया इट्ठा। तं नो खलु अहं इच्छामि खणमवि विप्पओगं। तं जइ सागरए दारए मम घरजामाउए भवइ तो णं दलयामि। तए णं जिणदत्ते अन्नया कयाइ सोहणंसि तिहिकरणे अग्गिहोमं करावेइ सागरं दारयं सूमालियाए दारियाए पाणिं गेण्हावेइ।

तए णं सागरए सूमालियाए सद्धिं तलमंसि निवज्जइ एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ जहानामए असिपत्ते। तए णं से सूमालियं दारियं सुहपसुत्तं जाणित्ता सयणिज्जाओ उट्ठेइ वासघरस्स दारं विहाडेइ मारामुक्के विव काए जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। सागरदत्ते दासचेडीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते मिसिमिसेमाणे जिणदत्तस्स गिहे उवागच्छइ जिणदत्तं एवं वयासी—किं नं देवाणुप्पिया एवं जुत्तं वा पत्तं वा कुलाणुरूवं वा ? जिणदत्ते सागरं दारयं एवं वयासी—दुट्ठु णं पुत्ता तुमे कयं सागरदत्तस्स गिहाओ इहं हव्वमागच्छंतेणं। तं गच्छह णं तुमं पुत्ता एवमवि गए सागरदत्तस्स गिहे। तए णं से सागरए एवं वयासी—अवियाइं अहं ताओ गिरिपडणं वा तरुपडणं वा मरुप्पवायं वा जलप्पवायं वा जलणप्पवेसं वा विसभक्खणं वा सत्थोवाडणं वा विहाणसं वा गिद्धपट्ठं

वा पव्वज्जं वा विदेसगमणं वा अब्भुवगच्छेज्जा नो खलु अहं सागरदत्तस्स गिहं गच्छेज्जा सागरदत्ते कुड्डंतरियाए सागरस्स एयमट्ठं निसामेइ लज्जिए विलीए जिणदत्तस्स गिहाओ पडिनिक्खमइ सए गिहे उवागच्छइ सुकुमालियं दारियं सद्दावेइ अंके निवेसेइ एवं वयासी—किं नं तव पुत्ता सागरएणं दारएणं ? अहं णं तुमं तस्स दाहामि जस्स णं तुमं इट्ठा मणामा भविस्ससि ।

तए णं से सागरदत्ते अन्नया उप्पिं आगासतलगंसि सुहनिसण्णे रायमग्गं आलोएमाणे एगं महं दमगपुरिसं पासइ दंडि-खंड-निवसणं खंडमल्लग-खंडघडगहत्थगयं मच्छियासहस्सेहिं अन्निज्जमाणमग्गं । तए णं से कोडुंबिय-पुरिसे सद्दावेइ । ते तं दमगपुरिसं असणेण उवप्पलोभंति तस्स अलंकारियकम्मं करेंति विपुलं असणं भोयावेंति सागरदत्तस्स समीवे उवणेंति । सागरदत्ते सूमालियं दारियं ण्हायं सव्वालंकारविभूसियं करेत्ता तं दमगपुरिसं एवं वयासी-एस णं देवाणुप्पिया मम धूया इट्ठा । एयं णं अहं तव भारियत्ताए दलयामि भद्दियाए भद्दओ भवेज्जासि । दमगपुरिस एयमट्ठं पडिसुणेइ सूमालियाए सद्धिं वासघरं अणुपविसइ तल्पिमंसि निवज्जइ । सूमालियाए एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ।

तए णं सा भद्दा कल्लं पाउप्पभाए दासचेडिं सद्दावेइ सागरदत्तस्स एयमट्ठं निवेदेइ । से तहेव संभंते उवागच्छइ सूमालियं दारियं अंके निवेसेइ एवं वयासी-अहो णं तुमं पुत्ता पुरापोराणाणं कम्माणं पच्चणुब्भवमाणी विहरसि । तं मा णं तुमं पुत्ता ओहयमणसंकप्पा झियाहि । तुमं णं पुत्ता मम महाणसंसि विपुलं असणं परिभाएमाणी विहराहि । तए णं सा सूमालिया दारिया एयमट्ठं पडिसुणेइ महाणसंसि विपुलं असणं दलमाणी विहरइ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं गोवालियाओ अज्जाओ बहुस्सुयाओ अणुपविट्ठे । सूमालिया पडिलाभेत्ता एवं वयासी—तुब्भे णं अज्जाओ बहुनायाओ । उवलद्धे णं जेणं अहं सागरस्स दारगस्स इट्ठा कंता भवेज्जामि । अज्जाओ तहेव भणंति तहेव साविया जाया तहेव चिन्ता तहेव सागरदत्तस्स आपुच्छइ गोवालियाणं अंतियं पव्वइया अज्जा जाया ।

तत्थ णं चंपाए ललिया नाम गोट्ठी परिवसइ नरवइदिन्नपयारा अम्मापिइनिययनिप्पिवासा वेसविहारकयनिकेया नाणाविह-अविणयप्पहाणा । तीसे ललियाए गोट्ठीए अन्नया कयाइ पंच गोट्ठिल्लगपुरिसा देवदत्ताए गणियाए सद्धिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति । तत्थ णं एगे गोट्ठिल्लगपुरिसे देवदत्तं गणियं उच्छंगे धरेइ एगे पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ एगे पुप्फपूरगं रएइ एगे पाए रएइ एगे चामरुक्खेवं करेइ । सूमालिया अज्जा पासइ । इमेयारूवे संकप्पे समुप्पज्जित्था—अहो णं इमा इत्थिया पुरापोराणां कम्माणं पच्चणुब्भवमाणी विहरइ । तं जइ णं केइ इमस्स सुचरियस्स तव-नियम-बंभचेरवासस्स कल्लाणे फलवित्तिविसेसे अत्थि तो णं अहमवि आगमिस्सेणं भवग्गहणेणं इमेयारूवाइं उरालाइं सुहाइं पच्चणुब्भवमाणी विहरिज्जामि त्ति कट्टु नियाणं करेइ ।

तए णं सा सूमालिया अज्जा सरीरबाउसा जाया । अणोहट्टिया अनिवारिया सच्छंदमई अभिक्खणं हत्थे धोवेइ सीसं धोवेइ मुहं धोवेइ कुसीला संसत्ता बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणइ कालमासे कालं किच्चा ईसाणे कप्पे देवगणियत्ताए उववन्ना । आउक्खएणं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे भारहे वासे पंचालेसु जणवएसु कंपिल्लपुरे नयरे दुवयस्स रन्नो चुलणीए देवीए कुच्छिंसि दारियत्ताए पच्चायाया । अम्मापियरो इमं एयारूवं नामधेज्जं करेंति दोवई त्ति ।

तए णं सा दोवई देवी रायवरकन्ना उम्मुक्कबालभावा उक्किट्ठसरीरा जाया। दुवए राया दोवईए रूवे जोव्वणे य लावण्णे य जाय-विम्हए दोवइं एवं वयासी—अज्जयाए सयंवरं विरयामि। जं णं तुमं सयमेव रायं वा जुवरायं वा वरेहिसि से णं तव भत्तारे भविस्सइ।

तए णं से दुवए राया कोडुंबियपुरिसे एवं वयासी—गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया कंपिल्लपुरे नयरे बहिया गंगाए महानईए अदूरसामंते एगं महं सयंवरमंडवं करेह खिप्पामेव वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आवासे करेह। तए णं से वासुदेवपामोक्खाणं रायसहस्साणं आगमणं जाणेत्ता अग्घं च पज्जं च गहाय सव्विड्ढीए सक्कारेइ सम्माणेइ। ते जेणेव सया सया आवासा तेणेव उवागच्छंति। तए णं तं दोवइं अंतेउरियाओ सव्वालंकारविभूसियं करेंति। अंतेउराओ पडिनिक्खमइ चाउग्घंटं आसरहं दुरूहइ। धट्ठज्जुणे कुमारे दोवईए कन्नाए सारत्थं करेइ सयंवरामंडवे उवागच्छइ। दोवई एगं महं सिरिदामगंडं पाडलमल्लियचंपयगंधड्ढाणि मुयंतं परमसुहफासं दरिसणिज्जं गेण्हइ। बहूणं रायवरसहस्साणं मज्झंमज्झेणं समइच्छमाणी पुव्वकयनियाणेणं चोइज्जमाणी जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छइ। तेणं दसद्धवण्णेणं कुसुमदामेणं आवेढिय-परिवेढिए करेइ। एवं वयासी—एए णं मए पंच पंडवा वरिया। तए णं ताइं वासुदेव-पामोक्खाइं बहूणि रायसहस्साणि महया सद्देणं उग्घोसेमाणाइं एवं वयंति—सुवरियं खलु भो दोवईए रायवरकन्नाए त्ति कट्टु सयंवर-मंडवाओ पडिनिक्खमंति।

परिशिष्ट ३

विद्वज्जुगुप्सायां श्रावकसुताउदाहरणम् ।

हरिभद्र—श्रावकप्रज्ञप्ति टीका (गा० ९३) (लगभग सन् ७५० ई०)

विद्वज्जुगुप्सायां श्रावकसुता-उदाहरणे—एगो सेट्ठी पच्चंते वसइ । तस्स धूयाविवाहे कह वि साहुणा आगया । सा पिउणा भणिया—पुत्तिए पडिलाभेहि साहुणो । सा मंडिय-पसाहिया पडिलाभेइ । साहूण जल्लगंधो तीए आघाओ । सा चिंतेइ—अहो अणवज्जो भट्टारगेहिं धम्मो देसिओ । जइ पुण फासुएण पाणीएण ण्हाएज्जा, को दोसो होज्जा ? सा तस्स ठाणस्स अणालोइय अप्पडिक्कंता कालं काऊणं रायगिहे गणियापोट्टे समुप्पन्ना । गब्भगया चेव अरइं जणेइ । गब्भसाडणेहि य ण सडइ । जाया समाणी उज्झिया ? सा गंधेण तं वणं वासेइ । सेणिओ तेण पदेसेण णिग्गच्छइ सामिणो वंदिउं । सो खंधावारो तीए गंधं ण सहइ । रन्ना पुच्छियं किं एयं । तेहिं कहियं दारियाए गंधो । गंतूणं दिट्ठा । भणइ एस एव पढमपुच्छ त्ति गओ । वंदित्ता पुच्छइ । तओ भगवया तीए उट्ठाण-परियावणिया कहिया । तओ राया भणइ—कहिं एसा पच्चणुभविस्सइ सुहं वा दुक्खं वा । सामी भणइ—एएण कालेण वेइयं । इयाणि सा तव चेव भज्जा भविस्सइ अग्गमहिसी । अट्ठ संवच्छराणि जाव तुब्भं रममाणस्स पट्ठीए सा जं लीलं काहिइ तं जाणिज्जसु । वंदित्ता गओ । सा य अवगयगंधा आहीरेण गहिया संवड्ढिया जोव्वणत्था जाया । कोमुइचारं मायाए समं आगया । अभओ सेणिओ य पच्छन्ना कोमुइचारं पेच्छंति । तीए दारियाए अंगफासेण सेणिओ अज्झोववन्नो नाममुद्दिया तीए बंधइ । अभयस्स कहियं नाममुद्दा हरिया मग्गाहि । तेण मणुस्सा दारेहिं बद्धेहिं ठविया । एक्केक्कं माणुस्सं पलोएऊण णीणिज्जइ । सा दारिया दिट्ठा । चोरि त्ति गहिया परिणीया य । अन्नया वसोकेण रमंति । राएणं राणियाउ पोत्तेण वाहिंति । इयरी पोत्तं दाउं विलग्गा । रन्ना सरियं मुक्का य पव्वइया ।

परिशिष्ट ४

लक्ष्मीमती-कथानक

(जिनसेन-हरिवंशपुराण ६०, २५-४०) (सन् ७८३ ई०)

अत्रैव भरतक्षेत्रे विषये मगधाभिधे ।
ब्राह्मणी सोमदेवस्य लक्ष्मीग्रामेऽग्रजन्मनः ।।१।।
आसील्लक्ष्मीमती नाम्ना लक्ष्मीरिव सुलक्षणा ।
रूपाभिमानतो मूढा पूज्यांश्च प्रतिमन्यते ।।२।।
धृतप्रसाधना वक्त्रं कदाचिच्चित्तहारिणी ।
नेत्रहारिणि चन्द्राभे पश्यन्ती मणिदर्पणे ।।३।।
समाधिगुप्तनामानं तपसातिकृशीकृतम् ।
साधुं भिक्षागतं दृष्ट्वा निनिन्द विचिकित्सिता ।।४।।
मुनेर्निन्दातिपापेन सप्ताहाभ्यन्तरे च सा ।
किलष्टोदुम्बरकुष्ठेन प्रविश्याग्निमगान्मृतिम् ।।५।।
सहार्ता सा खरी भूत्वा मृत्वा लवणभारतः ।
शूकरी मानदोषेण जाता राजगृहे पुरे ।।६।।
वराकी मारिता मृत्वा गोष्ठेऽजायत कुक्कुरी ।
गोष्ठागतेन सा दग्धा परुषेण दवाग्निना ।।७।।
त्रिपदाख्यस्य मण्डूक्यां मण्डूकग्रामवासिनः ।
मत्स्यबन्धस्य जाता सा दुहिता पूतिगन्धिका ।।८।।
मात्रा त्यक्ता स्वपापेन पितामह्या प्रवर्धिता ।
निष्कुटे वटवृक्षस्य जालेनाच्छादयन्मुनिम् ।।९।।
बोधितावधिनेत्रेण प्रभाते करुणावता ।
धर्मं समाधिगुप्तेन प्रोक्तपूर्वभवाग्रहीत् ।।१०।।
पुरं सोपारकं याता तत्रार्याः समुपास्य सा ।
ययौ राजगृहं ताभिः कुर्वाणाचाम्लवर्धनम् ।।११।।
अत्र सिद्धशिलां वन्द्यां वन्दित्वा च स्थिता सती ।
कृत्वा नीलगुहायां सा सती सल्लेखनां मृता ।।१२।।
अच्युतेन्द्रमहादेवी नाम्ना गगनवल्लभा ।
वल्लभाभवदुत्कृष्टांस्थितिस्तत्र देव्यसौ ।।१३।।
ततोऽवतीर्य भीष्मस्य श्रीमत्यां त्वं सुताऽभवः ।
नगरे कुण्डिनाभिख्ये रुक्मिणी रुक्मिणः स्वसा ।।१४।।
कृत्वा चात्र भवे भव्ये प्रव्रज्यां विबुधोत्तमः ।
च्युत्वा तपश्च कृत्वात्र नैर्मन्थ्यं मोक्ष्यसे ध्रुवम् ।।१५।।

■

सुगंधदशमी कथा

चित्र-परिचय

जिनसागर कृत सुगंधदशमी कथा की सचित्र प्रति नागपुर के सेनगण भाण्डार की है। इसका आकार १०½×६ इंच है। कागज पुष्ट व देशी पीले से रंग का है। प्रत्येक पृष्ठ पर मराठी पद्य हैं और चित्र। ग्रंथ के कुल ४६ पृष्ठों में से केवल एक पृष्ठ १६ वां ऐसा है जिस पर चित्र नहीं है। अन्य सभी पृष्ठों पर एक या दो चित्र हैं, जिनकी कुल संख्या ६७ है। समस्त पृष्ठों का अनुमानतः चतुर्थांश लेखन और तीन चतुर्थांश चित्रों से परिपूर्ण है।

ग्रंथ में उसके रचनाकाल अथवा लेखनकाल का कोई उल्लेख नहीं है। किन्तु जिनसागर की अन्य जो रचनायें उपलब्ध हैं उनमें शक संवत् १६४६ से १६६६ तक के उल्लेख पाये गये हैं। कर्ता ने अपने गुरु देवेन्द्रकीर्ति का भी उल्लेख किया है जो निश्चयतः कारंजा के मूलसंघ बालात्कार गण की भट्टारक गद्दी पर शक संवत् १६२१ से १६५१ तक विराजमान थे। चूंकि जिनसागर ने अपनी यह रचना उन्हें ही समर्पित की थी और उस समर्पण का चित्रण भी ग्रंथ के अन्त में पाया जाता है, अतः सिद्ध है कि यह रचना शक १६५१ से पूर्व समाप्त हो चुकी थी। आश्चर्य नहीं जो प्रस्तुत हस्त-लिखित प्रति स्वयं उसके कर्ता जिनसागर के हाथ की ही हो, और चित्र भी उन्हीं के बनाये हुए हों।

चित्रों की शैली भी शक संवत् की १७हवीं शती की है। चित्रों के रंग चटकीले हैं। पुरुषों और स्त्रियों की आकृतियों के अंकन में सावधानी बरती गई है। यद्यपि रेखांकन स्थूल है, तथापि भावों के प्रदर्शन में चित्रकार को पर्याप्त सफलता मिली है। पुरुषों की पगड़ियां कुज्जेदार और लम्बे चोगे पैरों के टहनों तक लटकते हुए हैं। ये ईसवी की १८ वीं शती के प्रारंभ की चित्र-शैली के लक्षण हैं। अन्य सभी बातों में भी चित्र उक्त काल की दक्षिण भारतीय मराठा शैली के हैं।

उक्त संपूर्ण पुस्तक उसके लेख व चित्रों सहित यहाँ छाया चित्रों में भी प्रस्तुत की जा रही है। हमारी इच्छा थी कि ये सभी चित्र उसके मौलिक रंगीन रूप में ही छापे जांय। किन्तु रंगीन ब्लाकों के निर्माण व छपाई के अत्यधिक खर्च को देखते हुए यह निश्चय किया गया कि केवल चार चित्र रंगीन रखे जांय जो चित्रों में रंगों के प्रयोग को सूचित करने के लिये पर्याप्त होंगे। इसी कारण प्रस्तुत चित्र-परिचय में रंगों की सूचना पर विशेष ध्यान दिया गया है। चित्रों की अन्य विशेषताएँ उनके साक्षात् दर्शन से अवगत हो ही जावेंगी।

पृ० १ चित्र-१

श्री जिनेन्द्र देव

लाल पृष्ठभूमि के ऊपर श्वेत और पीलेरंग के चित्र, बीच में पद्मासन में तीर्थंकर, और उनके ऊपर तीन छत्र, जिनसे काले फुंदने लटकते दिखाये गयेहै। जिन भगवान् के दाहिनी और बांयी ओर दो पार्श्वचर सेवक हैं, जो लम्बे पीले रंग के अंगरखे पहने है। उनके सिर पर पगड़ी और कमर में काला पटका बंधा है। एक के अंगरखे पर काली बुंदकियां और दूसरे पर काली धारियां हैं। मूल के अनुसार वे चामरग्राही मुद्रा में हैं। आकार ५३/४×५ इंच।

पृ० २ चित्र २

शारदा देवी

नीली पृष्ठभूमि पर लाल रंग की साड़ी पहने हंस वाहन पर चतुर्भुजी भगवती शारदा का चित्र है। वे दो हाथों में वीणा लिये हैं, तीसरा हाथ वीणा के तारों पर है, और चौथा ऊपर को उठा है। उनके पीछे चामरग्राहिणी मुद्रा में अनुचरी है, जिसके बांयें हाथ में आरती है। सामने लाल रंग का चोगा पहने एक पुरुष उनकी आराधना कर रहा है। आकार ४×५ इंच।

पृ० २ चित्र ३

गुरु द्वारा भक्तों को सुगंध दशमी कथा का उपदेश

एक मंडप के नीचे धर्म गुरु ऊंचे आसन पर विराजमान हैं। उनके श्वेत शरीर पर हरे रंग का वस्त्र और पीछे पीले रंग का बड़ा तकिया है। वे धर्मोपदेश मुद्रा में है। सामने दो भक्त अंजलि मुद्रा में घुटने मोड़कर बैठे हुए उपदेश सुन रहे हैं। एक लाल तथा दूसरा हरा अंगरखा पहने हैं। एक का वर्ण श्वेत तथा दूसरे का काला है। मंडप के ऊपर गहरे बैंगनी रंग में आकाश का चित्रण है। धर्मगुरु का आसन भी इसी रंग का है। आकार ४×५ इंच।

पृ० ३ चित्र ४

वाराणसी के राजा पद्मनाभि और उनकी पत्नी श्रीमती

षट्कोण भवन में मंडप के नीचे राजारानी गद्देदार आसनों पर बैठे हैं। चित्र की पृष्ठभूमि बाहर गहरे नीले और भीतर हलके हरे रंग की है। आसन का रंग बैंगनी है। राजा का अंगरखा हलके बैंगनी रंग का तथा रानी की साड़ी लाल रंग की है। रानी की चामरग्राहिणी पीले रंग के वस्त्र पहने है। मंडप के ऊपर कलश है, जिस पर सुनहली बुंदकियां हैं। चित्र के निचले भाग में तीन परिचारिकायें जल भरने के लिये घट लेकर आयीं हैं। दाहिनी ओर की पृष्ठभूमि बैंगनी और बाईं ओर की नीली है। दासियों के घाघरे और चोलियों व ओढ़नी में लाल, गहरे हरे और पीले रंगों का प्रयोग हुआ है। आकार ८×५ इंच।

पृ० ४ चित्र ५

राजा-रानी का वन विहार

चित्र की पृष्ठ भूमि नीले रंग की है। ऊपर के भाग में वनवृक्षों का दृश्य है। नीचे दो घोड़ों और दो पहियों से युक्त रथ है। रथ के ऊपर शिखर है। उसके आगे के ईषा भाग (धुरों) पर सारथी बैठा है। सामने एक अग्रेसर सेवक है। नीचे के भाग में तुरही फूंकता हुआ एक पुरुष लाल धारीदार अंगरखा पहने हुये चल रहा है। चित्र में दाहिनी ओर एक सिंह और एक पुरुष दिखाया गया है। यह वन विहार के दृश्य से संगत है। चित्र में रथ का चौकोर विन्यास उत्तम है, जिसके भीतर के उपस्थ भाग में राजा और रानी अंकित किये गये हैं। आकार ८×५ इंच।

पृ० ५ चित्र ६

राजा-रानी को सुदर्शन मुनि का दर्शन

पृष्ठभूमि का रंग नीला है। मासोपवासी मुनि का शरीर पुष्ट बनाया गया है। उनके पीछे एक वृक्ष है। वे दिगंबर हैं। उन्हें देखकर राजा ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। राजा का धारीदार अंगरखा लाल रंग का है। उस पर हरे रंग का पटका है। रानी की साड़ी गहरे बैंगनी रंग की है। उसके पीछे भी वृक्ष बना है। आकार ३×५ इंच।

पृ० ५ चित्र ७

राजा के आदेश पर रानी घर को लौटी

पृष्ठ भूमि हलके हरे रंग की है। चित्र में दाहिनी ओर राजा और रानी वृक्ष के नीचे खड़े परामर्श कर रहे हैं। बांयी ओर राजा के आदेश से रानी मुनि को आहार कराने के लिये घर को लौट रही है। राजा का अंगरखा हलके बैंगनी रंग का सुनहले बुंदकीदार तथा पगड़ी लाल है। रानी की साड़ी नीली और ओढ़नी तथा लहंगे के सामने का पटका लाल है। नीचे की भूमि गहरे बैंगनी रंग की है। आकार ४×५ इंच।

पृ० ६ चित्र ८

मुनि की पड़गाहना और कड़वी तूंबी का आहारदान

हलके हरे रंग की पृष्ठभूमि में मंडप के नीचे मुनि विराजमान हैं। सामने राज-पुरुष हाथ जोड़े खड़ा है। मंदिर की गुम्मट लाल रंग की है। नीचे बैंगनी रंग का वितान है। मुनि का शरीर श्वेत वर्ण का है। उनके बांये हाथ में पीछी है, और सामने कमंडल रखा है। पीछे गोल (गेंडुवा) तकिया है। राजा का अंगरखा गहरे हरे रंग का है। चित्र के निचले भाग में रानी एक ओर कड़वी तूंबी लिये हुये है, और उसके सामने काटने के लिये औजार रखा है, और दूसरी ओर रानी मुनि को उसका आहार करा रही है। चित्र की पृष्ठ भूमि लाल रंग की है, और ऊपर बैंगनी रंग का वितान है। आकार ८×५ इंच।

पृ० ७ चित्र ६

मुनि को पीड़ा और वमन

पृष्ठ भूमि पीले रंग की है । मुनि खड़ी हुई मुद्रा में हैं, और पीछे एक लघु मुनि पीछी लिये खड़े हैं, समाचार सुनकर बहुत से भक्त आये हैं, जिनमें चार दिखाये गये हैं । उनमें दो के अंगरखे हरे, एक का हलका बैंगनी तथा एक का लाल है । ऊपर दांयी ओर जिनेन्द्र की वेदिका है, और नीचे बांयी ओर मंदिर में जाने का प्रवेश द्वार है । आकार ५३/४×५ इंच ।

पृ० ८ चित्र १०

राजा का हाथ जोड़कर मुनि से क्षमा-याचना

नीले रंग की पृष्ठ भूमि में उद्यान का दृश्य । एक ओर मुनि, बीच में राजा और उन के पीछे बाघ का अंकन है । मुनि का अंग गहरा बैंगनी, राजा के अंगरखे का लाल और बाघ का पीला है । आकार ५×३३/४ इंच ।

पृ० ८, चित्र ११

राजा का क्रोध और रानी का सौभाग्य-हरण

हलके हरे रंग की पृष्ठभूमि पर गहरे बैंगनी रंग से महल का प्रदर्शन । रानी बैठी हुई और राजा खड़े हैं । राजा कर्कशा रानी का सौभाग्य लेकर उसे निष्कासित कर रहे हैं । रानी की साड़ी नीली और राजा का अंगरखा पीले रंग का तथा पटका नीला है । राजा के पीछे मंत्री और उसके पीछे एक चमर ढोरने वाली अनुचर है । उसके शरीर का रंग नीला व जांघिया लाल धारीदार है । आकार ५×३३/४ इंच ।

पृ० ६ चित्र १२

रानी मरकर भैंस हुई

चित्र की पृष्ठ भूमि हलके हरे रंग की है । मंडप की पृष्ठभूमि में गहरा बैंगनी रंग है । पापिनी रानी मन में सोच रही है । उसके पीछे मंडप से बाहर एक भैंस दिखाई गई है । भैंस का रंग गहरा काला है । आकार ५×४ इंच ।

पृ० ६ चित्र १३

भैंस कीचड़ में फंसी

चित्र की पृष्ठभूमि नीले रंग की है । उसके ऊपर कीचड़ का तालाब गहरे बैंगनी रंग का, और उसमें फंसी हुई भैंस काले रंग की है । आकार ५×२ इंच ।

पृ० १० चित्र १४

रानी ने मरकर घड़ियाल का जन्म लिया

नीले रंग की पृष्ठ भूमि में सरोवर और उसके पीछे बैंगनी रंग की पृष्ठ भूमि में उद्यान दिखाया गया है। सरोवर में मछली, कछुआ और घड़ियाल दिखाये गये हैं। आकार ५½×२¾ इंच।

पृष्ठ १० चित्र १५

रानी ने मरकर सांभर की पापयोनि में जन्म पाया

नीले रंग की पृष्ठ भूमि पर उद्यान का चित्रण, जिसमें पांच वृक्ष हैं। बीच के वृक्ष का रंग हलका हरा और शेष का गहरा हरा और पीला है। सांभर का रंग भी पीला है। आकार ५¾×३ इंच।

पृ० ११ चित्र १६

रानी ने दुर्गन्धा चाण्डाल-कन्या का जन्म पाया

हलकी नीले रंग की पृष्ठभूमि पर दो उद्यान के वृक्ष हैं। बीच में एक भीमकाय चांडाल कन्या है, जो हाथ में कुल्हाड़ी लिये एक व्याघ्र पर प्रहार कर रही है। उसका शरीर गहरे बैंगनी रंग का है। वह लाल रंग की चोली और पीले रंग का जांघिया पहने है। व्याघ्र का रंग पीला और धारियां लाल और बुंदके काले हैं। आकार ६×४½ इंच।

पृ० ११ चित्र १७

दुर्गन्धा के विषय में गुरु से शिष्य का प्रश्न

नीले रंग की पृष्ठभूमि पर दो वृक्षों वाले उद्यान का चित्रण है। दांयी ओर श्रुतसागर मुनि बैठे हैं। सामने उनका शिष्य खड़ा है, और पापिनी चांडाल कन्या के विषय में पूछ रहा है। गुरु और शिष्य दोनों का शरीर बैंगनी रंग का है। गुरु का आसन लाल रंग का है। आकार ६×४ इंच।

पृ० १२ चित्र १८

चाण्डाल कन्या का मुनि-दर्शन और धार्मिक भाव

नीले रंग की पृष्ठभूमि में एक उद्यान है। वृक्ष के नीचे मुनि और उनके शिष्य खड़े हैं। एक ओर चांडाल कन्या हाथ जोड़कर मुनि की वंदना कर रही है। गुरु-शिष्य का शरीर श्वेत रंग का और चांडाल कन्या का बैंगनी रंग का है। चांडाल कन्या के पीछे जंगल से लाई हुई लकड़ियों का गट्ठर है। मुनि ने चांडाल कन्या के पूर्व जन्म का वृत्तान्त कहा और उसने व्रत धारण किये। आकार ७½×६ इंच।

पृ० १३ चित्र १६

उज्जयिनी में सुदर्शन मुनि का उपदेश

नीले रंग की पृष्ठभूमि पर उद्यान में एक ओर लाल वस्त्रों से आच्छादित गुरु बैठे हैं। उनके सम्मुख चार भक्त हाथ उठाये व जोड़े उनकी वन्दना कर रहे हैं। भक्तों में दो के अंगरखे लाल, एक का हरा तथा एक का अधोवस्त्र हरे रंग का है। चारों की पगड़ियों के रंग व रचना भिन्न है। आकार ६ × ५ इंच।

पृ० १४ चित्र २०

रानी का मुनिदर्शन, पूर्व-भव स्मरण और मूर्च्छन तथा राजा का मुनि से प्रश्न

नीले और बैंगनी रंग की पृष्ठभूमि पर उद्यान में एक ओर सुदर्शन मुनि बैठे हैं। उनके दर्शन से रानी को अपने पूर्व भवों का स्मरण हुआ और वह मूर्छित होकर भूमि पर गिर गयी। मुनि के सामने राजा अपने दो अनुचरों के साथ उसके भवान्तरों के विषय में पूछ रहे हैं। मुनि का रंग श्वेत और राजा के अंगरखे व पगड़ी का रंग लाल है। उसके अनुचर हलके बैंगनी और नीले रंग के वस्त्र पहने हैं। तीनों की पगड़ियां लाल हैं। नीचे दांयी ओर के कोने में मोर-मोरनी के चित्र हैं। राजा के पूछने पर मुनि ने दिव्य वाणी से रानी के पूर्व जन्मों की क्रमिक कहानी बतायी, जिसे सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ, और राजा ने उस पाप से मुक्ति का उपाय पूछा। आकार ६¼ × ५½ इंच।

पृ० १५ चित्र २१

विद्याधर का आगमन

नीले रंग की पृष्ठभूमि पर विमान-स्थित विद्याधर। उसके सामने आकाश में चन्द्रकला लिखी हुई है। नीचे कई वृक्षों से भरा उद्यान है। उसमें बैठे हुये मुनि, राजा मंत्री और रानी को सुगंधदशमी का उपदेश दे रहे हैं। राजा का वेश हरे रंग का, मंत्री का लाल रंग का और रानी का पीले रंग का है, जिस पर काली रेखाओं से चौखाना बनाया गया है। आकार ८¼ × ६ इंच।

पृ० १७ चित्र २२

राजा-रानी को सेठ जिनदास और सेठानी का अभिवादन

राजा-रानी ऊंचे आसन पर बैठे हैं, और सामने से जिनदास और उनकी पत्नी अभिवादन कर रहे हैं। आसन से नीचे धरातल में एक पलाना घोड़ा बना है। चित्र में राजा का महल और मंडप दिखाये गये हैं। पृष्ठ भूमि का रंग गहरा बैंगनी व निचले भाग का पीला है। राजा का अंगरखा हलके बैंगनी रंग का, रानी का घाघरा हरा काली धारियों वाला और चोली पीली लाल धारियों वाली है। सेठ का अंगरखा लाल, पीले बुंदकों सहित व सेठानी का घाघरा लाल व हरी चोली तथा ओढ़नी बैंगनी रंग की है।

राजा के तकिये का रंग हरा और रानी के तकिये का हलका बेंगनी है। पीली पृष्ठभूमि पर घोड़े का रंग नीला है व पलाण बेंगनी धारियों से बनाया गया है, जिसकी गोट में पीले रंग के बुंदके हैं। आकार ८×६ इंच।

पृ० १८ चित्र २३

सेठ जिनदास और उनकी द्वितीय पत्नी रूपिणी

नीले रंग की पृष्ठ भूमि पर एक ओर सेठ जिनदास बैठे हैं। उनका अंगरखा हरे रंग का धारीदार और फेंटा लाल रंग का है। उनके पीछे उनकी दूसरी पत्नी का चित्र है, जो घर के भीतर बैठी है। सेठानी का घाघरा लाल और चोली हरी व ओढ़नी बेंगनी रंग की है। बाहर उद्यान में एक हरा वृक्ष है, जिसके कुछ पत्ते पीले पड़ गये हैं व पृष्ठ भूमि का रंग गहरा बेंगनी है। आकार ७×५½ इंच।

पृ० १६ चित्र २४

सेठ जिनदास का मित्रों से परामर्श

हलके हरे और पीले रंग की पृष्ठ भूमि में बैठे हुए सेठ जिनदास अपने दो मित्रों से परामर्श कर रहे हैं। सेठ जी का अंगरखा गहरे बेंगनी रंग का है। सामने दो पुरुषों में से एक का नीले रंग का व दूसरे का बेंगनी रंग का है। तीनों व्यक्ति कमर में पटका बांधे हैं। आकार ५×३⅔ इंच।

पृ० १६ चित्र २५

कन्या-जन्म

हलके हरे और पीले रंग की पृष्ठ भूमि में सेठ की पत्नी के कन्या-जन्म का दृश्य है। सेठानी दाहिनी ओर चौकी पर बैठी है। गोद में कन्या है। सामने पूर्ण घट लिये परिचारिका खड़ी है। वह बेंगनी रंग का सर्वांग चोगा पहने है। ओढ़नी का रंग लाल है, जिस पर काले बुंदके हैं। सेठानी का घाघरा हरे रंग का और चोली बेंगनी रंग की, तथा ओढ़नी लाल रंग की है। कन्या का मुख श्याम वर्ण है, और उसका शेष शरीर लाल वस्त्र से आच्छादित है। आकार ५×४ इंच।

पृ० २० चित्र २६

रूपिणी का अपनी कन्या से पक्षपात

पृष्ठभूमि का रंग गहरा बेंगनी है। दाहिनी ओर जिनदास गेंडुवा तकिया लगाये बैठा है। उसका जामा और पगड़ी दोनों नीले रंग के और दुपट्टा बेंगनी रंग का है। उनकी पत्नी कन्या से द्वेष करती है, और अपनी पुत्री को चाव से सब कुछ लेती-देती है। सेठ यह सब देखकर खेद-खिन्न है। इस द्वितीय पुत्री का वर्ण काला और वस्त्र हरा है। रूपिणी हलका बेंगनी और पीला घाघरा और लाल चोली पहने है। उसका वर्ण श्वेत है। आकार ५×३½ इंच।

पृ० २० चित्र २७

सेठ जिनदास सुगंधा सहित अलग रहने लगा

हरी पृष्ठ भूमि में एक ओर जिनदास सेठ, दूसरी ओर सुगंधा बैठी है। उसकी पृष्ठ भूमि बैंगनी है। सुगंधा अलग अन्न-पान बनाने लगी, जिससे उनके पिता को सुख हुआ। आकार ५×३ इंच।

पृ० २१ चित्र २८

रूपिणी का कोप

चित्र के आधे भाग की पृष्ठ भूमि नीली और आधे भाग की बैंगनी है। बीच में जिनदास सेठ पीला वस्त्र पहने खेद-खिन्न खड़े हैं। उनके पीछे उनकी दूसरी पुत्री लाल चोली और पीला घाघरा पहने खड़ी है। दांयी ओर रूपिणी क्रोध की मुद्रा में खड़ी हुई वस्त्र की झोली में कुछ लिये है। उसका घाघरा लाल और ओढ़नी बैंगनी रंग की है। आकार ५×३ इंच।

पृ० २१ चित्र २९

राजा की सेठ जिनदास को द्वीपान्तर जाने की आज्ञा

हलकी बैंगनी पृष्ठ भूमि पर एक ओर राजा बैठे हैं। उनका तकिया लाल और वेश नीला है। उनके सामने हाथ जोड़े सेठ बैठा है, जिसे वे द्वीपांतर जाने का आदेश दे रहे हैं। सेठ की पगड़ी और अंगरखा धारीदार पीले रंग के हैं। आकार ५×३३ इंच।

पृ० २२ चित्र ३०

सेठ जिनदास द्वारा रूपिणी को अपने विदेश-गमन की सूचना

नीले रंग की पृष्ठ भूमि पर रूपिणी लाल रंग के गेंडुए तकिया का सहारा लेकर बैठी है। उसकी चोली लाल रंग की, लंहगा धारीदार हरे रंग का और सितारेदार ओढ़नी बैंगनी रंग की है। सेठ का तकिया और पगड़ी लाल हैं, और अंगरखा पीले रंग का है, जिस पर लाल बूटी की छपाई है। आकार ५×३३ इंच।

पृ० २२ चित्र ३१

सेठ जिनदास का प्रस्थान

नीले रंग की पृष्ठ भूमि पर जिनदास और उसकी पत्नी। सेठ पीला अंगरखा पहने द्वीपांतर को जा रहे हैं। पीछे अंजलि मुद्रा में खड़ी उनकी पत्नी उन्हें विदा दे रही है। स्त्री की ओढ़नी बैंगनी रंग की तथा घाघरा गहरे हरे रंग का है। चोली और सामने का लटकता फड़का लाल रंग का है। आकार ५×३३ इंच।

पृ० २३ चित्र ३२,

वर का कन्या-दर्शन

गुणपाल नामक कुमार विवाह की दृष्टि से कन्या को देखने के लिये आया। रूपिणी ने श्यामा को आगे तथा सुगंधा को पीछे करके गुणपाल को दिखलाया। चित्र में नीले रंग की पृष्ठ भूमि पर महल का अंकन है। उसमें नीली पृष्ठभूमि में रूपिणी खड़ी है। उसके सामने गुणपाल की ओर मुंह करके सुगंधा तथा श्यामा बैठी हैं। दांयी ओर नीली पृष्ठ भूमि में गुणपाल बैठा है। गुणपाल की पगड़ी और धारीदार अंगरखा लाल रंग का है, तथा हरे रंग का पटका कमर में बाँधे है। इसके आसन का रंग भी गहरा हरा है। रूपिणी का लंहगा लाल रंग का है, जिस पर हरे रंग का फड़का है। कन्याओं में सुगंधा के वस्त्र लाल तथा श्यामा के गहरे हरे हैं। आकार ६×६ इंच।

पृ० २४ चित्र ३३

विवाह मंडप, रूपिणी द्वारा सुगंधा का अपनयन

नीले रंग की पृष्ठभूमि में विवाह मंडप है। दाहिनी ओर रूपिणी सुगंधा का हाथ पकड़कर उसे घर से बाहर ले जा रही है। रूपिणी गहरे बैंगनी रंग की बुंदकीदार ओढ़नी, धारीदार, पीली चोली तथा हरे रंग का घाघरा पहने है, और उसके ऊपर हलके बैंगनी रंग का फड़का है। सुगंधा पीले रंग का घाघरा और लाल चोली पहने है। चित्र के निचले भाग में गहरे रंग के दो गेडुवे तकिये रखे हैं। उन्हीं के पास में पीले रंग का एक चंगेरी सा कुंड रखा है। आकार ८×६ इंच।

पृ० २५ चित्र ३४

रूपिणी ने सुगंधा को श्मशान में जा बैठाया

नीले रंग की पृष्ठभूमि में वैवाहिक आयोजन का दृश्य। चारों दिशाओं में चार दीपाधारों पर दीप प्रज्वलित हैं, तथा चारों दिशाओं में चार ध्वजायें लगायी गयी हैं। बीच में सजी हुई सुगंधा बैठी है। उसकी धारीदार गहरे रंग की चोली और लंहगे पर बुंदकियाँ हैं। वह बैंगनी रंग की ओढ़नी ओढ़े है। सामने उसकी माता रूपिणी खड़ी है। कपट-हृदय रूपिणी ने सुगंधा को इस रात्रि में श्मशान में रखा। आकार ६×५½ इंच।

पृष्ठ २५ चित्र ३५

रूपिणी का कपट शोक

बैंगनी रंग की पृष्ठभूमि में रूपिणी अन्य दो महिलाओं के सम्मुख झूठमूठ रो रही है कि सुगंधा विवाह के समय पता नहीं कहां चली गयी। रूपिणी सिर पर हाथ लगाये खेद प्रदर्शित कर रही है, तथा सामने बैठी दो स्त्रियां उसे समझा रही हैं। तीनों सुसज्जित स्त्रियां धारीदार लाल वस्त्र पहने हैं, और गहरे बैंगनी रंग की ओढ़नी ओढ़े हैं। आकार ६×२½ इंच।

पृष्ठ २६ चित्र ३६

महाजन की सहानुभूति

सुगंधा का समाचार सुनकर संबंधी खिन्न हुए । चित्र की पृष्ठभूमि नीले रंग की है । एक ओर पीली पृष्ठभूमि में लाल रंग की धारीदार चोली और घाघरा पहने हरे रंग के गेडए तकिये के सहारे रूपिणी बैठी है । सामने गहरे हरे रंग की पगड़ी और बुंदकीदार चोगा पहने एक पुरुष खड़ा हुआ खेद व्यक्त कर रहा है । आकार ७×३ इंच ।

पृ० २७ चित्र ३७

राजा-रानी

नीले रंग की पृष्ठभूमि में ऊपर आधे चित्र में राजा-रानी बैठे हैं । निचले आधे में महल के दो द्वार दिखाये गये हैं । राजा गहरे रंग का लम्बा चोगा पहने है, तथा सिर पर लाल पगड़ी है । पीछे हरा गेडुआ तकिया रखा है । रानी लाल रंग के धारीदार वस्त्र पहने है, तथा बुंदकीदार बैंगनी ओढ़नी ओढ़े है । राजा ने अपने महल पर से श्मशान में सुगंधा को देखा और वह चकित रह गया । आकार ७×३ इंच ।

पृ० २८ चित्र ३८

श्मशान में राजा की सुगंधा से भेंट

नीले रंग की पृष्ठभूमि में सुगंधा बैठी है, तथा सामने एक हाथ में शस्त्र लिये राजा प्रश्न-मुद्रा में खड़ा है । ऊपर आकाश में चंद्रमा खिला है । राजा का धारीदार चोगा और पगड़ी बैंगनी रंग के हैं, तथा गले में छापेदार दुपट्टा और कमर में गहरे हरे रंग का पटका बांधे है । सुगंधा लाल रंग की धारीदार चोली और अधोवस्त्र पहने है, तथा बैंगनी रंग की ओढ़नी ओढ़े है । आकार ७½×५½ इंच ।

पृ० २९ चित्र ३९

सुगंधा का स्वयंवरण

राजा ने सुगंधा से उसके पिता के द्वीपान्तर जाने तथा विमाता रूपिणी द्वारा वर की प्रतीक्षा में श्मशान में आने का समाचार सुनकर स्वयंवरण करना स्वीकार कर लिया । गहरे बैंगनी रंग की पृष्ठभूमि में ऊंचे पीले धारीदार मूढ़े पर सुगंधा बैठी है, और सामने स्वीकृति रूप हस्त-स्पर्श करता हुआ राजा खड़ा है । राजा हल्के बैंगनी रंग का चोगा पहने है, तथा दाहिने हाथ में शस्त्र लिये है । सुगंधा के वस्त्र लाल रंग के और ओढ़नी गहरे बैंगनी रंग की है, जिस पर सफेद बुंदकियां हैं । आकार ६×५½ इंच ।

पृ० ३० चित्र ४०

राजा और सुगंधा पति-पत्नी के रूप में

राजा ने सुगंधा के साथ विवाह कर लिया । नीली पृष्ठभूमि में राजा और सुगंधा हैं । राजा ने सुगंधा को गोद में बिठाकर गले में हाथ डाल रखा है । राजा लाल रंग का धारीदार चोगा पहने है । सुगंधा के वस्त्र पीले रंग के है, और वह एक बहुत झीनी ओढ़नी ओढ़े है । दोनों ओर दो ध्वजायें हैं । आकार ५½×४½ इंच ।

पृ० ३० चित्र ४१

राजा का सुगंधा को आत्म-परिचय

सुगंधा के यह पूछने पर कि वह कौन है, राजा ने अपने को ग्वाला (महिषीपाल) बताया । नीली पृष्ठभूमि में दो गेडुए तकियों के सहारे राजा और सुगंधा आमने-सामने बैठे हैं । दोनों के धारीदार वस्त्र लाल रंग के हैं, तथा राजा गहरे हरे रंग का पटका कमर में बांधे है । सुगंधा गहरे बैंगनी रंग की बुंदकीदार ओढ़नी ओढ़े है । आकार ५½×३½ इंच ।

पृ० ३१ चित्र ४२

सुगंधा का राजा को रोकना व राजा का आश्वासन

नीले रंग की पृष्ठभूमि में सुगंधा तथा राजा बैठे हैं । राजा गहरे बैंगनी रंग का चोगा पहने है, जिस पर पीले रंग का छापा है । सुगंधा के वस्त्र गहरे हरे रंग के हैं, तथा बैंगनी रंग की छापेदार झीनी ओढ़नी है । घाघरे के ऊपर लाल रंग का फड़का है । आकार ५×३½ इंच ।

पृ० ३१ चित्र ४३

राजा की बिदाई

नीली पृष्ठभूमि में सुगंधा और राजा खड़े हैं । उसका दाहिना हाथ सुगंधा के दाहिने हाथ पर है । राजा सुगंधा को पुनः आने का आश्वासन देता है । राजा का धारीदार अंगरखा लाल रंग का है, तथा कमर के पटके और शिरो-बन्धन का रंग गहरा हरा है । सुगंधा का घाघरा लाल, सामने का फड़का गहरा हरा तथा बुंदकीदार ओढ़नी बैंगनी रंग की है । आकार ५×३½ इंच ।

पृ० ३२ चित्र ४४

राजा द्वारा सुगंधा का अलंकरण ।

नीली पृष्ठभूमि में राजा सुगंधा को आभूषण पहना रहा है । राजा का अंगरखा गहरे हरे रंग का है । उसके पीछे एक गेडुआ तकिया रखा है । सुगंधा पीले रंग के वस्त्र पहने है, जिनपर लाल धारियां हैं । आकार ५½×३½ इंच ।

पृ० ३२ चित्र ४५

सेठ और सेठानी की सुगंधा के अलंकारों के विषय में चिंता ।

सेठ बिदेश यात्रा से लौटकर सुगंधा के पास आभूषण देखकर व्यग्र हुआ । नीली पृष्ठभूमि में सुगंधा हाथ जोड़े खड़ी है । सामने बैंगनी रंग की पृष्ठभूमि में सेठ जिनदास और रूपिणी गेड़ुए तकिए के सहारे बैठे हैं । जिनदास का अधोवस्त्र लाल रंग का धारीदार तथा रूपिणी के वस्त्र गहरे हरे रंग के हैं । सुगंधा लाल रंग की चोली और लंहगा पहने है व पीले रंग का फटका है । वह बैंगनी रंग की बुंदकीदार ओढ़नी ओढ़े है । आकार ५½ × ४ इञ्च ।

पृ० ३३ चित्र ४६

अलंकारों पर राजा की मुद्रा देख उनकी चिंता बढ़ी ।

हरे रंग की पृष्ठभूमि में सेठ जिनदास तथा रूपिणी बड़े-बड़े गेड़ुए तकियों के सहारे बैठे हैं, और दांयी ओर सुगंधा खड़ी है । सेठ जिनदास रूपिणी से कह रहा है कि इन आभूषणों पर राजा की मुद्रा है, पता नहीं किस चोर ने सुगंधा को लाकर दिये हैं । सेठ का धारीदार अंगरखा और पगड़ी तथा सुगंधा के वस्त्र लाल रंग के हैं । रूपिणी के वस्त्र बैंगनी रंग के हैं । आकार ५½ × ३ इंच ।

पृ० ३३ चित्र ४७

सेठ जिनदास ने जाकर राजा को यह वृत्तान्त सुनाया ।

हरे रंग की पृष्ठभूमि पर एक ओर राज-प्रासाद में गेडए तकिए के सहारे राजा बैठा है तथा सामने हाथ जोड़े सेठ जिनदास खड़ा है । दोनों के अंगरखे धारीदार तथा बैंगनी रंग के हैं । सेठ की पगड़ी लाल रंग की है । आकार ५½ × ४½ इंच ।

पृ० ३४ चित्र ४८

राजा द्वारा भोज के आयोजन का सुझाव और सेठ की प्रसन्नता

नीली पृष्ठभूमि में अंजलिमुद्रा में सेठ जिनदास खड़ा है, तथा सामने भवन में बैंगनी पृष्ठभूमि में गेड़ुए तकिये के सहारे आदेश मुद्रा में राजा बैठा है । राजा का अंगरखा धारीदार तथा लाल रंग का है, तथा सेठ का बैंगनी रंग का । आकार ६ × ४ इंच ।

पृ० ३४ चित्र ४९

भोज का आयोजन

हरे रंग की पृष्ठभूमि में भोज के लिये अतिथि आये हैं । बांयी ओर सेठ जिनदास हाथ जोड़े खड़ा है, और सामने चार पुरुष बैठे हैं । इनमें दो के वस्त्र लाल और पगड़ी नीले रंग की है, तथा दो के वस्त्र पीले रंग के हैं ।

पृ० ३५ चित्र ५०

भोज में राजा भी शामिल हुआ

नीले रंग की पृष्ठभूमि में चित्र के ऊपरी अर्धभाग में बांयी ओर भवन में सुगंधा गेडुवे तकिये के सहारे बैठी है, तथा दाहिनी ओर राजा हाथ में जल भरा घट लिये खड़ा है। सुगंधा ने कहा कि वह केवल पैर धोने पर अपने वर को पहचान सकती है। आकार ५३/४×४३/४ इंच।

पृ० ३५ चित्र ५१

सेठ जिनदास द्वारा अभ्यागतों का स्वागत

पृष्ठभूमि बैंगनी रंग की है। एक ओर जिनदास हाथ जोड़े खड़ा है। सामने तीन व्यक्ति आश्चर्य मुद्रा में बैठे हैं। जिनदास हलके बैंगनी रंग का अंगरखा पहने है। एक पुरुष का चोगा लाल रंग का है जिस पर धारी और बुंदकियां हैं, एक का बैंगनी रंग का। तथा एक की धोती लाल है। सबकी पगड़ियाँ लाल रंग की हैं। आकार ५३/४×३३/४ इंच।

पृ० ३६ चित्र ५२

चरणस्पर्श से पति की पहचान संबंधी योजना से सभी को आश्चर्य

बैंगनी रंग की पृष्ठ भूमि पर दो पुरुष तथा दो स्त्रियां आमने-सामने आश्चर्य मुद्रा में खड़ी हैं। एक पुरुष गहरे, तथा दूसरा हलके हरे रंग का अंगरखा पहने हैं। दोनों की पगड़ियाँ लाल रंग की हैं। एक स्त्री गहरे हरे रंग की चोली और लाल रंग का लंहगा पहने है, जिस पर सामने हरा पटका है। दूसरी लाल रंग की चोली और गहरे हरे रंग का घाघरा पहने है, जिस पर लाल पटका है। आकार ५३/४×३३/४ इंच।

पृ० ३६ चित्र ५३

पैर धोने पर पति की पहिचान

पृष्ठभूमि नीली रंग की है। बांयी ओर गेडुए तकिये के सहारे सुगंधा बैठी है। इसकी चोली और घाघरा धारीदार लाल रंग का है, तथा बैंगनी रंग की छापेदार झीनी ओढ़नी है। सामने चौकी पर राजा खड़ा है। उसके पैर धोने के लिये जल भरा टोंटीदार कलश रखा है। राजा की पगड़ी और धारीदार अंगरखा लाल रंग का है, जिस पर सफेद बुंदकियां हैं। राजा के पीछे एक चामरग्राहणी परिचारिका खड़ी है। इसकी चोली और घाघरा पीले रंग के हैं, तथा ओढ़नी और पटका हलके हरे रंग के हैं। आकार ५३/४×५ इंच।

पृ० ३७ चित्र ५४

राजा द्वारा सुगंधा के पाणिग्रहण की स्वीकृति

सेठ के महल में पीली पृष्ठभूमि में राजा गेडए तकिये के सहारे बैठा है। अधोवस्त्र हरा धारीदार है, और पटका बैंगनी रंग का है। सामने सुगंधा खड़ी है।

उसका घाघरा हरा, धारीदार, चोली और पटका लाल, व ओढ़नी झीनी लाल धारियों की है। अन्त:पुर में उसकी विमाता रूपिणी बैठी है, जो इस वृत्तान्त से प्रसन्न नहीं है। उसके वस्त्र लाल व ओढ़नी बैंगनी रंग की है, व पृष्ठभूमि हलके बैंगनी रंग की है। आकार ६½×५ इंच।

पृ० ३७ चित्र ५५

सुगंधा के सौभाग्य की स्त्री-समाज में प्रशंसा

नीली पृष्ठभूमि में चार स्त्रियां परस्पर वार्तालाप कर रही हैं। एक का अधोवस्त्र हरा धारीदार और चोली बैंगनी रंग की है। दूसरी और चौथी का अधोवस्त्र गहरे बैंगनी रंग का है, और चोली हलकी बैंगनी। तीसरी का अधोवस्त्र लाल, चोली हरी व ओढ़नी बैंगनी बुंदकीदार है। आकार ६×२½ इंच।

पृ० ३८ चित्र ५६

सुगंधा का शृंगार

सुगंधा वस्त्राभूषणों से अलंकृत की जा रही है। पृष्ठभूमि गहरे बैंगनी रंग की है। बैठी हुई सुगंधा तथा उसके पीछे खड़ी परिचारिका के वस्त्र लाल धारीदार और ओढ़नी बैंगनी रंग की बुंदकियोंदार है, उनके माथे पर कुंकुम की रेखा है। आकार ५×३ इंच।

पृ० ३८ चित्र ५७

सुगंधा का वैभव

पीली पृष्ठभूमि में सुगंधा कमलाकार आसन पर एक बड़े हरे गेडुए तकिये के सहारे बैठी है। बाजू में एक और लाल तकिया लगा है। उसके वस्त्र हरे रंग के धारीदार और ओढ़नी बैंगनी रंग की बुंदकियोंदार है, जिसके ऊपर पुनः झीनी ओढ़नी है। उसका दाहिना हाथ आदेश मुद्रा में है। सामने परिचारक अभिवादन मुद्रा में खड़ा है। वस्त्र लाल धारीदार और पटका गहरा हरा है। पीछे परिचारिका चमर ढोल रही है। वह लाल अन्तर्वासिक के ऊपर गहरे हरे रंग का चोगा पहने है। आकार ५½×४ इंच।

पृ० ३९ चित्र ५८

सुगंधा का राजा के साथ विवाह

नीले रंग की पृष्ठ भूमि पर बीच में आमने-सामने मुख किए विवाह वेश में व पाणिग्रहण मुद्रा में सुगंधा और राजा खड़े हैं। सुगंधा के पीछे दो तथा राजा के पीछे तीन स्त्रियां विवाह आयोजन में शामिल होने के लिये आयीं खड़ी हैं। सुगंधा और राजा के वस्त्र लाल रंग के हैं। सुगंधा हरे रंग की झीनी ओढ़नी ओढ़े है। चित्र में नीचे एक स्त्री और एक पुरुष नगाड़े बजा रहे हैं। आकार ५×२¾ इंच।

पृ० ४० चित्र ५९

विमाता के अपराधों के लिये सुगंधा द्वारा राजा से क्षमा-याचना

नीले रंग की पृष्ठ भूमि पर दो प्रासादों का अंकन है । दाहिनी ओर के प्रासाद की पीली पृष्ठ भूमि में सुगंधा राजा से रूपिणी के व्यवहार के लिये क्षमा मांग रही है। राजा नीले रंग के बड़े गेडुए तकिए के सहारे बैठा है, और उसके सामने सुगंधा खड़ी है।

ा अंगरखा लाल रंग का धारीदार है। वह कमर में हरे रंग का पटका बांधे है। सुगंधा पीले रंग की चोली तथा लाल रंग का घाघरा पहने है, जिस पर पीला पटका है। उसकी ओढ़नी बैंगनी रंग की है। चित्र में दांयी ओर प्रासाद की बैंगनी पृष्ठ भूमि में रूपिणी मुंह फेरे खड़ी है । उसकी ओढ़नी बैंगनी छापेदार तथा अन्य वस्त्र लाल रंग के हैं। आकार ७×५½ इंच।

पृ० ४१ चित्र ६०

सुगंधा राजा की पटरानी हुई

नीले और बैंगनी रंग की पृष्ठ भूमि पर राजभवन मे काष्ठासन पर राजा और पटरानी सुगंधा बैठी हैं। पीछे एक परिचारिका खड़ी है। राजा का अंगरखा धारीधार लाल रंग का है। सुगंधा की चोली गहरे हरे रंग की तथा घाघरा पीले रंग का है, जिस पर छापेदार पीला पटका है। ओढ़नी का रंग बैंगनी है। आकार ८×५½ इंच।

पृ० ४२ चित्र ६१

गंधा की जिन-भक्ति

पटरानी सुगंधा जिन-मंदिर में प्रतिदिन धर्म-साधन के लिये जाने लगी । नीले रंग की पृष्ठ भूमि पर जिन-मंदिर में तीर्थंकर देव विराजमान हैं, तथा उनके बांयी ओर अंजलि मुद्रा में सुगंधा खड़ी है। दाहिनी ओर तीन दिगंबर मुनि खड़े हैं। मंदिर के शिखर पर कलश है। आकार ६×४ इंच।

पृ० ४२ चित्र ६२

सुगंधा का शास्त्रानुराग

बैंगनी पृष्ठभूमि पर मुनिराज धर्मोपदेश कर रहे हैं, तथा हाथ में शास्त्र लिये अंजलिमुद्रा में सुगंधा खड़ी है। उसके पीछे तीन और स्त्रियां अंजलिमुद्रा में खड़ी हैं। मुनिराज का शरीर हलके पीत वर्ण का है। सुगंधा की चोली और घाघरा लाल रंग का तथा पटका गहरे हरे रंग का है। वह हलके बैंगनी रंग की बुंदकी दार ओढ़नी ओढ़े है। सुगंधा के पीछे खड़ी स्त्रियों में एक की चोली लाल रंग की तथा घाघरा नीले रंग का है, जिसपर पीला पटका लटक रहा है। दूसरी स्त्री की चोली और घाघरा हरे रंग का तथा पटका लाल रंग का है। तीसरी स्त्री की चोली गहरे हरे रंग की तथा घाघरा पीले रंग का है, जिस पर लाल पटका लटक रहा है। आकार ६×४ इंच।

पृ० ४३ चित्र ६३

देवागमन

नीली पृष्ठभूमि पर जिनमंदिर में तीर्थंकर देव विराजमान हैं। मंदिर के बैंगनी शिखर पर पीला कलश तथा ध्वजायें हैं। ऊपर आकाश में एक विमान-स्थित देव है। विमान में लाल ध्वजायें तथा घंटियां लगी हैं। उसमें बैठे देव के वस्त्र धारीदार हैं, और मुकुट लाल पीला है। सुगंधा और देव ने तीर्थंकर की वंदना की। आकार ८½×५ इंच।

पृ० ४४ चित्र ६४

सुगंधा और देव का सुगंधदशमी व्रत के फल के विषय में वार्तालाप

देव ने सुगंधा को भवान्तरों की बात बताथी कि सुगंध दशमी व्रत के प्रभाव से वह देव हुआ है, और उसी व्रत के प्रभाव से वह सुगंधा हुई है। लाल रंग की पृष्ठभूमि पर पीले फर्श पर गद्देदार तकियों के सहारे सुगंधा और देव बैठे हैं। सुगंधा को देव कह रहा है कि वह निरन्तर जिनदेव की आराधना-पूजा करे करावे। देव के वस्त्र लाल रंग के तथा सुगंधा के हरे रंग के हैं।

चित्र के निचले अर्धभाग में बैंगनी पृष्ठभूमि पर लाल फर्श पर सुगंधा बैठी है, और सामने वह देव एक हरे रंग का दिव्य वस्त्र प्रदान कर रहा है। आकार ६×६ इंच।

पृ० ४५ चित्र ६५

देव का प्रयाण

सुगंधा को दिव्य वस्त्र और आभूषण देकर देव चला गया। नीले रंग की पृष्ठ-भूमि में ऊपर आकाश में विमान में बैठा देव जा रहा है। देव के वस्त्र लाल छापेदार, पटका हरा तथा मुकुट हरे रंग का है। आकार ८×४ इंच।

पृ० ४५ चित्र ६६

सुगंधा की ख्याति व लोक प्रियता और सम्मान

सुगंधा का अभिवादन करती हुई तीन स्त्रियां खड़ी हैं। सुगंधा लाल रंग की धारीदार चोली तथा हलके रंग का घाघरा पहने है, जिस पर लाल रंग का पटका है। वह बैंगनी रंग की भीनी ओढ़नी ओढ़े है। अन्य स्त्रियों के वस्त्र क्रमशः बैंगनी और लाल, बैंगनी और हलके हरे तथा लाल और गहरे हरे रंग के हैं। आकार ९×५½ इंच।

पृ० ४६ चित्र ६७

ग्रंथ-समर्पण

लाल रंग की पृष्ठभूमि पर आसन पर ग्रंथ-रचयिता श्री जिनसागर के गुरु भट्टारक देवेन्द्र कीर्ति विराजमान हैं। उनके दाहिने हाथ में समर्पित ग्रंथ है। सामने हाथ में पीछी लिये जिनसागर खड़े हैं। गुरु के शरीर का रंग गहरा बैंगनी तथा जिनसागर का हलका पीला है। जिनसागर का अधोवस्त्र हरे रंग का धारीदार है। आकार ५½×४ इंच।

॥६०॥ अथ सुगंधदशमिकथालिख्यते॥
श्रीमकंगल्ह देवमूर्त्तिजिनदासिंहासनिवेसला छ
त्रभावैशालकाध्वज॥ सिरांसुवाकल्पातला पादां
हलिफवामला गचमरेअंगा वनेवाडीला स्यौचेन
सनेजकोहिल पैलेरसाविस्तृ देखिला १

२

३

४

५

६

७

रागीमनी क्रूर धर्मनिरोद्द मिथ्यातनी पायविचारिना
दे १० मांडलगनाचरकाननामिमीकायनात्रसरना
मिकेसी आनंदमाकाछडीयेकगला पायीमुनीका
मुनिश्रानिश्राला ११ बोलिचनांनेसदनामिश्रान
मुनीमितश्रा ननकायमानी करइध्यानंधुनिपा
ककेला क्रनावचित्रिमनिजवविला १२ ८

गेलामुनिवननिम्याहराणी तेनाव्हइध्यानधरीम

वसी स्याआहारविफलेंदहनोंस बोहाकरीलोक १

ममतिआति १३

तोश्राविकाश्रावकदुःखनारी देवि प्रकेस्यायरि

कामशरि रसीकसीयापिनुंकाणमोदि सुनीसहाश्रा

हारदीधजोह १४ केंवनदाश्रायधर्महयाही गेमा

नेभगमागकाही मानामुनीरहनिगोगनका सुखे

मुनाजायधर्मासिनका १५ रेवोकथा यास्वी रही

जा यवापरीमोगणकय्यनाली तोमावलोवीस

सामिकला नृपा सहीआवरे ते निश्चला १६ मा
र्थ्याचरी काय प्रदाथे नाही दृषाइको पायिणकाय
पाही जलो इवे तो उहि मो चनाकिं कलंगतिपाय घ
रेजनाकिं १७ ध्यानंतरै नृपतिये कहीसी गेलापा
हो मुकुवंदनेसी सिडनि या आश्रिया सवासी
करुनिपापक्षितये घरासि १८ १०

राजा तिलांपाकुनिकेः मज्ञाति भंगार हारादिक
दीगनि सो भाग्य गेलं मग दीनमानी देकर्कमा ११

सन्निसाकॅवाली १९ दुर्गंधनोआमदयासजाला
दसोवरीकोरवर्गुनिआना असामनासेनसके विको
न्हि जेवासलोवालनिनाकवाली २० अन्यःमेदः रा
णीनिकोदुःखपाणीमनमी रोहदेवादुःखजोनजी
वामी केसीवुर्दीआवेवाधिनिमी केसीगाडी मांग
मोहजनामी २१ रागीनरपकडे आनेमराणी केमीजा
नीपाधिणि दुःखरयानि मागागनीनमनाकानगर्दी
बारापाणीनमित्तनाचिपादी २२ नानीदेईडुवेनी १२

सालनेनाकादीकन्यादुःखनिवसेरणी पाणीप्याधां १३
नेतराकीरिपाली लेथकैमीकरैमीमपूतानी २३

गजे पाणीसुमरीकाचमाछी मामानाईनपैरेपापडना १४
डी

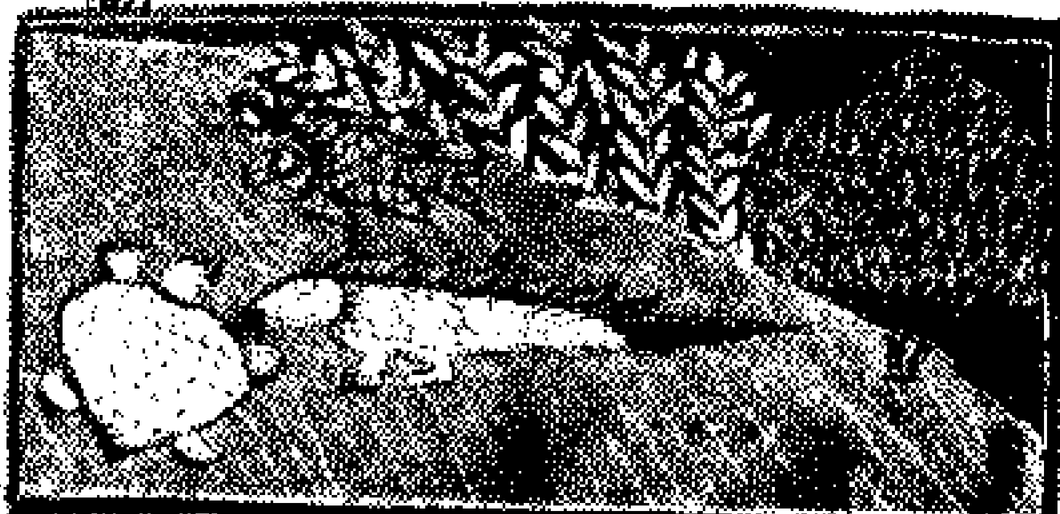

तिषाणियांसाबरीपापयांनि नेपरीनेडरवलोगणि १५
लांनि २४ जैपरवपा छेदः

श्रपरूकमेनन्मनरानिगला वाराश्चगरीमगतश्चमा
ना डर्गेपश्चांगीबकडःरवदारी कान्दितिलोवेसवि
मांचियारी २४ मानोमेरडखविग्गन्वदीमें मवेन
डीरखुनिवोकरामें नगकलीराक्नियलीवनारारई
परेकःरवधीमनाल रह नतेबगछिफरवरवारलरई
५ गेलह्तवडलकमेने॥

१६

नंथवनांत एक मुनि इष्याला नामें श्रुतसागर
त्याला २७ अनेगुणाश्रिवरशिष्य त्याचा नांवो सि
सागर मुनिसुवाचा संदेहरां हरकरावया मी आलों
समाधेवरवें गुरुशि २६ अहो स्वामी गुरराजरे
वा हे कोण वांशिलिपि पठेवा वेरगुरु आइकवा
नकार इष्यामनवाचिकथनीकथा रे २७ हे श्रीमनी

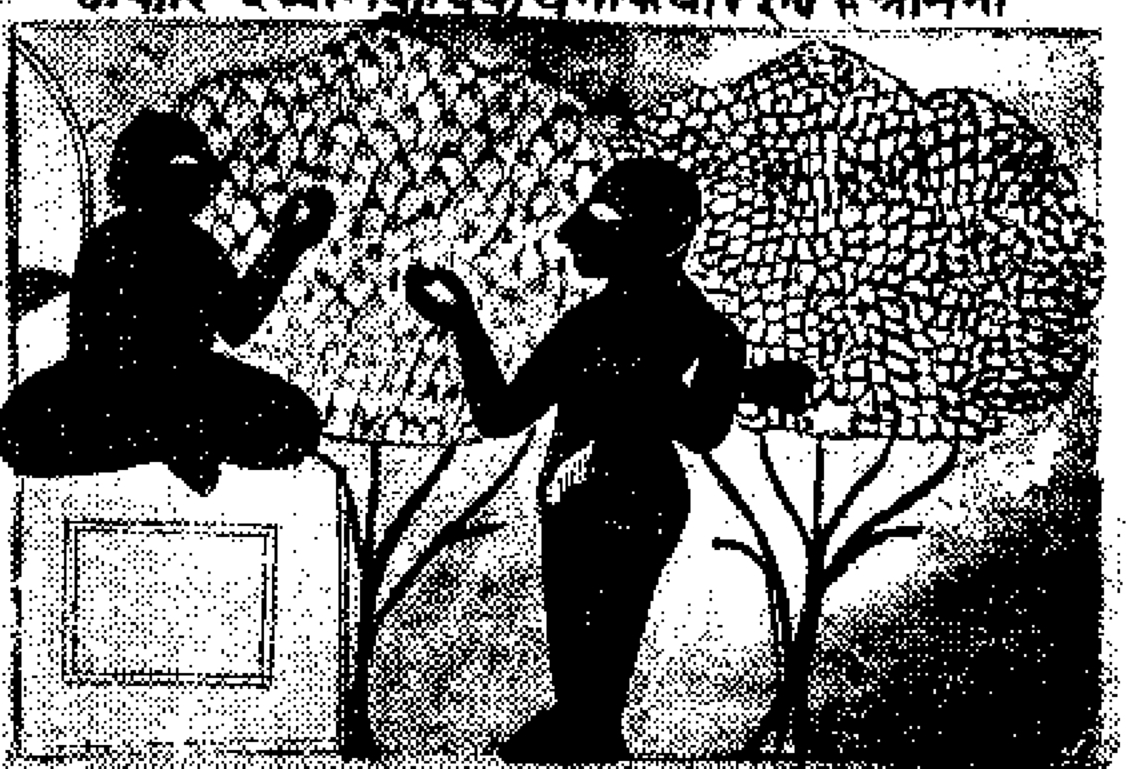

१७

सर्विनराजकोना मुनिसदस्यासारदुहर्षिसा श्रीविक
वाचेसत्पुदानकेले त्याचेसंमयपकलासिद्धलि ३०
गमीकथा सर्विलयक्षकेली चांडाली मिसी श्रम मवेद
की संसारावरि निद्रानिया पथामो नच्चोसलोवेगुरुवंदीय
ला ३० कथा वेगवाश्वनमा केलाला श्रवः श्रनाश्रवी मुनेे
गुरुला

१८

६

दुखनियामछगुणाभिरामो नारीजले पायालीसि कुम
पाको ३२ तेधाविया तेमरणामिपाये घरेकथासोग
णेरेकुलाके श्रंगारिमाभाव्यदेशासा तेपेपुरीउक
गिरमाणा ३३ तेथकणाचेघरीतीकुमारी होतीदि
नापावरीरोयमारी काहीबाहिसमसामेली तरिह
खानामगहाडिसाली ३४ स्पाणीसेसकाहविदेपमारो
श्रयपाविनाकेविसुखासिधारा रमीलीनेनुद रामी
साचो तेपेसुलीतासवधकस्याला ३५ सुदर्शनःकाम
विकारमाही समस्तकधारीघनदगपाही रात्रायाही
तेशीलआस्वसेन बेसावधाचाली यसासुमान ३६
मजनियाजहस्कद्रव्यहरा स्यागविषालोकर्दनाप
नासा गुरुषिकलापरीक्षानवेदी समस्तत्याविण
दनताही ३७ सुमार्गतेनेकुमिलोकधाला चकुलध
मोवरीदनमाला सोगेसुधर्मोगुरुनामगाया यविग
ताणोकुगुरुगयावा ३८

१०

माळीमिरीयजनि इहगंधा आल्याक मानकरान
धरा झेंडेंदेखीयतेंमुनीमी तेआठवधर्मिनच्या
नथामि ५९ छंद: मुख्याआनीं नपेंडेनर्मकला रा
पाहलाकविमिनताला कांहाखामीमालनीईमिळ
को रमीमांगाआमुचिनव्यहळा ६० घेरेमुनिकैव २०

सदेखधराणी नचानगचिकमलीकाराणी एकानिय
विस्मीतनृपजाला मुंगचित्तसौगवपाद्यमाला ६१

करीजे एक बस्या छूता सौ तो सबै होमाइ ल्य पापरासी
इन्द्र सुगंधादशमी करवि आईल्य पापासी माहा खला
वी ४२ ऐव मुनीसो गनसन्याला तो ज्ञान कीनो खग
बकन्याजा उवादी सो नामकु माररानी तो बैसल्या वंड
नियामुनीमी ४३ मामामै धेजाइपदामिमानि तेमुक २१

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री ... जी महाराज

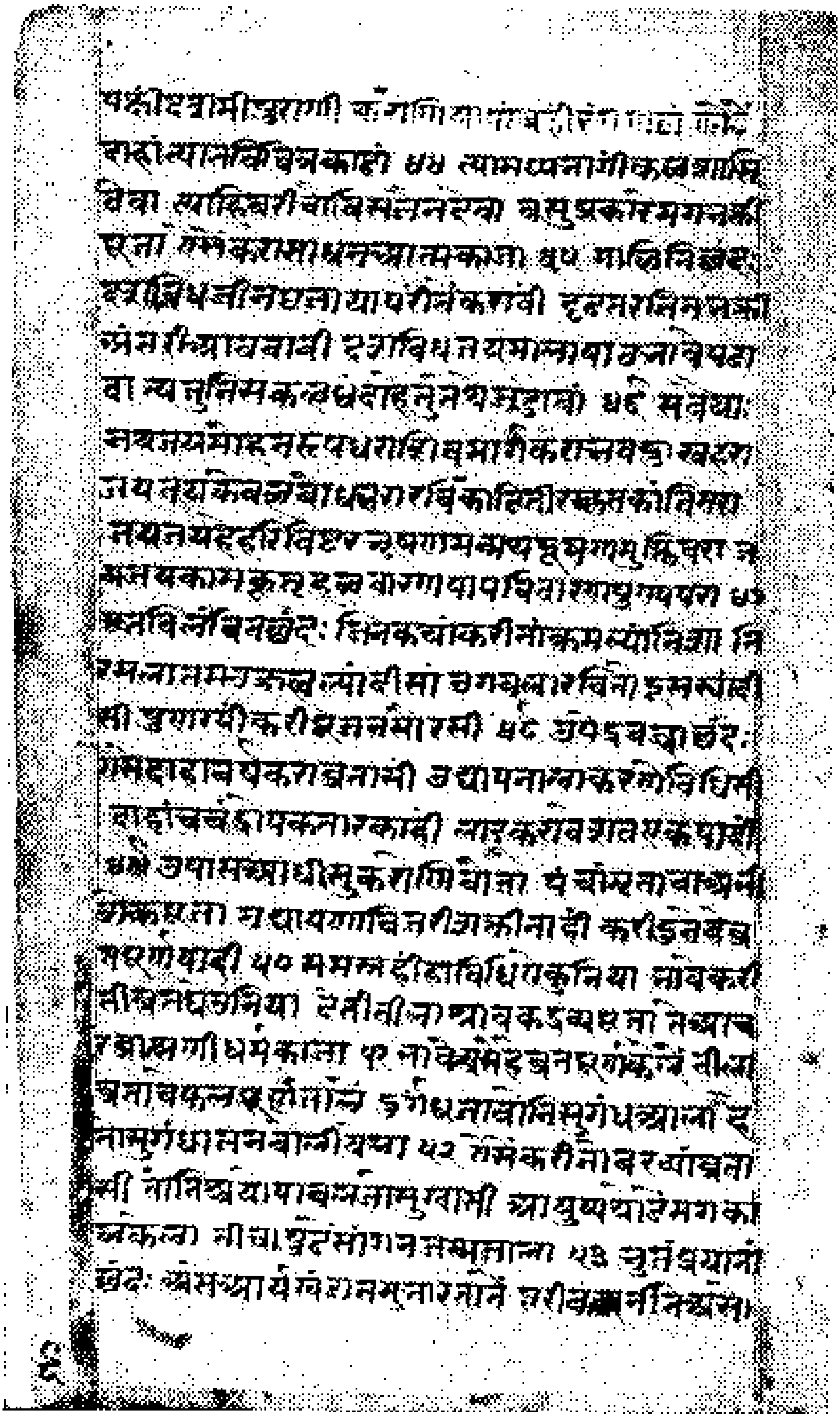

२२

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुवि

जिनदासस्वामी जिनादिदमावधुन्यासिमाणी तीच्याक
संशर्विलश्रामणीनं जालीकमाविक्र पावनीस ५६
सुगंधदशांवरीनिसदीसं लोकासि आश्चर्य विशेष जाले
जाकी सुगंधमग्नुनि नावकेलें सर्वांसी निश्चर्यकलांनि गेलं
५७ नामायवापावक लोपदोरे आनंदमंहलोमनान
वीर काहीकपापासनमायमतो हवील दुःखावळी
व्यापसाली ५८ दोहोकरीनामगवापजीवा लागेकमा
संविलपायवा विवाहकुमाकरीलोकबोले

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री

२३

सेतीयमानिसिरचित्रकैले धणी तककेमासुशातिना
मनाती ॐधानना केवलयापधारी सकालनशीनित २४
वायदाना अतिमाहापातिनिसर्धशाणा ६०

तीच्यानकसीत कवीतीयकन्या ननामशामानिजरूप
धन्या मानाकरीसहविशशातिना सुगंधकंचनरी दप २५
माया ६१

॥ छंद ॥ आमा मांजी कायबा हिरंगेली खाजे जबाणि
नोंघ पाली आमा वाका आनुनिं लेगेका खाजे घालि ते
तीजलां संयगाका ६२ भुजंगप्रयात छंद ॥ सुगंध
बकूल ढालीझारी नसंबन्ध पाणि करे इस्तचार्य
पीत्याने असे पाहीलां नावपाणी स्मरेवेग वेलाद्रिन
सर्वे थाली ६३ २६

आचार्य श्री सुविधिसा

सुदारा दस्या आणिया नास्पादाना नरी दपतिथा
कदापि चूकना सुगंधा करी अन्यथा कामिनाध पि
नो इच्छुनि अंभरीनासुखांव ६४ २७

असोरखुनिश्चेनगीलानत्याणि सुगंधदसमीसि
सिद्धोत्यादानि हिमघतवीरविलीमानियाचि गुरु
दवर्वरिकर्णिजल्पिल्याचि दूध इकानृलिंत्याणिनवी।
मिनवद्यान्नि सुगंधवतावनिवारीमिघाली सदाद
।धणिकस्मविकायवीले स्वर्गगेमित्यालागिदीव।
अपकेल ६६ २८

तदागकदीमिपादात्याक्षपाल बत्नावनिसांगीनल
कायत्यांनि नुपानाईनेशीघ्रदीधोनराला स्वरादीकरी
स्त्रत्याणिघराला ६७ २९

चयालागी वंकनिश्चालाधारासि चढेगुर्ह गर्भइपाह्य
स पिलिसि चणोगोध्रियेकन्यकाबोमिनोगी सुखीच्या
सिमाश्रीच्यासिगाढ़ीसाहि ६८ चरूपाहनेसोज्ञणीश्रा
कसाला दादाचयेगोलीश्रतिकाव्यमाला मनभार
नेदीपदीयोनरासी कलैनाकिसिलागलिमवेरासी
दर्या रासे ३०

रासैबालभिवंडनिस्याविष्पा पादाचालिलाबोक
मारमरीयां गमोकारमेंश्रावरीलाबमारी लगेमंत्र
रासवैपायानिवारी ७० ३१

[illegible] चंपापुरनवरवासी सालिचंपकवलिय
सुमालि [illegible] कुमार [illegible]
मार ७१ [illegible] नगरा [illegible] देखतामनसुगंध
[illegible] कुमारी [illegible]
[illegible] ७२ [illegible] चांपरमहवणोन ३२
[illegible]

कोपकारवदत्तांमगतीली अणसयासिकसाबमजाला
७३ मामसीमगसुगंधकुमारी देखिसुंदरगुणाधिकमाही स
नलिष्यंपवरामगाकेला चांपरनगरवनिगेला ७४ सो
मरीसिरविसीमगव्याला नायफारवरहीमिरवीला देख

२३

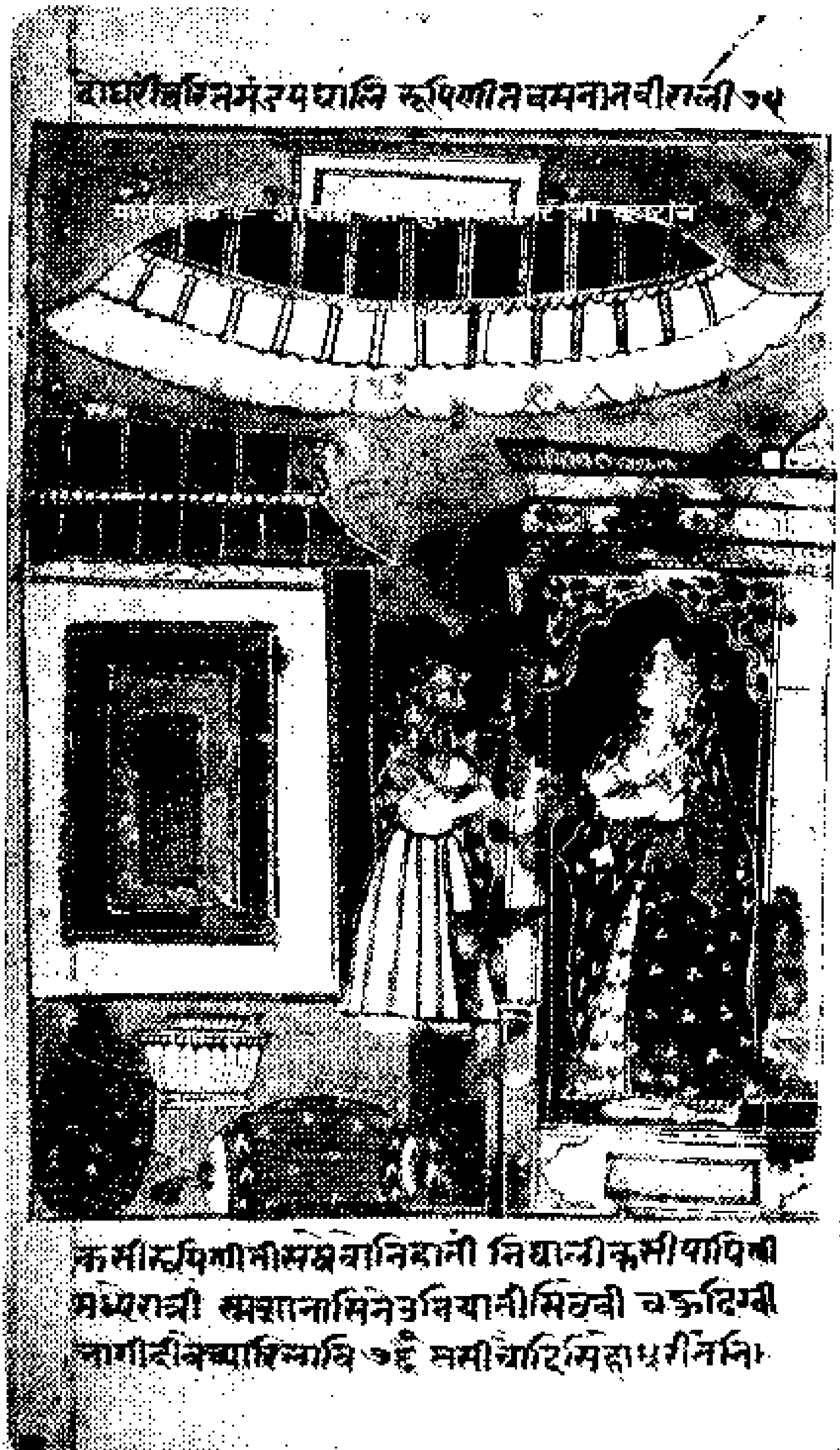

३४

३५

३६

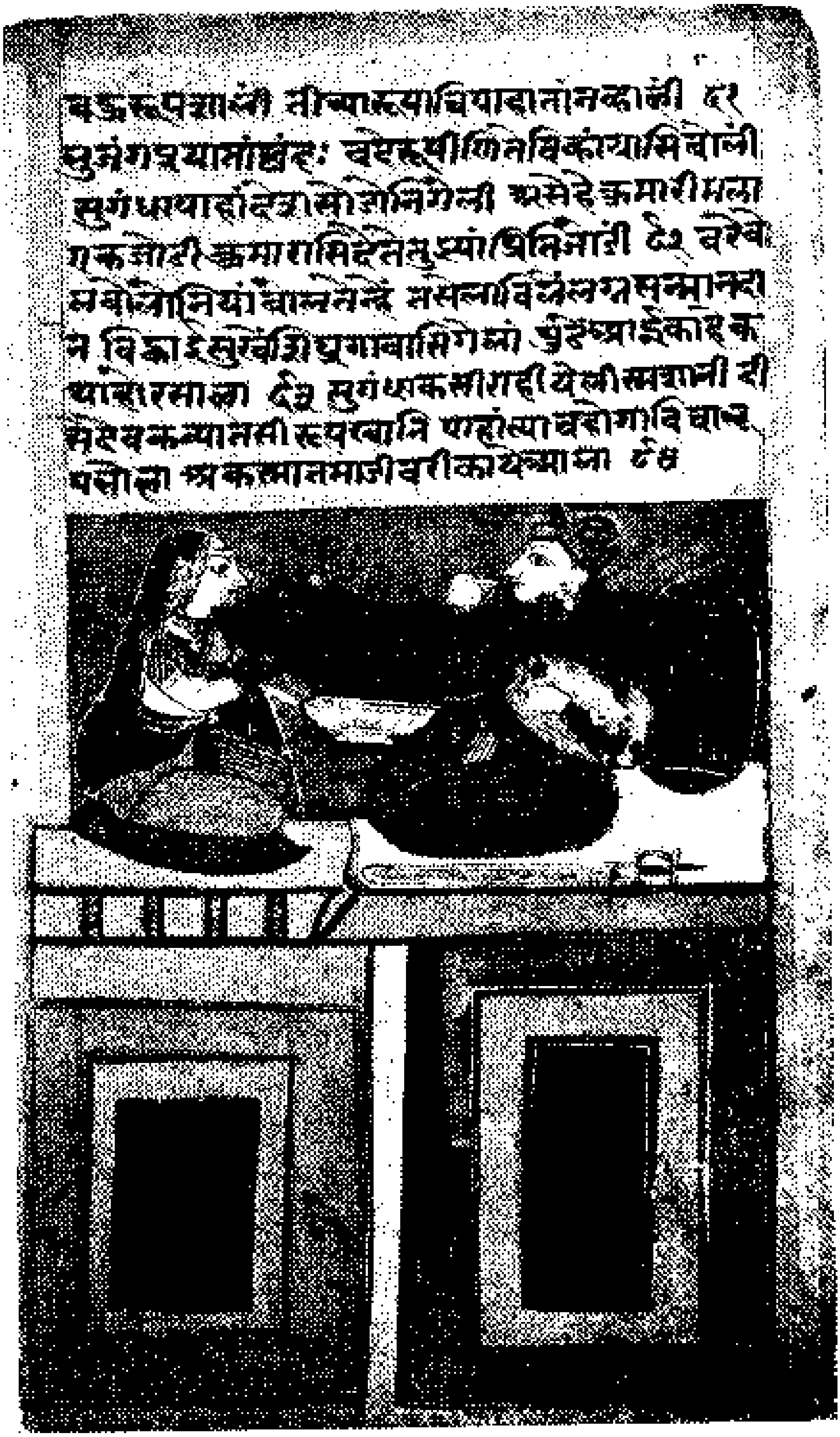

३७

३८

मनपिताजीनरसरूपाला जिनमतीजननीगुणमा
ला अन्मनाचिजननीमृलजाली सगुणिमायमजर
जिआली ८७ कनकनामनयतीजनकाला कनि
नादिपदीपातरत्याला मानुनिरयमिशामननाली ख
हासमगयेगुणमाली ८८ रूपिणिमजसुपनिसुमाली
बापलवेसिदबीलिसजाली कन्यकाउपवरासुवरासि
देरजेयदीमृड्जेसुमासी ८९ आतिजनदीवमीय
स्याला रुपिणिकरीकहनकचाला आनुनिवमवी
लमजयेथे याखलीचवरीकसुवरोते ९० कविण
ालुनियांमजगेली मवेगोहलजम्यांश्वनकेली न
पतिधालिलिलमजमाला याखलासिवरमीवमया
ला ९१ ३९

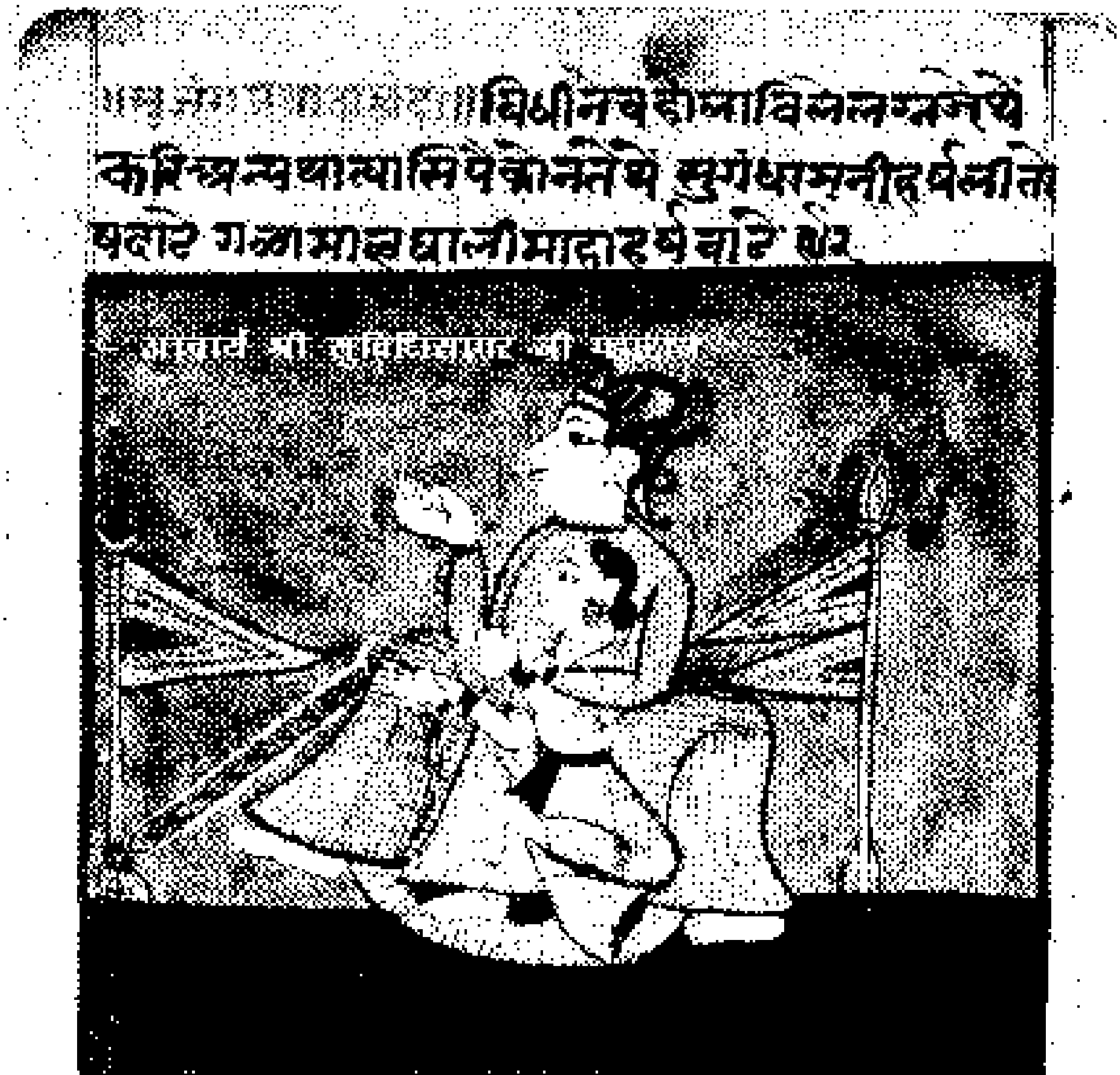

४०

४१

गुरुपालिनीवीकिनेनाकथाणी इत्यादेरघउनमाना
रस्माणि हेमेबोलुनिरूपनिमानिघाला धरीपछवि
नेसुगंधानयासा ४४ ४२

भ्रमानिहिसेइलकेकांवदावं मलायकलीटाकनी
कामडाने कलीआउलीवलराकनिशाने बोरहनसे
मवेथादीनवोन ४५ वेहलपयईनउस्यांगीकानी नि
शामधनागीरवराबालमानी खेरगेखेरस्यदनास
थई पीयतवउंश्रीघृगृहस्मीनाई ४६ ४३

रथावैगृहात्मागिमनथ्यकेलं कन्नेनाचिकोन्सानितेग
मनोन। सुगंधाकमाली घरयेघराली घरस्वीलियाम
मापराली ॥७॥ सुगंधावरमवेदीनामकैली घरेणकी
रूपीमिह।सियली स्वांगकमीनो।।मथामाकिम्रा।की
कमीनामपमेता करीआपमाली ॥८॥ मिरामथ्यनामी
तिआमेदीरामी याहानिल्पेनालूपवस्त्रादरमी आलेका
रचिन्नावकृडवणमी सुगंधावरेगा।।हिनमालिविभ
ठोमा ४४

एसवसैलपीडगावासिआलाआलंकारदस्वातियान

४५

४६

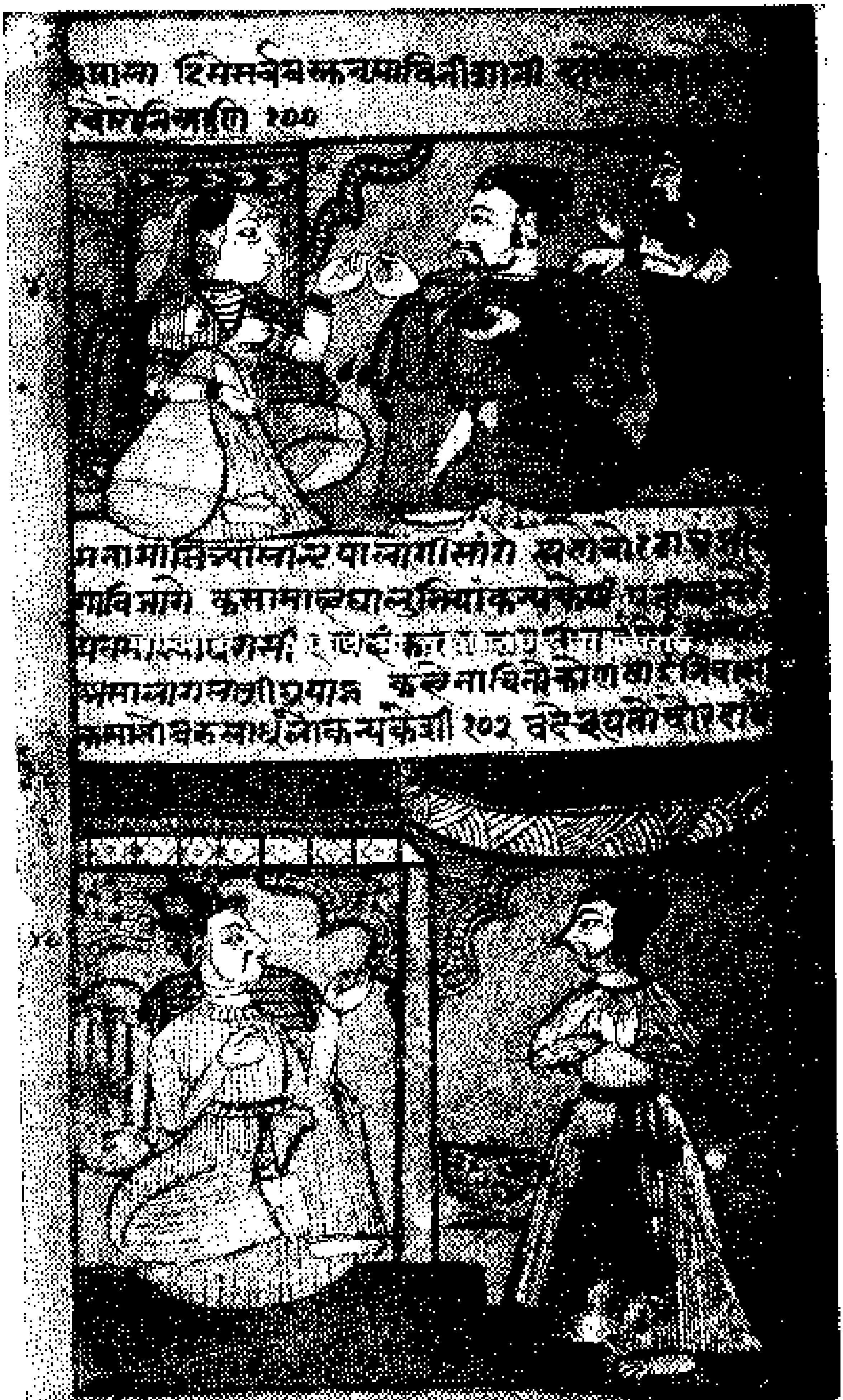

४७

४८

४९

५०

५१

५२

५३

५४

५५

५६

५७

१८

णकहीवसधरीरयकोपा कूपीलिसलछनोहढपमा
श्राणिली धर्मणिहेउकरावा वापीशीकपट्टराकीक
पावा १९ पासलीनवसुगंधकमारी बोललीनपम
शाउलिनारी माकियाजननीलाजरीहेउ लोकबोलती
नरीमनलंजा १९। हाबीवारनहेवकरावा हणुनिजाव
[illegible]ढपायो मोतिनाचमगतेहणराइ उठीयम
सरेलेमलवाहे २०

५९

६०

६१

६२

६३

देवएकनसत्यास्वलिमाला देवदत्तजिननोनमितेना:

६४

६५

६६

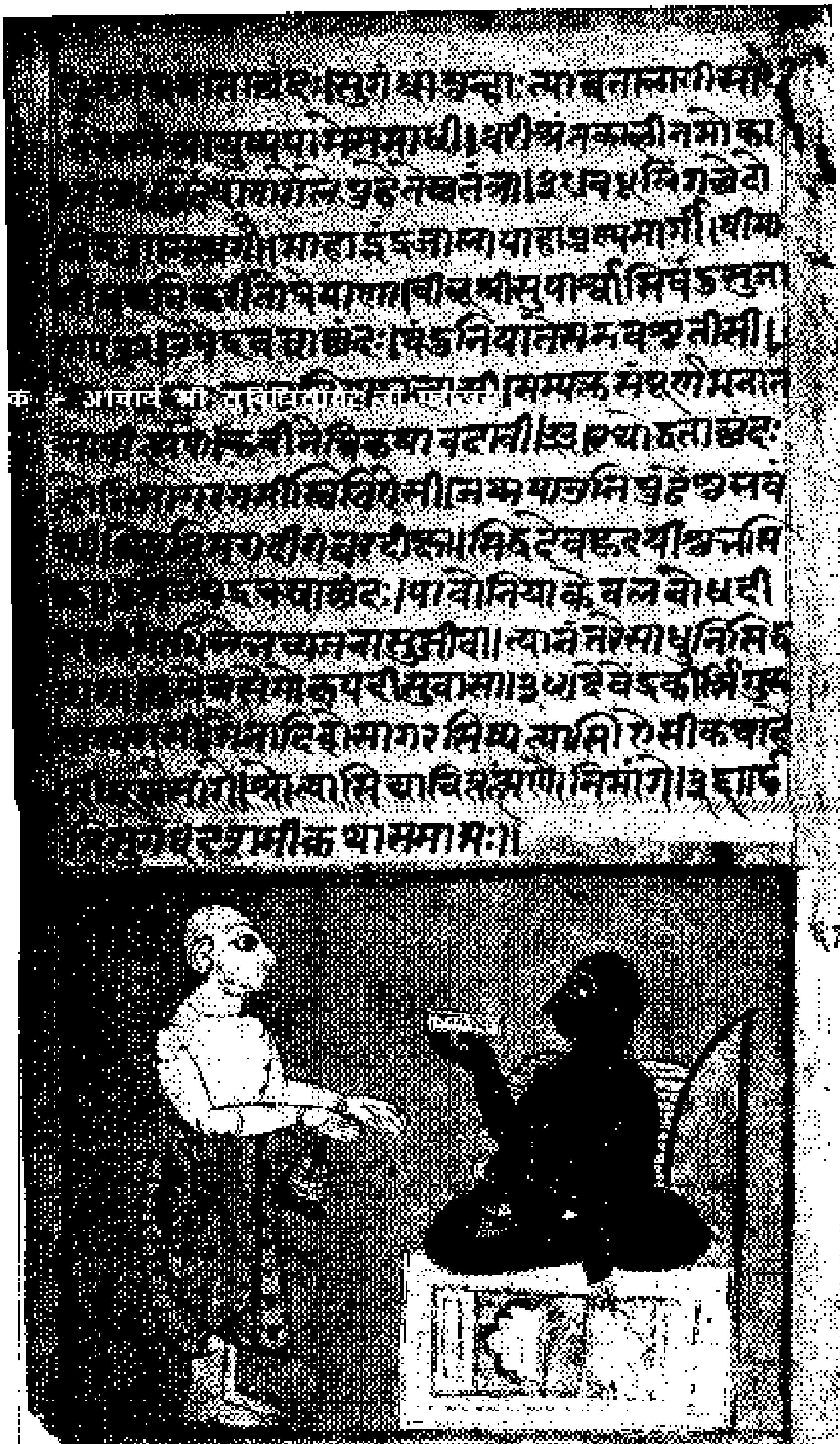

क - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

६७

(चित्र २२) राजा-रानी को सेठ-सेठानी का अभिवादन

(चित्र ४६) सेठ-सेठानी का वार्तालाप

(चित्र ५६) सुगंधा का शृंगार

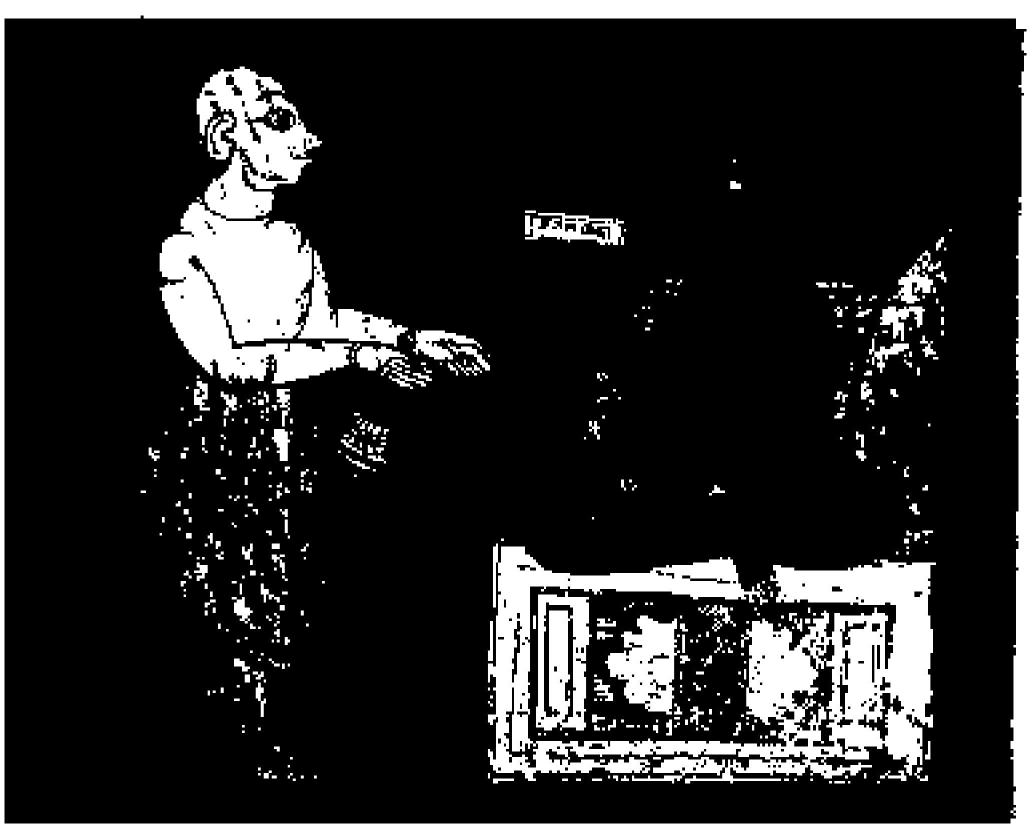

(चित्र ६७) ग्रंथ-समर्पण